साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२४ अंक-१२ ❖ पृष्ठ ८४ | आषाढ-श्रावण, संवत्-२०७६ | जुलाई २०१९

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को प्रचंड बहुमत··· ४

प्रतिस्मृति

संकट-मोचक तीन व्यक्ति/ *डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम* १०

कहानी

इति कवि कथा/ *सोमा बंद्योपाध्याय* १६
हृदय-परिवर्तन/ *प्रदीप कुमार* २२
गैराज/ *राकेश 'चक्र'* ३०
विषधर/ *रवि किरण सचदेव* ३६
अधूरी ख्वाहिशें/ *प्रशांत कुमार सिन्हा* ४२
चंदा और चाँदनी/ *आमलपूरे सूर्यकांत विश्वनाथ* ५४
सात चौखट के पार/ पी.सी. वशिष्ठ ६०
जुमे की नमाज/ *किशोरी लाल व्यास* ७०

लघुकथा

एकाग्रता, आवासीय बँगला/ *सत्य शुचि* १५
शुक्रिया-शुक्रिया, मफलर का सौंदर्य/ *सत्य शुचि* ३२

आलेख

अलौकिक लोककवि ईसुरी/ *नर्मदा प्रसाद उपाध्याय* २६
कविता के अलक्षित पाठक की तलाश/ नित्यानंद श्रीवास्तव ६४

कविता

आईना दिखलाऊँगा/ *धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल'* २५
किसान/ *अशमिंदर कौर* ३८
खोजता विहान/ *श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'* ४६
माया के बाजार में/ *श्रीप्रकाश सिंह* ५७
जीवन लुटाती थी/ *अशोक 'अंजुम'* ५९
नया सवेरा/ *कृष्णा आचार्य* ६२
खल्वतों के जंगल में/ *विनोद प्रकाश गुप्ता* ६७
चातक बन देखे धरासुत/ *संगीता गुप्ता* ६९
गुड़गाँव का आदमी/ *सुशील बुड़ाकोटी* ७१

संस्मरण

बहन से बात करोगे ?/ *कुँअर बेचैन* १३
हाय ललला! अब हैं कहाँ दुनिया में ?/ *महेश चंद्र द्विवेदी* ५८

स्मरण

प्रभाकर माचवे···/ *ब्रजेंद्र त्रिपाठी* ३३

राम झरोखे बैठ के

बिन पावर सब सून/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३९

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

दूसरा आदमी/ *राजेश पटेल* ४७

साक्षात्कार

प्रकृति स्वयं एक काव्य है/ *शीला मिश्रा* ५०

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

अतीत की खुशबू/ *ईलीर कालेमाज* ६३

व्यंग्य

व्हाट्सएप के बुद्धिजीवी/ *अतुल कनक* ६८

यात्रा-वृत्तांत

वह अद्भुत, शानदार प्राणी/ *राकेश कुमार* ७२

लोक-साहित्य

लोकगीत की कोख से···/ *चंद्रकांता किनरा* ७४

बाल-संसार

'गुड मॉर्निंग' सूरज दादा/ *माला श्रीवास्तव* ७७

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७८
वर्ग-पहेली ७९
साहित्यिक गतिविधियाँ ८०

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को प्रचंड बहुमत : जनता का बहुमत

सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव परिणाम अब देश के सामने हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की प्रचंड बहुमत से जीत के कारण विपक्षी दल हतप्रभ हैं, हतोत्साहित हैं। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व एवं अध्यक्ष अमित शाह के प्रयासों से भाजपा ने ३०३ सीटों पर विजय प्राप्त की है, उसका वोट प्रतिशत भी बढ़ा है। सहयोगी दलों को साथ लेकर राष्ट्रीय प्रजातंत्रात्मक संगठन (एन.डी.ए.) को ३५० से ऊपर सीटें मिली हैं। एन.डी.ए. का जो दावा था कि वह २०१४ के मुकाबले और अधिक सीटों पर विजयी होकर पुनः सत्ता में आएगी, वह सही साबित हुआ। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपनी जीत के विषय में इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने सभी मंत्रालयों को आदेश दे दिए थे कि वे नई सरकार के १०० दिनों का कार्यक्रम तैयार करें। उधर विपक्षी दल भी बड़े उत्साहित थे, विशेषतया गुजरात और कर्नाटक के चुनावों के बाद कि वे अपने 'मोदी हटाओ' कार्यक्रम में पूर्णतया सफल होंगे। पहले वे चाहते थे कि सब दलों का एक महागठबंधन नरेंद्र मोदी सरकार के विरुद्ध बनाया जाए, ताकि एकजुट होकर उनको अपदस्थ किया जा सके। पहले तो यह कठिनाई आई कि तृणमूल कांग्रेस की अध्यक्ष ममता बनर्जी, तेलगूदेशम के अध्यक्ष और तेलंगाना के मुख्यमंत्री राव एक ऐसा फेडरल फ्रंट बनाने के पक्षधर थे, जो कांग्रेस और भाजपा दोनों से अपनी दूरी बनाए रखे। दूसरी ओर कुछ विपक्षी दल थे, जो चाहते थे कि चुनाव के पहले ही महागठबंधन बना लिया जाए और नरेंद्र मोदी के विरुद्ध किसको अगले प्रधानमंत्री पद के लिए जनता के सामने रखा जाए, प्रोजेक्ट किया जाए। यहाँ अनेक समस्याएँ सामने आईं। तेलगूदेशम के अध्यक्ष चंद्रबाबू नायडू इस महागठबंधन को बनाने की मुहिम के नेता थे। पिछले दिनों अपने राज्य के कामकाज को छोड़कर देश के विभिन्न राज्यों में उनके दौरे हो रहे थे, मात्र अन्य क्षेत्रीय दलों को समझाने और मनाने के लिए। आप के अलावा अन्य दलों को वे राजी न कर सके। कारण था कि प्रधानमंत्री की गद्दी के अनेक दावेदार थे—तृणमूल की ममता बनर्जी, कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी, बहुजन पार्टी की अध्यक्षा मायावती और राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष शरद पवार। सी.पी.आई. और सी.पी.एम. ने अपने पत्ते नहीं खोले और जोर देते रहे कि पहले एकसाथ चुनावी समर जीता जाना चाहिए।

कांग्रेस जो सबसे पुरानी पार्टी है और जिसका देशव्यापी होने का दावा था, वह चाहती थी कि राहुल गांधी के नेतृत्व में ही सब दल मिलकर लड़ें। यहाँ परिवार की प्रतिष्ठा का मामला भी जुड़ा था। राहुल गांधी का तो प्रधानमंत्री बनने का पैदाइशी हक है, ऐसा कांग्रेस का मानना था। यह न तो ममता को मंजूर था और न मायावती को। दोनों ही समय-समय पर प्रधानमंत्री के पद की अपनी दावेदारी का स्मरण कराते रहते थे। कांशीराम मायावती को राजनीति में लाए ही इसी उद्देश्य से थे। २०१४ के चुनाव में बहुजन पार्टी का सफाया हो गया था। मायावती और उनकी पार्टी का अस्तित्व भी संकट में था। उनके शाही और अधिनायकवादी व्यवहार से पार्टी के अनेक नेता या तो उन्होंने निकाल दिए थे या वे स्वयं अलग हो गए तथा बहुत से दूसरे दलों में चले गए। फिर भी मायावती की महत्त्वाकांक्षा बरकरार थी। अपने भतीजे को बहुजन पार्टी में स्थान देने के कारण भी काफी असंतोष पैदा हो गया था। ममता बनर्जी सी.पी.एम. को दो बार हराकर किसी और को अपना नेता मानने को तैयार नहीं थीं। पश्चिम बंगाल में उनका एकच्छत्र राज था। हालाँकि वहाँ भी तृणममूल में फूट पड़ चुकी थी। ममता बनर्जी के अपने भतीजे को राजनीति में लाने और महत्त्वपूर्ण पद देने के कारण पार्टी में बिखराव के बीज उगने लगे। कई पदाधिकारी घोटालों में शामिल होने के कारण तृणमूल कांग्रेस को धक्का लगा। उधर साधारण जनता भी परेशान थी, क्योंकि वह कोई भी काम करना, चाहे अपने घर की मरम्मत हो या नया मकान बनाना हो, स्थानीय तृणमूल के सिंडीकेट को पैसे देने पड़ते थे, इजाजत लेनी होती थी। स्वच्छ प्रशासन की जगह लफंगों का बोलबाला था और पुलिस इसकी अनेदखी करती थी। कोलकाता में जो एक बड़ा पुल बन रहा था, वह टूट गया। कुछ जाने गईं। ठेकेदार ने खराब माल लगाया था, क्योंकि उसने सामान वहीं से खरीदा, जहाँ से सिंडीकेट ने खरीदने के आदेश दिए। अपनी किसी प्रकार की आलोचना के प्रति असहनीय होने के कारण बंगाल के प्रबुद्ध मध्यम वर्ग के लोग भी अंदर-ही-अंदर ममता से नाराज हो रहे थे। इस सबके होते हुए भी पश्चिम बंगाल में उनका दबदबा था। ममता बनर्जी अपने को प्रधानमंत्री पद के लिए सबसे बेहतर दावेदार समझती थीं। शरद पवार तो पिछले तीस-पैंतीस साल से प्रधानमंत्री के पद के लिए लालायित

रहे हैं, पर हर बार वे गच्चा खाते गए, चाहे जब वे कांग्रेस में थे तब या जब अपनी अलग पार्टी बना ली। वही हाल समाजवादी पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव का रहा। उन्हें चुनाव के अवसर पर आशा की किरण दिखाई पड़ी, पर सदैव कौड़ी उलटी पड़ी। पुत्र अखिलेश यादव ने भले ही अध्यक्ष पद से पिता को वंचित कर दिया है, पर उन्हें प्रधानमंत्री बनना चाहिए, यह लालसा तो थी ही। जहाँ तक कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी का प्रधानमंत्री बनने का दावा रहा, मुलायम सिंह, शरद पवार आदि ने कभी उनकी परिपक्वता में अपने संदेह को छिपाया नहीं। आखिर में सभी को कहना पड़ा कि चुनाव के नतीजों के आधार पर ही तय होगा कि प्रस्तावित महागठबंधन का नेतृत्व कौन करेगा और कौन प्रधानमंत्री बनेगा। असल में हुआ यह कि तालाब खुदा नहीं था और मगरमच्छ पहले से ही आ बैठे थे।

देश की सबसे पुरानी राष्ट्रीय पार्टी और आज की सबसे बड़े विरोधी दल कांग्रेस की अजीब स्थिति हो गई है। वैसे आज की कांग्रेस को १९४७ के पहले से जोड़ना गलत है। आज की कांग्रेस का तो वास्तव में आजादकाल के उपरांत ही जन्म हुआ। पुरानी कांग्रेस तो तभी समाप्त हो गई, जब वह दो धड़ों में बँट गई थी। चुनाव की करारी हार से पस्त और त्रस्त कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने अपने इस्तीफे की घोषणा की, पर कमेटी ने उनके इस्तीफे को नामंजूर कर दिया। राहुल गांधी स्वयं अपने पुश्तैनी गढ़ अमेठी में चुनाव हार गए। इस प्रकार की आशंका उन्हें पहले से थी, अतएव केरल में वायनाड, जो कांग्रेस की पक्की सीट मानी जाती है, वहाँ के प्रत्याशी बने और विजयी हुए। कार्यकारिणी की बैठक में राहुल ने यहाँ तक कह दिया कि चिदंबरम अपने बेटे की टिकट के लिए अड़े रहे और न मिलने पर पार्टी छोड़ देने की भी धमकी दी। यही हाल रहा राजस्थान का, जहाँ असेंबली के चुनाव में कुछ दिनों पहले कांग्रेस जीती थी और अशोक गहलौत मुख्यमंत्री बने। गहलौत भी अड़े रहे कि उनके अपने लोकसभा क्षेत्र से उनके बेटे वैभव गहलौत को टिकट दिया जाए। उनकी जिद पर टिकट मिला, पर पुत्र करीब तीन लाख मतों से हारा। राजस्थान में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली। ऐसे ही हालात मध्य प्रदेश में रहे। अपने पुराने चुनावी क्षेत्र से कमलनाथ, जो मुख्यमंत्री हो गए थे, अपने बेटे के दावे के समर्थन में रहे, वह तो जीत गया, पर बाकी का सफाया हो गया। राहुल के कहने का मतलब शायद यही था, खासकर बड़े नेता अपने स्वार्थ साधन में लगे रहे, पार्टी के हित में नहीं।

हालाँकि बताया जाता है कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में चिदंबरम अत्यंत भावुक हो गए, उन्होंने कहा कि यदि राहुल ने इस्तीफा दिया तो तमिलनाडु में बहुत से समर्थक दुखी होकर आत्मघात कर लेंगे। किंतु राहुल गांधी अपने इस्तीफे की जिद पर कायम रहे। सोनिया गांधी और प्रियंका गांधी वाड्रा भी उनको इस्तीफा वापस लेने के लिए राजी नहीं कर सकीं। कुछ दिनों तक राहुल कांग्रेस नेताओं से मिले भी नहीं, जो इस्तीफा न देने की वकालत कर रहे थे। फिर कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। राहुल गांधी सबकी मनौती, चिरौरी के बाद भी अपने फैसले से टस-से-मस नहीं हुए। बैठक में कांग्रेस संसदीय दल की नेता तो सोनिया गांधी पुनः चुनी गईं, किंतु लोकसभा में कांग्रेस दल का नेता कौन होगा, यह अभी तक अनिश्चित है। पता लगा है कि राहुल गांधी विदेश चले गए हैं। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस पार्टी असमंजस में है। राज्य स्तर पर नेतृत्वहीन होने के कारण कार्यकर्ताओं में हताशा है। कई राज्यों में संगठन की हालत बेहद खस्ता है। उत्तर प्रदेश, जो कभी कांग्रेस का गढ़ था, में संगठन नाम का ही है। आपसी वैमनस्य और फुटौवल के कारण राज्यों के संगठन तितर-बितर हो रहे हैं। नेतृत्व की प्रतिद्वंद्विता अभी भी जारी है। मध्य प्रदेश में सिंधिया और कमलनाथ ने, हालाँकि सिंधिया लोकसभा चुनाव में गुना से बुरी तरह परोजित हुए, 'महाराज' होने का दबदबा निष्फल रहा। राजस्थान में गहलौत और सचिन पायलट की प्रतिद्वंद्विता बहुत मुखर है। गहलौत ने प्रदेश अध्यक्ष और अपने उपमुख्यमंत्री पर ही अपने पुत्र की हार का ठीकरा फोड़ दिया।

पंजाब, केरल तथा तमिलनाडु में, खासकर डी.एम.के. की सहायता से कांग्रेस का चुनावी खेल संतोषजनक रहा। पर इन राज्यों में भी कांग्रेस में काफी आंतरिक मतभेद और वैमनस्य है। पंजाब में अमरेंद्र सिंह कद्दावर नेता हैं, किंतु नवजोत सिंह सिद्धू अपनी डींग अलग हाँक रहे हैं। उनकी बीबी को, जो चंडीगढ़ सीट का टिकट माँग रही थी, नहीं मिली, उनका कहना है कि केवल राहुल ही उनके नेता हैं। पिछले दिनों मुख्यमंत्री अमरेंद्र सिंह ने सिद्धू के पोर्टफोलिओ बदल दिए, पर उन्होंने नया दायित्व अभी तक नहीं सँभाला है। राहुल गांधी और प्रियंका गांधी वाड्रा के पास वे अपनी शिकायत लेकर दिल्ली पहुँचे। सिद्धू का कहना है कि उनको हलका-फुलका नहीं समझना चाहिए। पता नहीं कांग्रेस अपनी आज की पस्त हालत में कहीं पुराना खेल तो नहीं खेल रही है कि क्षेत्रीय नेताओं को मजबूत न होने दिया जाए, उनके खिलाफ कुछ विरोध उभरना ही चाहिए, ताकि वे दिल्ली में तथाकथित हाईकमांड की शरण में आएँ। अनुशासनहीनता कांग्रेस में चरम सीमा पर है, ऐसा प्रतीत होता है।

बहुत से पर्यवेक्षकों और टिप्पणीकारों का कहना है कि राहुल गांधी का कथन कि गांधी-नेहरू परिवार से इतर कांग्रेस का कोई अध्यक्ष होना चाहिए, जो सामयिक और समीचीन है, इसकी आवश्यकता है, क्योंकि अब गांधी परिवार का करिश्मा समाप्त हो गया है। देश के मध्यवर्गीय युवा और युवती अब गांधी परिवार के पुराने मोहपाश से मुक्त हैं। उनके अनुसार लोकतंत्र में योग्यता के आधार पर सभी को अवसर मिलना चाहिए। कांग्रेस का धर्मसंकट यह है कि उसके अंदर इतनी मारामारी है, इतने आपसी मतभेद हैं, इतनी आपसी फूट है, इतने महत्त्वाकांक्षी बैठे हैं कि अध्यक्ष बनने के गृहयुद्ध में पार्टी ही टूट जाएगी। कुछ का कहना है कि परिवार का नाम ही वह माध्यम

है, जो कांग्रेस को अभी तक जोड़े हुए हैं, वरना पार्टी कब की बिखर जाती। सवाल है कि आखिर एक राजनैतिक दल के लिए यह कब तक संभव है।

एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इस चुनाव में कांग्रेस ने सेकुलर शब्द का उपयोग कम ही किया। अल्पसंख्यकों की बात की, किंतु मुसलमानों को ज्यादा सामने रखकर नहीं। डर था कि मुसलिम तुष्टीकरण का सवाल लागों के मन में उठेगा। सेकुलर शब्द तो अब राजनीति में हास्यास्पद सा हो गया है। यह बात अलग है कि अपने आपको कुछ लिबरल कहनेवाले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, भाजपा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मस्तकोषीय स्वाभाविक विरोधी इसकी दुहाई देते रहते हैं। कांग्रेस द्वारा सॉफ्ट हिंदुत्व, यानी नरम हिंदुत्व का काफी सहारा लिया। राहुल गांधी द्वारा शंकर उपासक, जनेऊधारी, धर्म स्थानों में जाने और पूजा-पाठ करने का रास्ता चुनाव में अपनाया गया। फिर भी बात नहीं बनी, क्योंकि जनता इतनी नासमझ नहीं है कि वह इन हथकंडों को समझ न सके। उसको लगा कि यह अवसरवादिता है, दिखावा है। प्रियंका गांधी वाड्रा की प्रयागराज (पहले इलाहाबाद) से वाराणसी तक नाव की यात्रा में, जो पूजा-पाठ के दृश्य जनता ने देखे, उसमें उनको सच्ची उपासना की गंभीरता का अभाव ही दिखाई दिया। प्रियंका वाड्रा की भाव-भंगिमा में कृत्रिमता और दिखावा ही उनके देखने में आया, मानो किसी नाटक का पार्ट अदा किया जा रहा हो। इस मामले में मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने तो हद कर दी। वे पहले नर्मदा यात्रा का आयोजन सार्वजनिक रूप से कर चुके थे। अपने गुरु अर्जुन सिंह की तरह उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ कोई कम नहीं हैं। भोपाल की लोकसभा सीट बहुत समय से भाजपा के कब्जे में रही है। कमलनाथ और सिंधिया ने सोचा कि दिग्विजय सिंह अपने राजनीतिक अनुभव, लंबे संपर्क और चातुर्य से यह सीट जीत सकते हैं। इसमें कमलनाथ और सिंधिया की प्रतिद्वंद्वी की भावना छिपी थी, जो समय-समय पर पहले भी सामने आती रही है। हार गए तो उनकी ही किरकिरी होगी। दिग्विजय सिंह ने चुनौती स्वीकार की। स्वामी स्वरूपानंद का तो वरदहस्त उन पर था ही। उनके समर्थन में सैकड़ों साधु-संतों की यात्रा आयोजित की गई। एक पाइलट बाबा आए। उन्होंने मुहिम सँभाली। यज्ञ आदि तरह-तरह के आयोजन किए गए। यह प्रचारित करने के लिए कि दिग्विजय सिंह बड़े आस्थावन हैं, अपने धर्म से उनका बड़ा पुराना लगाव है।

वैसे सबको पता है कि दिग्विजय सिंह मुंबई के जिहादी प्रचारक जाकिर के पुराने समर्थक रहे हैं। डंके की चोट पर वे उसके तथाकथित जनहित कार्यक्रमों की प्रशंसा करते रहे। जाकिर इस समय मलेशिया में भगोड़ा के रूप में रह रहा है। भारत सरकार उसकी गिरफ्तारी और प्रत्यार्पण की कोशिश कर रही है। कुछ जिहादियों को पकड़ा गया था, दिल्ली के बटाला हाउस में पुलिस के दावे को दिग्विजय सिंह ने गलत बताया था, जिसमें एक पुलिस अधिकारी शर्मा की मृत्यु हुई थी। पुलिस की कारवाई आतंकवादियों को पकड़ने की थी। भोपाल में चुनाव के लिए उन्होंने अब नरम हिंदुत्व का चोला पहना, पर हारे उस साध्वी प्रज्ञा ठाकुर से, जिनको भाजपा ने अपने प्रत्याशी के तौर पर खड़ा किया। वे मालेगाँव कांड और समझौता एक्सप्रेस कांड में आरोपी हैं। यह सही है कि जब तक अदालत निर्णय न करे, वे दोषी नहीं कही जा सकती हैं। पर फिर भी हमारी राय में अच्छा होता कि शिवराज सिंह चौहान प्रत्याशी होते, विरोधी दलों को भी भाजपा की आलोचना का अवसर न मिलता। भाजपा ने शायद यही सोचा कि विष-विष को काटता है और वह सोच भोपाल के जनादेश से सही साबित हुई।

सबसे दयनीय स्थिति कांग्रेस की है। लोकसभा का सत्र सोमवार १७ जून को शुरू हुआ। जो सांसद निर्वाचित हुए हैं, उनको शपथ दिलाई गई। राहुल गांधी विदेश से वापस आ गए, शपथ ग्रहण समारोह में भाग लिया। अमेठी की अध्यक्षता वाली कोर कमेटी की ओर से प्रवक्ता सुरजेवाला ने घोषणा की है कि अभी कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ही हैं। दयनीय स्थिति इसलिए भी है कि सूझ नहीं पड़ रहा है कि क्या किया जाए। अमेठी की हार के उपरांत सोनिया गांधी के साथ प्रियंका गांधी मतदाताओं को धन्यवाद देने रायबरेली पहुँचीं। गुस्से में कांग्रेस कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कह डाला कि कुछ लोगों ने काम किया और जिन्होंने काम नहीं किया, उनको ढूँढ़-ढूँढ़कर निकालेंगे। इस आक्रामक रुख के कारण न केवल रायबरेली वरन् पूरे प्रदेश में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में रोष की लहर व्याप्त हो गई है। सोनिया की जीत के बारे में उन्होंने कहा कि वे तो अपनी छवि के कारण जीती हैं। केवल कार्यकर्ताओं पर हार का दोष लगाना बेमानी है, जब नेतृत्व सही मार्गदर्शन न कर सके और न संघठन को मजबूत कर सके। अगर प्रियंका पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनरल सेक्रेटरी नियुक्त हुई थीं, क्या वहाँ कांग्रेस के पराजय के लिए वह उत्तरदायी नहीं हैं? यही बात अमेठी की राहुल की हार पर भी लागू होगी, क्योंकि प्रियंका ही रायबरेली और अमेठी के देखभाल की जिम्मेदारी उठा रही थीं। अभी भी मानसिकता, जैसा मोदी कहते हैं कि 'नामदार' की है, वैयक्तिक और वंशवाद के बड़प्पन की बू काम कर रही है। इसी मानसिकता ने उन्हें जमीनी सच्चाइयों से दूर कर दिया और कांग्रेस पार्टी तथा उसके अध्यक्ष ख्वाबी दुनिया में ही रह गए। अपने गिरहबान में न झाँककर प्रियंका वाड्रा ने मोदी को फिर कोसा कि उन्होंने झूठ, फरेब और अनैतिक हथकंडों से चुनाव जीता है।

पंकज वोहरा एक सुलझे हुए पत्रकार हैं। उनको दिल्ली की राजनीति की अद्‌भुत जानकारी है। उन्होंने 'संडे गार्जियन' में लिखा है कि राहुल गांधी को उनके अपने ऑफिस से अंत के दिनों तक गलत सूचनाएँ मिलती रहीं और उन पर राहुल गांधी विश्वास करते रहे। प्रवीण चक्रवर्ती, जो उनके चुनावी व्यवस्था के सबसे विश्वासपात्र सहायक थे, बताते रहे कि हर हालत में १६४ सीटों पर कांग्रेस जीतेगी,

बल्कि उससे कहीं ज्यादा १८४ तक भी हो सकती हैं। उन्होंने पेशेवर आदमी प्रशांत किशोर की तरह अपने चुनावी आँकड़ों के विश्लेषण के लिए २४ करोड़ वसूल किए। इसी प्रकार दिव्या स्पंदना, जो कांग्रेस अध्यक्ष के दफ्तर में सोशल मीडिया पर ट्वीट करती थीं, उसने आठ करोड़ लिये। कहा जाता है कि नतीजों के आने के बाद राहुल की निजी टीम का पत्ता कट गया। यही नहीं, राजस्थान में गहलौत ने २५ सीटों में से १४ से १६ तक जीतने की बात कही। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमलनाथ ने २९ सीटों में ११ से १५ तक जीतने का विश्वास दिलाया। केवल छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री भूपेश वघेल ने तीन सीटों के जीतने की संभावना बताई थी। दिल्ली कांग्रेस ऑफिस के आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर वघेल द्वारा कहा गया कि ८ सीटें कांग्रेस को मिलेंगी। अहमद पटेल ने गुजरात के बारे में एक भी सीट न मिलने की आशंका व्यक्त की, जिससे कांग्रेस अध्यक्ष नाराज हो गए। छत्तीसगढ़ में दो सीटों पर जीत हुई। गुजरात और राजस्थान में एक भी सीट पर कांग्रेस को जीत नहीं हुई, मध्य प्रदेश में केवल एक, वही पुरानी कमलनाथ का चुनावी क्षेत्र।

अपनी टीम और चक्रवर्ती के अत्यंत उत्साहवर्धक समाचार से प्रसन्न राहुल गांधी ने मतगणना के एक दिन पहले एम.के. स्टालिन को फोन किया। बताया जाता है कि वे उनको अपने मंत्रिमंडल में गृहमंत्री बनाना चाहेंगे। इसी प्रकार शरद पवार से अनुरोध किया गया कि उनकी वरिष्ठता के अनुकूल उनको मंत्रालय दिया जाएगा। उमर अब्दुल्ला, अखिलेश और तेजस्वी यादव को भी फोन किया गया। अखिलेश को कम-से-कम चालीस सीटों की उम्मीद थी और तेजस्वी को २० सीटों की। मंत्रिमंडल के लिए कांग्रेस पार्टी के मल्लिकार्जुन खड़गे, पवन कुमार बंसल, हरीश रावत, अजय माकन आदि के नाम तय हुए थे। राहुल और प्रियंका प्रयत्नशील थे कि नरेंद्र मोदी के हटने के बाद किन-किन दलों का सहयोग मिल सकता है। साँझे की सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपति के सामने अपना दावा पहले पेश करने के लिए कांग्रेस द्वारा एक कानूनी पंडित से दो ड्राफ्ट बनवाए गए। एक में सीधा दावा कांग्रेस का अपना था। दूसरा था कि यू.पी.ए. के किसी भी अन्य दल को कांग्रेस के समर्थन का। किंतु अगले दिन जैसे ही नतीजे आने शुरू हुए कि आशाओं का यह किला धूल-धूसरित हो गया। स्वर्गनसैनी से गिरने के कारण कांग्रेस में निराशा का वातावरण और भी गहरा गया। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने इसीलिए इस्तीफे की पेशकश की और कहा कि परिवार से अलग किसी व्यक्ति को कांग्रेस अध्यक्ष बनाना उचित होगा। कांग्रेस की दृष्टि परिवार के बाहर जाती ही नहीं। इस कारण गतिरोध है। वैसे वे आकांक्षी बहुत हैं। एक समाचार है कि मुकुल वासनिक, जो कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी हैं, वे पहले लोकसभा में रह भी चुके हैं, मंत्री भी रहे। दलित वर्ग के हैं। कहा जा रहा है कि शीला दीक्षित और पृथ्वीराज चह्वाण भी अध्यक्ष पद के उम्मीदवार हैं। वासनिक के अध्यक्ष बनने की अधिक संभावना है। एक दूसरा समाचार है कि गतिरोध की स्थिति में कांग्रेस के मुख्यमंत्री भी आपस में मंत्रणा कर रहे हैं कि ऐसी स्थिति में क्यों न वे अधिक गतिशील हों और कांग्रेस का अध्यक्ष उनकी मर्जी का हो, ताकि राज्यों का बोलबाला कांग्रेस में रहे, क्योंकि आखिरकार कांग्रेस का अस्तित्व तो प्रदेशों पर ही निर्भर है। देखना है कि कांग्रेस में आगे क्या गुल खिलते हैं।

नरेंद्र मोदी की आशातीत और आश्चर्यचकित विजय कैसे और क्यों हुई, यह विरोधी दल नहीं समझ पा रहे हैं। भारत बदल गया है। एक बहुत बड़ा तबका मध्य वर्ग में आ गया है। उच्च-मध्यम वर्ग और अति समृद्ध इनकी श्रेणियाँ अलग हैं। धीरे-धीरे वैश्वीकरण, शिक्षा के प्रसार, टी.वी. के कारण जो नीचे के वर्ग कहे जाते हैं, उनकी आकांक्षाएँ बढ़ रही हैं। आरक्षण की भी इसमें उल्लेखनीय भूमिका रही है। समय-समय पर जो चुनाव होते हैं, इससे वंचित और साधनहीन, निरीह, महिलाएँ आदि में जागरूकता बढ़ती जाती है और उनका जो देश है, उनका जो हक है, उसकी वे माँग करते हैं। मंडल आयोग में आनेवाले समुदाय अब अधिक क्रियाशील हैं। वे और आगे बढ़ना चाहते हैं। प्रधानमंत्री समय-समय पर याद दिलाते हैं कि वे पिछड़ा वर्ग के हैं; कोई भी व्यक्ति योग्यता तथा जनता के आदेश से ऊँचा-से-ऊँचा पद पा सकता है। मोदी ने चुनाव के नतीजों से आइडेंटी पॉलिटिक्स अथवा अस्मिता की राजनीति को धराशायी कर दिया है। जाति, क्षेत्र के आधार पर अब तक जो राजनीति करते आए हैं, उनको धक्का लगा। लोग देख रहे हैं कि उसका लाभ कुछ लोगों या परिवारों तक सीमित रहता है, सर्वसाधारण तक नहीं पहुँचता है। इन सच्चाइयों से विरोधी दल जानबूझकर अनजान बने हुए हैं। मोदी का नारा 'सबका साथ, सबका विकास' सभी वंचित, साधनहीन या पिछड़े समुदायों को प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता दिखाई देता है, और इसीलिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के प्रति वे आकर्षित हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि जातिवाद या जाति का मुद्दा समाप्त हो गया, किंतु अब लोगों को एहसास हो रहा है कि कुछ लोग इसका दुरुपयोग निहित स्वार्थ के लिए करते हैं। यह शुभ लक्षण है, समतावादी समाज का आना संभव है और उसके लिए सतत प्रयत्न आवश्यक है—कानून और समाज-व्यवस्था दोनों के स्तर पर।

लोकसभा के चुनाव के पहले जो दल बहुत उछल-कूद कर रहे थे, उनमें एक केजरीवाल की आप पार्टी भी थी। आखिर तक दिल्ली में कांग्रेस से गठबंधन होगा, यह नाटक होता रहा, पर नतीजा कुछ नहीं निकला। भाजपा ने पहले की तरह दिल्ली की सातों सीटों पर पुनः कब्जा कर लिया और वह भी बहुत बड़े मतों के अंतर से। पंजाब में जरूर एक सीट आप के हाथ आई। उत्तर प्रदेश में बसपा और समाजवादी गठबंधन में मायावती फायदे में रहीं। २०१४ में जहाँ शून्य था, २०१९ में दस सीटें प्राप्त कर लीं। मायावती अस्तित्व के संकट में फँस गई थीं, उससे उभर आईं। उनके सहयोगी अखिलेश

यादव को केवल पाँच तथा तीसरे साझीदार अजीत सिंह की पार्टी राष्ट्रीय लोकदल को शून्य मिला। न अजीत सिंह और न उनके पुत्र ही चुनाव जीत पाए। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उन्हें जाट मतों पर बड़ा गुमान था, वह भ्रम टूट गया। अखिलेश की समाजवादी पार्टी के पास पाँच सीटें पहले थीं, वे तो बरकरार रहीं, पर उनकी पत्नी डिंपल यादव को कन्नौज में हार का मुँह देखना पड़ा। दो-तीन भाई-भतीजे भी हारे। घर की फूट से मुलायम सिंह की लंका को आग लग गई। बुआ मायावती का अखिलेश ने हर प्रकार से आदर किया, स्वयं कभी-कभी अपने को अपमानित महसूस करते हुए भी। लेकिन चुनाव के बाद मायावती ने भतीजे से नाता तोड़ लिया, कहा कि उत्तर प्रदेश में अब विधानसभा के लिए उप चुनावों में वे अलग से चुनाव लड़ेंगी। यह जरूर कहा कि डिंपल और अखिलेश से उनके व्यक्तिगत संबंध अच्छे बने रहेंगे। बिहार में लालू यादव की पार्टी की बहुत बुरी शिकस्त हुई। उनकी बेटी मीसा भी चुनाव हार गई। खीज में उन्होंने जिन विकास कार्यक्रमों को अपने एम.पी. लोकल डेवलपमेंट फंड से राज्यसभा सदस्य के रूप में स्वीकृति दी थी, उसको निरस्त कर दिया। यह विचित्र राजनीति है। वोटरों ने जिताया नहीं तो हम उनसे बदला लेंगे।

पश्चिम बंगाल में ममता अत्यंत चिंतित हैं, क्योंकि भाजपा ने १८ सीटें जीतीं और तृणमूल कांग्रेस ने २२, क्योंकि दो साल के बाद वहाँ विधानसभा के चुनाव होने वाले हैं, उसके पहले कुछ शहरी स्थानीय निकायों के भी चुनाव होंगे। उन्हें भाजपा के 'जय श्रीराम' नारे से चिढ़ हो गई। उनकी शिकायत है कि भाजपा ने बाहर से गुंडे बुलाए हैं। बंगाल की सांस्कृतिक अस्मिता खतरे में है। हिंसक घटनाएँ बढ़ रही हैं, दोनों दलों के समर्थक जान गँवा रहे हैं। ममता ने मानसिक संतुलन खो सा दिया है। वे जब बाहरी लोगों की बात करती हैं, भूल जाती हैं, उनके पूर्वज भी कभी कन्नौज से आए थे। संविधान के अंतर्गत कोई भी नागरिक कहीं भी रह सकता और रोटी-रोजी कमा सकता है। वे नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री मानने को तैयार नहीं। 'फानी चक्रवात' के समय प्रधानमंत्री का फोन लेने से इनकार कर दिया। अब व्यर्थ में डॉक्टरों से टकराव मोल लिया। राज्यपाल को भी उनसे संपर्क करना कठिन हो गया। बंगाल राज्य में सब ओर जो अराजकता फैल रही है, ममता के अनुसार उसके लिए भाजपा उत्तरदायी है। सब उसके षड्यंत्र हैं। केंद्र उनकी सरकार को गिराना चाहता है। प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में आने से ममता मुकर गईं और नीति आयोग की पहली बैठक में भी नहीं आईं। अपनी चुनावी असफलता का ठीकरा वे ईवीएम मशीनों पर फोड़ रही हैं। वह चुनाव के नतीजों को भी मानने को तैयार नहीं हैं। मायावती ने भी ईवीएम मशीनों को दोषी ठहराया है। इधर सोनिया गांधी ने रायबरेली में कहा कि चुनावी प्रक्रिया संदेहास्पद है। मतलब यही कि ईवीएम उनकी पार्टी की हार के लिए जिम्मेदार हैं। पर वे स्वयं भी तो उसी तंत्र द्वारा जीती हैं। शरद पवार ऐसे मँजे हुए राजनीतिज्ञ, पर उन पर भी ईवीएम का भूत सवार है, यद्यपि उनकी बेटी बारामती से चुनाव जीत गई। उनके भतीजे का, जो महाराष्ट्र का पूर्व उपमुख्यमंत्री रहा है, उसका बेटा चुनाव हार गया, वह ईवीएम को विरोधी पार्टियों की हार के लिए उत्तरदायी नहीं मानता। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने चुनावी नतीजों के बाद कहा था कि कांग्रेस के ५२ सदस्य लोकसभा में नाकों चने चबवा देंगे। अब डर इस बात का है कि विरोध पक्ष की पार्टियाँ इस कदर खीजी हुई हैं कि कहीं प्रारंभ से ही लोकसभा की काररवाई नियमानुसार चलने भी देंगी या नहीं। प्रधानमंत्री मोदी को लोकसभा चुनाव में मिले जनादेश की अवहेलना तो नहीं होगी। १७वीं लोकसभा के चुनावी परिणाम देश के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और उनको स्वेच्छापूर्वक एवं सदाशयता से सभी दलों को स्वीकार करना चाहिए, यही संविधान और लोकतंत्र की मंशा है।

इस चुनाव के अनेक पक्ष हैं, जिनके विश्लेषण में जाने की इस समय आवश्यकता नहीं और संभव भी नहीं। समय बीतने पर स्थिति और स्पष्ट होगी। विरोधी पक्षों का यह कहना था कि मोदी को हटाओ, भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को हटाओ, और यदि भाजपा सत्ता में आती भी है तो ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि कम-से-कम नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री न बन सकें और १७वीं लोकसभा के चुनाव को एक व्यक्ति पर केंद्रित कर दिया। उसका लाभ मोदी को ही हुआ। यह आम चुनाव अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव की तर्ज का हो गया। यहाँ यह कहना भी जरूरी है कि चुनाव के पहले और चुनाव के दौरान राजनीतिक विमर्श की भाषा का स्तर बहुत गिर गया और उसकी जिम्मेदारी सभी दलों पर है। प्रधानमंत्री को चुनाव के बाद भी दो बार बिहार की पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी ने 'राक्षस' कहा। अपशब्द लोकतंत्र की शोभा नहीं बढ़ाते हैं। २०१४ के पहले गुजरात के प्रसंग को लेकर देश-विदेश के बुद्धिजीवियों ने बयान दिए, लेख लिखे कि मोदी के आते ही देश बरबाद हो जाएगा। इस बार भी वही बातें दोहराई गईं। अलग-अलग तथाकथित बौद्धिक समुदायों के बयान मोदी के विरुद्ध आए और अब भी आ रहे हैं। लेख लिखे जा रहे हैं कि संविधान और प्रजातंत्र खतरे में है। ऐसी पुस्तकें भी आ रही हैं। हैदराबाद के के.एस. कोमीरेडी ने अपनी पुस्तक 'मैलीवोलेंट इंडिया : ए शॉर्ट हिस्टरी ऑफ द न्यू इंडिया' में नरेंद्र मोदी के प्रति अपने रोष को छिपाया नहीं है। एक जगह लिखा है कि मोदी की उपस्थिति, जो सबसे निकृष्ट व्यक्ति, प्रधानमंत्री चुना गया, उस पद के लिए, जिसे नेहरू और शास्त्री ने शोभित किया था, मेरे लिए अत्यंत तकलीफ का कारण बना। वायनाड में अपने मतदाताओं को धन्यवाद देने गए कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने अभिनंदन सभा में कहा, 'वह (मोदी) प्रतिनधि हैं, इस देश की सबसे निकृष्ट भावनाओं के, वह प्रतिनिधित्व करते हैं घृणा का, वह प्रतिनिधित्व करते हैं असुरक्षा का, वह प्रतिनिधित्व करते हैं झूठ का।' राहुल गांधी स्वयं कहते रहते हैं कि उनके हृदय में मोदी के लिए स्नेह है, पर वह न उनके चेहरे से और न शब्दों से

झलकता है। अब देश कामना करता है कि इस राजनीतिक भाषा की दुर्गति का अंत शीघ्र हो। कड़ी से कड़ी बात सभ्य ढंग से सुविचारित भाषा में कही जा सकती है। इंग्लैंड की संसद् इसका उदाहरण रही है।

मोदी की अप्रत्याशित जीत से बौराए हुए व्यक्तियों और दलों को समझने की आवश्यकता है कि मोदी की यह जीत कोई फेक जीत नहीं है, भुलावा नहीं है, छलावा नहीं है। यह भाजपा के अध्यक्ष अमित शाह की रणनीति का नतीजा, जिन्होंने छोटे से छोटे मुद्दे को ध्यान में रखकर, स्थानीय समस्याओं पर विचार करते हुए हर राज्य के लिए रणनीति बनाई। अपने कार्यकर्ताओं के मनोबल को निरंतर बढ़ाया। अपने संगठन को दृढ बनाया। विरोधी दलों के जाति समीकरण और क्षेत्रीय गठबंधन निरर्थक साबित हुए। सभी दल चुनाव में अनाप-शनाप धन खर्च करते हैं, जो सत्तारूढ़ होता है, उसको हमेशा अधिक सुविधा रहती है। राफेल और राफेल सौदे की बात तथा मोदी के भ्रष्टाचार की बात लोगों के गले नहीं उतरी, क्योंकि मोदी के पीछे-आगे कोई है ही नहीं। मोदी के शब्दों में राष्ट्र ही उनका परिवार है। 'चौकीदार चोर है' का नारा भी राहुल गांधी के लिए उलटा पड़ा। मोदी के शासन में भले कोई कमी रही हो, पर मोदी के प्रति जनता के विश्वास में कोई कमी नहीं आई। पुलवामा, बालाकोट आदि घटनाओं से जनता में विश्वास और दृढ़ होता गया कि मोदी ही है, जो इन स्थितियों का मजबूती से सामना कर सकता है। विपक्ष में जनता को दिखाई पड़ रहा था भानुमती का कुनबा, अपनी-अपनी महत्त्वाकाक्षाओं और निहित स्वार्थी से प्रेरित अच्छी तरह से जाने-परखे नेतागण। वे कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ। इनमें जनता को कोई विकल्प नहीं दिखाई दे रहा था। मोदी से जनता का तादात्म्य स्थापित हो गया था, उनकी भाषण-कुशलता के कारण अथवा उनकी संप्रेषण कला के कारण, जिससे वे अपनी बात को समझा सके। यही नहीं, उन्हें मोदी द्वारा शुरू की गई योजनाओं से, चाहे उनमें कुछ कमियाँ भी रही हों, लाभ मिलने का एहसास हुआ। इतने विस्तृत क्षितिज पर कभी किसी ने नरेंद्र मोदी के पहले साधारण व्यक्ति के लिए सोचा नहीं था। जनता को विश्वास हो गया कि 'मोदी है तो मुमकिन है', जनसाधारण के लाभ की जो योजनाएँ हैं, वे संभव हैं। मोदी जो कह रहे हैं, अवश्य करेंगे। विपक्षी दलों के नेताओं के प्रति बड़ी विश्वासहीनता थी। मोदी की कुछ योजनाओं ने जनता में उनके प्रति अटूट विश्वास पैदा कर दिया है कि मोदी में वायदे पूरे करने की क्षमता है। मोदी की अथक शारीरिक और मानसिक क्षमता से लोग अभिभूत थे। मोदी की विदेश यात्राओं से देश का कद बढ़ा, भारत भी एक देश है, यह सबको आभास हुआ। पूरा विपक्ष मोदी की विदेश यात्राओं की हँसी उड़ाता रहा। मोदी देश के सर्वप्रिय नेता हैं, यह सर्वमान्य है, विपक्ष चाहे कुछ भी कहता रहे। नरेंद्र मोदी विकास और सुरक्षा, प्रगति और गौरव के पर्याय हो गए। जिस ऐतिहासिक जीत से पूरा विश्व आश्चर्यचकित है और विपक्षी दल हतप्रभ हैं, वह नरेंद्र मोदी और अमित शाह की सूझ-बूझ, कल्पना-शक्ति, बहुआयामी कठोर परिश्रम तथा धैर्य का परिणाम है। एक स्वतंत्र चिंतक-विचारक ने सही कहा कि बहुत से नेता जीत जाते हैं, क्योंकि जनता को कोई विकल्प नहीं दिखाई पड़ता, परंतु मोदी की जीत हुई, क्योंकि मोदी ने किसी भी विकल्प के विषय में सोचना ही अमान्य कर दिया।

नरेंद्र मोदी अब दूसरी बार प्रधानमंत्री के रूप में अपनी 'नए भारत' की अवधारणा को साकार करने में, मूर्तिमान करने में पूरी तरह सक्षम हैं। देश के सामने बहुत सी नई-पुरानी समस्याएँ हैं, जिन पर बाद में विचार करना उचित होगा। इस समय सबसे अहम समस्या है कि देश का एक तिहाई से अधिक भाग भीषण अकाल की चपेट में है, राज्यों के सहयोग से उसका मुकाबला करना है। १७वीं लोकसभा अनेक मायनों में नई है। ऐसे कुछ चेहरे इस बार नहीं होंगे, जिन्होंने न केवल भाजपा को वरन् अपनी उपस्थिति से सदन को भी गरिमा प्रदान की। नए सदस्यों को अनुशासन और उत्तरदायित्व से सदन की कार्यप्रणाली को समझना होगा। उनके व्यवहार और आचरण पर सबकी निगाहें रहेंगी। नए मंत्रिमंडल को भी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अवधारणा के अनुरूप अपने को ढालना होगा। प्रधानमंत्री मोदी ने अपने पिछले दो भाषणों में अपने सदस्यों के लिए बहुमूल्य मार्गदर्शन किया है, जिसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। उसका अनुपालन होना चाहिए और उसके लिए भाजपा अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री दोनों को ही सावधान रहना होगा, ताकि सदस्य अपनी शपथ की गंभीरता और अपने पद के महत्त्व को सदैव ध्यान में रखें।

'सबका साथ, सबका विकास' और अब प्रधानमंत्री ने 'सबका विश्वास' की जो बात कही है, उसके मूल तत्त्व और वृहद महत्त्व को समझें। संविधान सर्वोपरि है। न तो मौखिक रूप से और न व्यवहार में, उसकी लक्ष्मण रेखाओं का उल्लंघन होना चाहिए। तभी तो हम सबका विश्वास प्राप्त कर सकेंगे। जनता विपक्ष से भी सकारात्मक तथा रचनात्मक संसदीय व्यवहार की अपेक्षा रखती है। विरोध पक्ष अपना विरोध प्रदर्शित करे, सरकार की गलतियों को जोरदार ढंग से बताए, पर संसद् की काररवाई में अवरोध पैदा नहीं करे। संसद् कानून बनाने के लिए है। जनता की आवाज उठाने का, जनता के अभाव-अभियोगों को उजागर करने का वह एक फोरम है। अतएव संसद् की काररवाई हर हालत में चलनी ही चाहिए। संसद् चलनी चाहिए, ताकि जनता की भलाई के काम हो सकें, समस्याओं के समाधान निकल सकें। चुनाव की हार-जीत पाँच साल की है, किंतु इसमें लोकतंत्र का भविष्य निहित है। हार-जीत राजनीति में होती रहेगी, पर संवैधानिक लोकतंत्र की अपनी निरंतरता है, जिस पर किसी प्रकार की आँच नहीं आनी चाहिए, यह प्रतिबद्धता सबको ध्यान में रहनी चाहिए। सबको सम्मति दे भगवान्।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

संकट-मोचक तीन व्यक्ति

● डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

मेरे बचपन का शहर रामेश्वरम एक छोटा सा टापू था। इसकी उच्चतम चोटी 'गंधमादन पर्वतम्' थी। इस चोटी पर चढ़कर आप सारे रामेश्वरम को देख सकते हैं, नारियल के हरे पत्तों को हर तरफ देख सकते हैं। इसी तरह से फैले हुए समुद्र को दूर-दूर तक देखा जा सकता है। रामनाथ स्वामी मंदिर का गोपुरम् आकाश की ऊँचाइयों को छूता है। यहाँ रहनेवाले लोगों की कमाई का साधन नारियल की खेती, मछली व्यापार तथा पर्यटन है। यह स्थान इस पवित्र तीर्थ-स्थल के कारण प्रसिद्ध हुआ था। रामेश्वरम का पवित्र पर्यटन स्थल भारत का विख्यात धार्मिक पर्यटन स्थल है, जो हर समय दर्शनार्थियों से भरा रहता है।

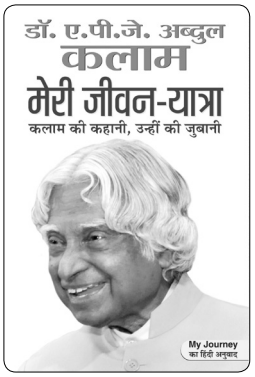

इस छोटे से शहर में मुख्यत: हिंदुओं के घर थे। कहीं-कहीं हमारे जैसे मुसलिम परिवार भी थे। इसके साथ ही कुछ ईसाई परिवार भी रहते थे। हर समुदाय यहाँ शांतिमय वातावरण में रहता था। हम सब सौहार्दपूर्ण व शांतिपूर्ण माहौल में जीते थे तथा एक-दूसरे की सहायता के लिए हर समय तैयार रहते थे। भेदभाव व नफरत की आग दुनिया में फैली थी, लेकिन अभी यहाँ तक नहीं पहुँची थी। हर रोज अखबारों में जात-पाँत के झगड़ों की खबरें सुनने में आती थीं; परंतु यहाँ के लोग शांतिपूर्ण माहौल में आराम से जिंदगी गुजारते थे।

शांति का यह वातावरण इस शहर में कई वर्षों से इसी तरह से बना हुआ था। मेरे पिता प्यार से हमारे पूर्वजों—हमारे दादाजी के दादाजी की कहानी सुनाते थे, जिन्होंने एक बार रामनाथ स्वामी मंदिर की मुख्य मूर्ति बचाई थी। एक प्रमुख त्योहार में भगवान् की मूर्ति को गर्भगृह से एक जुलूस के साथ मंदिर के परिसर में ले जाया गया था। एक बार इस समारोह के दौरान लगातार घटित होनेवाली घटनाओं के चलते न जाने कब वह मूर्ति एक टैंक में गिर गई, जिसके बारे में किसी को भी पता नहीं चला। लोगों को जब यह पता चला तब वे आनेवाली विपत्ति के संकेत से भयभीत हो गए थे; किंतु उस भीड़ के बीच एक आदमी ने अपना धीरज नहीं खोया और सतर्कता के साथ उस पानी के टैंक में छलाँग लगाकर उस मूर्ति को कुछ ही देर में निकाल लिया था। वे मेरे दादाजी के दादाजी थे। अब वहाँ उपस्थित लोगों की खुशी की कोई सीमा नहीं थी। मंदिर के पुजारी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें धन्यवाद दे रहे थे। हालाँकि वे जानते थे कि वे मुसलिम थे, परंतु किसी के मन में वह भावना नहीं आई। जात-पाँत को माननेवाले धर्म के कट्टर अनुयायी इस घटना को नफरत की दृष्टि से देखते कि कैसे एक गैर-हिंदू ने भगवान् की मूर्ति को छुआ! लेकिन वहाँ मौजूद किसी भी व्यक्ति के मन में यह भावना नहीं जागी थी।

मेरे दादाजी के दादाजी को एक हीरो की तरह ख्याति मिली थी। उसके बाद वहाँ यह घोषणा की गई कि हर त्योहार में मंदिर की तरफ से उन्हें सम्मानित किया जाएगा और उन्हें 'मुदल मरायादाई' का आदर दिया जाएगा। यह एक अद्वितीय सम्मान था, जो मंदिर की तरफ से दूसरे धर्म के माननेवाले को दिया जाता था। यह 'मरायादाई' कई बरसों तक चलती रही। किसी भी त्योहार से पहले हमारे दादाजी के दादाजी को सम्मानित किया जाता था। उन्हें 'मरायादाई सम्मान' वर्षों तक दिया जाता रहा। यह सम्मान सदियों तक चलता रहा। इसके बाद हमारे पूर्वजों को सम्मानित किया जाने लगा। वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा। हमारे पिताजी को भी 'मरायादाई सम्मान' दिया जाता था।

सौहार्द व सद्भावना का यह भाव बाद के वर्षों में भी बना रहा। जैसाकि मैंने अपने दूसरे अध्यायों में लिखा है कि मेरे पिताजी 'फेरी' के व्यापार से जुड़े हुए थे। वे तीर्थयात्रियों को धनुषकोडि तक लेकर जाते थे। हमारी 'फेरी' की सेवा मंदिर के साथ भी जुड़ी हुई थी।

मेरे पिताजी रामेश्वरम मसजिद में इमाम थे। वे एक श्रद्धालु व्यक्ति थे और उनकी आस्था पूर्णत: 'कुरान' में थी। उन्होंने अपने बच्चों तथा अपने परिवारवालों को भी एक अच्छे मुसलिम के रस्मो-रिवाज तथा संस्कार दिए थे। इस शहर के निवासियों के लिए वे एक मनोचिकित्सक तथा सफल गाइड भी थे। अधिकतर लोग अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए उनके पास आते थे, भले ही वह आध्यात्मिक व अन्य विषयों से जुड़ी हुई हो।

मेरे पिता के अच्छे मित्र रामनाथ स्वामी मंदिर के पुरोहित पक्षी लक्ष्मण शास्त्री थे। वे न केवल एक पुजारी थे, बल्कि उन्हें वेदों का अच्छा ज्ञान था और एक शिक्षित व्यक्ति थे। मैं आज भी उनकी छवि को नहीं भूल सकता हूँ। वे पारंपरिक पुजारी की वेशभूषा में रहते थे। उन्हें धोती तथा अंगवस्त्रम् के साथ देखा जा सकता था। उनके सिर पर चोटी होती थी, जिसे 'कुदुमी' कहा जाता है। मेरी जानकारी के अनुसार, वे एक सज्जन व दयावान् व्यक्ति थे।

इनके अलावा हमारे छोटे शहर में रहनेवाले तीसरे व्यक्ति फादर बोदल शहर की चर्च के पादरी थे। वे आध्यात्मिक रूप से महान् थे तथा उनका उस शहर में उच्च स्थान था। वे हमेशा चर्च में आनेवालों के हित के बारे में सोचते थे तथा उन सबकी भलाई के लिए कार्य करते थे। वे मेरे पिता और पक्षी लक्ष्मण शास्त्री की तरह हमेशा शहर की भलाई के लिए

सोचते रहते थे तथा शहर की शांति व सद्भाव के लिए निरंतर तत्पर रहते थे।

उन तीनों की छवि मेरी यादों में अभी भी विद्यमान है। मैं आज भी उन्हें उसी रूप में देखता हूँ—एक, अपनी पगड़ी व इमाम के लंबे अँगरखे में, दूसरा धोती में तथा तीसरा अपने गाउन में नजर आता था। तीनों ही हर शुक्रवार को शाम ४:३० बजे आपस में मिलते थे तथा धर्म पर चर्चा करते थे। इसके अलावा शहर की महत्त्वपूर्ण समस्याओं तथा घटनाओं की जानकारी लेते थे। कई बार इस शहर के लोग उनके पास अपनी व शहर की समस्याओं को लेकर आते थे, जिन्हें तीनों ही सुलझाने की कोशिश करते थे। वे अपने शहर में फैलनेवाली किसी भी आशंका व अफवाह को अपनी समझदारी से दूर करते थे। जब तक हालात काबू से बाहर हो जाएँ, उन्हें जल्द ही दूर करने की कोशिश करते थे। इस शहर की मौलिक आवश्यकता शांति का वातावरण था, जिसे सार्थक बातचीत व समझदारी से दूर किया जाता था। उनकी चर्चा का विषय देश में स्वतंत्रता आंदोलन का रूप था। इसके अलावा ब्रिटिश सरकार का इस आंदोलन पर राजनीतिक रुख और उससे हमारे समुदाय पर पड़नेवाले प्रभाव पर व्यापक रूप से विचार किया जाता, जिससे इस शहर में शांति का माहौल बना रहता था। इस समुदाय को कुछ इस तरह से सींचा गया था कि शहर में खुशनुमा माहौल बना रहे तथा हर कोई अपनी समस्या व विचारों को इकट्ठा मिलकर बाँट सके।

अब मैं अपनी कथा पर आता हूँ। उस समय छोटे स्कूलों, जैसा कि हमारा स्कूल था, में कोई यूनिफॉर्म या वरदी नहीं होती थी। विद्यार्थी इस बात के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र थे कि वे कैसी भी ड्रेस पहनकर स्कूल आ सकें। इसलिए हम अपने धर्म के अनुसार ही कपड़े पहनकर आते थे। मेरा मित्र रामनाथन अपनी चोटी के साथ स्कूल में आता था, जैसे कि उसके पिताजी कुदुमी के साथ ही बाहर निकलते थे (बाद में मेरा यह मित्र अपने पिता की तरह ही मंदिर का पुरोहित बन गया था)।

मेरे बचपन की एक घटना ने इस भावना को हमारे करीब रखा था। मैं उस समय ८ वर्ष का था और तीसरी कक्षा में पढ़ता था। मेरी दोस्ती रामनाथन शास्त्री, अरविंदन तथा शिवप्रकाशन से थी। वे तीनों ही ब्राह्मण थे। रामनाथन शास्त्री लक्ष्मण शास्त्री का पुत्र था। हम सब मिलकर आदर्श सहपाठियों की तरह व्यवहार करते थे। हम मिल-जुलकर कक्षा व कक्षा के बाहर समय व्यतीत करते थे। अच्छे दोस्तों की तरह हमारा दिन एक-दूसरे के बिना अधूरा ही रहता था। अगर कोई साथी किसी कारण से विद्यालय न आए तो हम उसके लिए चिंतित रहते थे। हम सब एक साथ ही बैठते थे, एक-दूसरे के साथ अपने विचार बाँटते थे। रामनाथन और मैं एक ही बेंच पर बैठते थे।

इससे पहले कि मैं इस कहानी को आगे बढ़ाऊँ, मैं आप सबको इस स्कूल की स्थिति के बारे में बताना चाहता हूँ, जहाँ मेरे बचपन की सुखद यादें व शरारतें जुड़ी हुई हैं। इस स्कूल का नाम रामेश्वरम पंचायत प्राइमरी स्कूल' था। मैंने यहाँ सन् १९३६ से १९४४ तक शिक्षा प्राप्त की थी। यह समुद्र के किनारे स्थित था, जो बहुत मजबूत बिल्डिंग नहीं थी। इस स्कूल का कुछ हिस्सा ईंटों से निर्मित था, लेकिन छत छप्पर की बनी हुई थी। यह शहर का इकलौता स्कूल था, जहाँ शहर के बच्चे पढ़ते थे। हम लगभग ४०० लड़के व लड़कियाँ इस स्कूल में पढ़ते थे। यकीनन हमारे स्कूल में कई सुविधाएँ नहीं थीं, न ही इस स्कूल की बिल्डिंग ही बहुत अच्छी स्थिति में थी; फिर भी, यह स्कूल हम सबके लिए आकर्षण का केंद्र था, जिससे हम सब जुड़े हुए थे। इस स्कूल के अध्यापक, विशेषत: इतिहास, भूगोल व विज्ञान विषयों को पढ़ानेवाले, विद्यार्थियों के प्रिय थे। क्यों? क्योंकि वे बच्चों को प्रेमपूर्ण ढंग से पढ़ाते थे तथा आश्वस्त रहते थे, ताकि इस स्कूल के सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल सके। सभी ५५ बच्चों को एक जैसी शिक्षा देना तथा सबके साथ एक जैसा व्यवहार करना कोई आसान काम नहीं था। वे सिर्फ हमें अच्छे अंक लेने के लिए ही प्रेरित नहीं करते थे, बल्कि इस बात का भी ध्यान रखते थे कि सभी विद्यार्थियों में इन विषयों के प्रति रुचि व अनुराग बना रहे। हम अपने अध्यापकों में सच्चाई व ईमानदारी का भाव देखते थे।

अगर एक दिन भी कोई विद्यार्थी स्कूल न आए तो अध्यापक इसकी चिंता करते थे तथा घर जाकर उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछते थे। अगर हममें से किसी भी विद्यार्थी के अच्छे अंक आते थे तो अध्यापक उसके घर जाकर अभिभावकों को बधाई देते थे। हमारा स्कूल हम सबके लिए रुचिकर तथा आनंददायक स्थान था। हम सभी विद्यार्थियों ने उस स्कूल से पढ़ाई आरंभ की, किसी ने भी बीच में स्कूल नहीं छोड़ा तथा आठवीं कक्षा तक उस स्कूल में पढ़ाई की। मुझे याद नहीं कि किसी भी विद्यार्थी ने बीच में स्कूल छोड़ा हो। आज जब मैं विभिन्न स्कूलों में जाता हूँ, निश्चित रूप से सोचता हूँ कि स्कूल का बड़ा या छोटा होना मायने नहीं रखता। स्कूल की सुविधाओं व विज्ञापनों का अधिक असर नहीं पड़ता, इन सबका स्कूल की शिक्षा के स्तर पर कोई असर नहीं पड़ता। इसका असर देखा जा सकता है कि स्कूल में शिक्षा देनेवाले अध्यापकों के क्या गुण हैं तथा उनका शिक्षा प्रदान करने का क्या स्तर है।

अब मैं अपनी कथा पर आता हूँ। उस समय छोटे स्कूलों, जैसा कि हमारा स्कूल था, में कोई यूनिफॉर्म या वरदी नहीं होती थी। विद्यार्थी इस बात के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र थे कि वे कैसी भी ड्रेस पहनकर स्कूल आ सकें। इसलिए हम अपने धर्म के अनुसार ही कपड़े पहनकर आते थे। मेरा मित्र रामनाथन अपनी चोटी के साथ स्कूल में आता था, जैसे कि उसके पिताजी कुदुमी के साथ ही बाहर निकलते थे (बाद में मेरा यह मित्र अपने पिता की तरह ही मंदिर का पुरोहित बन गया था)। मैं भी स्कूल में मुसलिम लड़कों की तरह बुनी हुई गोल टोपी पहनकर जाता था। हममें से कोई भी अपने कपड़ों के बारे में अपने विचार नहीं बताता था और न ही कोई इसकी परवाह करता था।

जब हम तीसरी कक्षा में थे, हम सबकी जिंदगी में एक अनोखी घटना घटी। हमारे स्कूल में एक नए अध्यापक पढ़ाने के लिए आए। हम सब बच्चों के लिए यह एक नया हैरान करनेवाला विषय था, जिस पर चर्चा होती थी। हम बच्चे नहीं जानते थे कि आगंतुक अध्यापक का स्वभाव कैसा होगा! क्या वह सख्त स्वभाव का होगा या उसका रवैया नरम होगा? क्या वह अधिक गुस्सा करनेवाला होगा या शांत भाव का

होगा? हमने उनसे पढ़ना आरंभ नहीं किया था। जब वह पहली बार क्लास में दाखिल हुए, हमारे सपने बिखर चुके थे।

वह अध्यापक एक हिंदू ब्राह्मण था। उसने कक्षा में दाखिल होते ही हम सब की तरफ अचंभे से देखा तथा कुछ बच्चों को हैरानी से देखा। मैं आज सोचता हूँ कि उन्होंने बच्चों की आँखों की चमक तथा उनकी भोली-भाली मुसकानों को नहीं देखा था, जो आनेवाले का स्वागत अपनी अनजान मुसकान से करते हैं। लेकिन हमारे अध्यापक ने इन सबकी परवाह न करते हुए अपना काम आरंभ कर दिया। वह कक्षा के आगे खड़े हो गए तथा उनकी नजर सबसे पहले मुझ पर तथा रामनाथन पर पड़ी थी। हम दोनों ही कक्षा में आकर्षण के केंद्र थे तथा दाईं पंक्ति में सबसे आगे की बेंच पर बैठते थे। उनकी नजर में गुस्से व बेचैनी के भाव नजर आ रहे थे। उनकी नजर मेरी टोपी तथा रामनाथन के बालों के गुच्छे पर जाकर थम गई थी। उनकी नजर में गुस्से, बेचैनी के भाव साफ नजर आ रहे थे। बिना कोई कारण बताए उन्होंने मेरा नाम जानना चाहा। जब मैंने उन्हें अपना नाम बताया तो मुझे आदेश मिला कि मैं जल्दी से अपनी सभी वस्तुओं को इकट्ठा करके सबसे पीछे की पंक्ति में जाकर बैठ जाऊँ, जिसका कारण वह खुद ही जानते थे।

मैं अपने को बहुत दुखी व पीड़ित महसूस कर रहा था। मुझे इस हुक्म का कारण मालूम नहीं था। रामनाथन भी आँसुओं में डूबा हुआ था। जब मैं अपनी पुस्तकें उठाकर पीछे की सीट पर बैठने गया, मेरी यादों में अभी भी वे आँसू आ रहे थे, जो कि रामनाथन की आँखों से निरंतर बह रहे थे।

हममें से कोई भी इस घटना पर शांत नहीं रह सकता था। उस दिन मैंने अपने पिताजी को सारी घटना की जानकारी दी। इसी तरह से रामनाथन ने भी अपने पिताजी को सबकुछ बता दिया। वे दोनों ही यह जानकर हैरान-परेशान हो गए। यह सब उनकी उम्मीद तथा प्रयासों के विपरीत था, जिसके लिए वे काम कर रहे थे। एक अध्यापक, जिसका काम विद्यार्थियों को ज्ञान देना तथा उनके दिमाग को विकसित करना है, वह कैसे इस भावना से विपरीत कार्य कर रहा था? हमने कभी उन सुलझे हुए इनसानों को इस तरह परेशान तथा गुस्से में नहीं देखा था। इन दोनों ने आपस में विचार-विमर्श किया तथा इस घटना की पूरी जानकारी ली।

अगले शुक्रवार शाम के समय वे हर सप्ताह की मुलाकातों की तरह एकत्र हुए। बोदल भी उस बैठक में शामिल हुए। उस अध्यापक को भी वहाँ उपस्थित होने के लिए कहा गया। दिन ढलने के बाद रात का पहर आ गया और हर तरफ अँधेरा छा चुका था। मेरे पिताजी तथा शास्त्रीजी ने देश में बढ़ते जात-पाँत के भाव का जिक्र किया, जिससे देश के कई भाग प्रभावित हो चुके थे। लेकिन इस आग को वे अपने शहर में नहीं देखना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि बच्चों में जात-पाँत के नाम पर विभाजन किया जाए। वे इस छोटे से शहर में इस नफरत की आग को बरदाश्त नहीं करेंगे। धर्म के नाम पर समाज को तोड़ा न जाए, अपितु धर्म के सद्भावपूर्वक समाज को जोड़ा जाए। वे नहीं चाहते थे कि बच्चों के दिमाग में नफरत के बीज बोए जाएँ।

यह संदेश उस अध्यापक को ससम्मान तथा सद्भाव से दिया गया। उससे पूछा गया कि क्या वह अपने को ज्ञान व शिक्षा का स्रोत मानेंगे, जिससे इस देश की बुनियाद मजबूत बन सकेगी? हमारे अध्यापक महोदय चुपचाप शांत भाव से वह सबकुछ सुनते रहे तथा सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने कहा, ''मैं नहीं जानता था कि मेरे द्वारा दो बच्चों को अलग करने का इतना व्यापक परिणाम हो सकता है! मैं अपने इर्द-गिर्द कुछ ऐसा ही देख रहा था तथा उसके अनुसार यह समाज इसी बुनियाद पर चल रहा है तथा मैंने भी उन्हीं नियमों को स्वीकार किया है। इससे पहले मुझे किसी और ने नहीं सिखाया था कि यह विभाजन समाज के लिए कितना हानिकारक हो सकता है!'' उन्होंने अपनी गलती को सुधारने का वचन दिया और सुबह अपनी गलती को सुधार लिया।

यह मेरा पहला अनुभव था कि किस तरह से धार्मिक लोग मिलकर तथा दृढ़ता से किसी समस्या को सुलझा सकते हैं। उन्होंने मिलकर समस्या को बिलकुल समाप्त कर दिया। उन्होंने इस समस्या को धीरे-धीरे पनपने नहीं दिया और घाव को बढ़ने नहीं दिया। इस भाव ने मुझे बाद में समस्याओं को अच्छे प्रबंधन से सुलझाने का संदेश दिया।

यह एक सोच थी, जिसकी झलक मेरे जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाई। हमारे अंदर का दृढ़ विश्वास तथा हमारे अंदर के विचार हैं, जो हमारे कार्यों को प्रभावित करते हैं। बाहर की ताकतें, दूसरों की सलाह तथा प्रलोभन आदि इसके बाद अपना प्रभाव रखते हैं; लेकिन हममें से जो सच्चाई व दृढ़ता के साथ अडिग रहते हैं, उन्हें निश्चित रूप से शांति का वातावरण मिलता है। हमारे देश में ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है, जो अपने व्यक्तित्व पर विश्वास करें और भटकानेवाले विवादों से दूर ही रहें।

अगर मेरे धर्म की बात की जाए तो निश्चित रूप से मेरे भाग्य ने मुझे विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में पहुँचाया था, उसकी बुनियाद रामेश्वरम से ही बनी थी। मैं हमेशा से ही विज्ञान में विश्वास करनेवाला था, लेकिन इसके साथ ही मेरा आध्यात्मिक विश्वास था, जो कि युवा अवस्था में स्थापित हो चुका था। यह मेरे साथ ही चल रहा था। मेरे मन में ईश्वर के बारे में विभिन्न मत थे। मैंने विभिन्न धर्मों की धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया था। मुझे ज्ञान की प्राप्ति 'कुरान', 'गीता' तथा 'बाइबिल' द्वारा ही मिली थी। इनके मिलाप से ही मेरे जीवन व संस्कारों का मिलाप मुझे अपनी जन्मभूमि से मिला था और इस शहर के अनूठे संस्कारों ने मेरा पूर्ण विकास किया। अगर मुझसे कोई एक सच्चे मुसलिम के गुणों के बारे में पूछे तो मैं निश्चित रूप से अपने पिता, शास्त्रीजी तथा फादर बोदल का जिक्र करूँगा, जिनके साथ मैं बड़ा हुआ था, या ऐसे ही कुछ और व्यक्तित्व, जो मेरी जिंदगी में आए थे और जिन्होंने हमारे देश के नैतिक मूल्यों व धर्म की नींव को मजबूत किया था। उन्होंने एक ऐसे देश का विकास किया, जहाँ विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न मतों का विकास हुआ तथा हर किसी को अपना उचित स्थान मिल सका। निश्चित रूप से हम विभिन्न समस्याओं तथा मतों को देखते हैं, परंतु आनेवाली पीढ़ी अगर मेरे पूर्वजों, इमाम तथा रामेश्वरम के पुरोहित की कथाओं को याद करे, जो कि सदियों पुरानी थीं, तो उन्हें जीने का नया ढंग मिलेगा तथा हम एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र बनाए रखेंगे।

सा.अ.

('डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम मेरी जीवन-यात्रा' पुस्तक से साभार)

बहन से बात करोगे?

● कुँअर बेचैन

वह रात भी अजीब सी रात थी। दूर तक अँधेरा-ही-अँधेरा था। आकाश में बादल छाए हुए थे। चंद्रमा आकाश में था किंतु उसे बादलों ने घेर रखा था। बहुत ही हलकी फुहार पड़ रही थी। सभी अपने-अपने घरों में मुँह ढाँपे सो रहे थे। रात के एक-डेढ़ बजे का समय होगा। एक घर के ऊपर के कमरे में एक कृश शरीर कराह रहा था और धीरे-धीरे उसकी कराह भी हलकी, फिर और हलकी पड़ती जा रही थी। इसी कमरे में एक लालटेन भी धीमी-धीमी रोशनी लेकर जल रही थी। इसकी चिमनी पर काफी धुआँ इकट्ठा हो गया था, इसलिए वह चिमनी काली पड़ गई थी। लगता था कि किसी को इस चिमनी को साफ करने की फुरसत ही नहीं मिली थी। लालटेन के भीतर जो लौ जल रही थी, उसकी रोशनी चिमनी के भीतर ही सिमटकर रह जा रही थी। थोड़ी देर बाद लालटेन की लौ भी 'भप-भप' करने लगी थी। शायद उसमें तेल की कमी हो गई थी। चारपाई के चारों ओर जितने भी उस घर में रहनेवाले थे, मुँह लटकाए खड़े हुए थे। सभी के चेहरों पर चिंता की रेखाएँ थीं। होंठ चुप थे, आँखें उदास थीं। कान जिन कराहों को सुन रहे थे, उन कराहों की 'उँह-उँह' अब कुछ कमजोर पड़ती जा रही थी। हर कोई भीतर-भीतर प्रार्थना-सा करता दिखाई दे रहा था। इस मकान में कई किराएदार रहते थे, वे सभी किराएदार अब इस कमरे में उपस्थित थे। केवल मैं ही इस पूरी घटना से अनभिज्ञ था। मैं इस कमरे में मौजूद नहीं था और इसी घर के नीचेवाले भाग में जो बरांडा था, उसमें जो एक चारपाई पड़ी थी, उस पर गहरी नींद में सो रहा था।

अचानक मेरे कंधे पर एक हाथ आया और मुझे चारपाई से उठा दिया गया। मैं दोनों हाथों से आँखें मींड़ते हुए चारपाई से उठा। सामने देखा तो जीजाजी खड़े हैं। वे घबराए हुए और हड़बडाए हुए से थे। उन्होंने मुझे जल्दी ही ऊपरवाले कमरे में आने को कहा और मेरा हाथ थामकर जीने की सीढ़ियाँ तेजी से पार करते और मुझे भी सीढ़ियाँ पार कराते हुए उसी कमरे में लाकर खड़ा कर दिया, जिसमें चारपाई पर पड़े उस कृश शरीर की कराह की आवाज निरंतर धीमी होती जा रही थी। मैं भौंचक्का रह गया। चारपाई के चारों ओर अब भी भीड़ जमा थी और अब भी लालटेन की बत्ती 'भप-भप' कर रही थी। मैंने देखा कि चारपाई पर यह धुँधली होती कराह किसी और की नहीं थी, यह मेरी बहन की ही थी। उस बहन की, जिसने माँ के मरने के बाद, जब मैं सात साल का था, तब से ही अपने कलेजे से लगाया था और माँ जैसा प्यार दिया था। वह मेरी छोटी-छोटी बात का भी खयाल रखती थी। कौन सी मेरी ऐसी ख्वाहिश थी, जिसे पूरा करना उसके वश में हो और उसने उस ख्वाहिश को पूरा न किया हो। तीखे नाक-नक्श और हलके साँवले रंगवाली तथा मध्यम कदवाली मेरी यह बहन, जिसे देखकर सबकी आँखें ठहर जाती थीं, जिसके घुँघराले बालों की मोहल्ले की सभी औरतों के बीच चर्चा थी। जिसकी गहरी काली और तीखी आँखें अपने में एक अलग तरह का आकर्षण लिये हुए थीं। जिसकी ढोलक बजाने की कला और जिसके सुरीले कंठ से निकले मीठे-मीठे गीतों के सब दीवाने थे, उसी बहन के कंठ से अब कराह भी ठीक से नहीं निकल पा रही थी। उसी की तीखी आँखें अब बैठती जा रही थीं। उसी का साँवला आकर्षक शरीर अब पीला-सा पड़ गया था। उसी के घुँघराले बाल अब जीवन की उलझनों की कथा कह रहे थे।

जाने-माने गीत-गजलकार। कई गीत-संग्रह, गजल-संग्रह, काव्य-संग्रह, महाकाव्य तथा एक उपन्यास प्रकाशित। 'साहित्य सम्मान', 'साहित्य भूषण', 'परिवार पुरस्कार सम्मान', राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह एवं महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्मानित। कई विश्वविद्यालयों तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात बोर्ड के पाठ्यक्रमों में रचनाएँ संकलित।

मैं जब कमरे में गया तो सब लोग पीछे हट गए और मुझे आगे कर दिया गया। जीजाजी ने मुझसे कहा, 'बहन से बात करोगे?'···मैंने झट से हाँ कह दिया। जीजाजी मुझसे बोले, 'जाओ, जीजी के कान के पास जाकर उसे पुकारो।' मैं जीजी के कान के पास जाकर बोला, 'जीजीऽऽ' मगर उधर से कोई उत्तर नहीं मिला। मैंने फिर उसके और करीब जाकर खूब जोर से आवाज दी, 'जीजी, जीजीऽऽऽ, जीजीऽऽऽऽ' और उसके बदन को भी थोड़ा सा झकझोर दिया। उसने हलकी सी आँख खोली। सब थोड़ा आश्वस्त हुए। उसकी आँख खुलते ही जीजाजी उसके निकट पहुँचे और उसके कान के पास जाकर बोले, 'सुनो, अपने भैया के लिए कुछ कहती हो?' उसने ठहरी हुई निगाह से जीजाजी की ओर देखा

और दो बूँद आँसू टपका दिए···आँसू आँख के एक कोए से ढुलककर कान के पास से होते हुए तकिये को भिगो गए थे।···

मैं अभी नौ साल का ही तो था। दो साल पहले जब माँ की मृत्यु हुई तो सात का था, पिताजी तो उसी समय दुनिया को छोड़कर चले गए थे, जब मैं केवल दो माह का था। जीजी की शादी उस समय हो गई थी, जब मैं दो साल का था। तब ही से तो मैं जीजा-जीजी के पास चला आया था। माँ भी परिस्थितिवश उसी के पास रहती थी। माँ की मृत्यु के पश्चात् तो उसी में माँ का रूप आ गया था। वह मेरे प्रति ममत्व से भर गई थी···जब कुछ दिन पहले वह बीमार हुई और उसे लगा कि वह बचेगी नहीं तो मेरी बहुत चिंता करती थी···वह अपनी मिलनेवाली सहेलियों से और अन्य औरतों से कहती थी कि मेरे न रहने पर मेरे भैया का कोई नहीं···क्या होगा इसका। अभी तो यह इतना छोटा है। नौ साल का ही तो है, कैसे रहेगा यह···ऐसा कहते-कहते वह रो पड़ती थी। कभी-कभी तो उसके रोने की आवाज दूसरों को भी सुनाई दे जाती थी। जो भी उसके मन की इस व्यथा और मन में उठते हुए इस संदेह को सुनता था, वह तसल्ली बँधाते हुए यही कहता था', 'नहीं प्रेमा, तू मत घबरा, अभी तो तेरी उम्र ही क्या है, अभी तो तू चौबीस की भी पूरी नहीं हुई। तुझे कुछ नहीं होगा। और तेरे रहते तेरे भैया का क्या बुरा हो सकता है ?···देख तू रोना छोड़···सबकुछ ठीक हो जाएगा।' मगर जीजी थी कि उसे अपने दिन आते दिखाई दे रहे थे। वह कहती थी, 'नहीं बहन, नहीं चाची, नहीं दादी, अब मैं बचूँगी नहीं।'

जब चारपाई पर मरणासन्न जीजी को जीजाजी ने पुकारा था और पूछा था कि अपने भैया के लिए कुछ कहना चाहती हो, तब बहन की आँखों से जो आँसू ढुलके थे, वे मेरी चिंता में उसके धड़कते हुए दिल के ही टुकड़े थे, जो आँसू बनकर बाहर निकल आए थे। जीजाजी बहन के आँसुओं का अर्थ समझ गए थे। वे बहन की तरफ देखकर और अपने सीधे हाथ से अपनी छाती ठोकते हुए बोले, 'मैं हूँ न'···'सुनो, तुम कुमर की चिंता मत करना। जब तक मैं हूँ, तुम्हारे भैया को कोई तकलीफ नहीं होगी। वह एकदम सुरक्षित है। तुम खुशी-खुशी जाओ।'···फिर आँखों में आँसू भरकर जीजाजी जीजी के कान के पास जाकर बोले, 'तुमको मुझ पर यकीन तो है न ?'···जीजी ने 'हाँ' में अपनी गरदन हिलाने की कोशिश की और फिर वह गरदन एक तरफ लटक गई।

जीजाजी चीख-चीखकर रोने लगे। आस-पास खड़े जितने लोग थे, वे भी रोने लग गए। मैं भी जीजी से लिपटकर रोने लगा था, 'नहीं जीजी, मुझे छोड़कर मत जा, देख मैं तेरे बिना कैसे रहूँगा। देख, आँखें खोलकर जरा मेरी तरफ देख तो, तू बोल क्यों नहीं रही। जीजी बोल, बोल न।'···जीजाजी ने मेरा हाथ थामकर जीजी से अलग किया और मुझे गोदी में उठाकर तथा गले से चिपकाकर बोले, 'नहीं कुँअर, अब तेरी जीजी नहीं बोलेगी, वह हम सबको छोड़कर चली गई है। भगवानजी ने उसे अपने घर बुला लिया है···रो मत मेरे बेटे। तसल्ली रख, तुझे मैं कुछ नहीं होने दूँगा।···'

मोहल्ले के लोग जाग गए थे। कोई दूसरे से पूछ रहा था, 'क्या हुआ?'···दूसरा उत्तर देते हुए कहता, 'अरे वो जंगबहादुर हैं न, वो जो भार्गव प्रेस में काम करते हैं, उनकी बीबी, अरे वो कुमर की बहन प्रेमवती है, वो मर गई।'···कोई महिला कह रही थी, 'ये तो बहुत बुरा हुआ। अब उसके बेचारे भैया का क्या होगा। बेचारा बिना माँ-बाप का बालक अब बहन को भी खो बैठा। बड़ा बदनसीब निकला बेचारा कुमर।'

इसी प्रकार वे न जाने क्या-क्या कहते रहे। मुझे याद है कि जब मेरी माँ की मृत्यु हुई थी तो जब मैंने रोना शुरू किया था तो सब लोगों ने मुझे चुपाते हुए यह कहा था, 'लल्ला, रो मत, तेरी अम्माँ भगवानजी के घर गई है, दो-चार दिन में वापस आ जाएगी'···और मैंने तब इस बात पर विश्वास करके रोटी भी खा ली थी; लेकिन अब तो मैं सबकुछ समझ चुका था। मैं मरने का अर्थ भी समझ चुका था और यह भी जान चुका था कि मरकर कोई वापस नहीं आता है। आस-पास खड़े किराएदार भी मुझे गोदी में ले-लेकर चुपाते रहे, किंतु मैं था कि न तो मेरे आँसू रुक रहे थे और न ही मेरे रोने की आवाज। घर में खूब रोना-धोना चल रहा था। रोने की आवाजें सुनकर मोहल्ले के पास-पड़ोस के लोग भी आकर इकट्ठे होने लगे थे। सभी बड़े अफसोस में थे। जीजी बहुत मिलनसार और सबको इज्जत देनेवाली थी। पूरा मोहल्ला उसे बहुत चाहता था।

मोहल्ले के लोग जाग गए थे। कोई दूसरे से पूछ रहा था, 'क्या हुआ?'···दूसरा उत्तर देते हुए कहता, 'अरे वो जंगबहादुर हैं न, वो जो भार्गव प्रेस में काम करते हैं, उनकी बीबी, अरे वो कुमर की बहन जिसका नाम प्रेमवती है, वो मर गई।'···कोई महिला कह रही थी, 'ये तो बहुत बुरा हुआ। अब उसके बेचारे भैया का क्या होगा। बेचारा बिना माँ-बाप का बालक अब बहन को भी खो बैठा। बड़ा बदनसीब निकला बेचारा कुमर।'

मैं पूरे मोहल्ले में खूब प्रख्यात था। सामनेवाली दादी ने अगर कहा, 'भैया कुमर, जरा हमारा छोटा सा काम कर दोगे, आज तुम्हारे दादा जरा जल्दी काम पर चले गए हैं, इसलिए घर में कोई सब्जी नहीं है, जरा ला दोगे बाजार से आधा सेर तोरई ?'··· मैं चाहे खेल ही रहा होता था, तब भी खेल को अधूरा छोड़कर और अपने साथी खिलाड़ियों से यह कहकर कि मेरा दाव याद रखना, जरा दादी की तोरई ले आऊँ, अभी आता हूँ। ऐसा कहकर मैं झटाक से जाता था और फटाक से वापस आकर अपने खेल में जुट जाता था। बराबर वाली चाची ने कभी साबुन मँगवा लिया, चार-पाँच मकान छोड़कर जो मेरी मुँहबोली मौसी थीं, उन्होंने अगर कभी अरहर की दाल या चावल मँगवा लिये तो मैं भागकर ले आया। मतलब यह है कि मैं कभी भी, किसी के भी काम को मना नहीं करता था। सारे मोहल्ले की महिलाओं और पुरुषों के मन में मेरे प्रति बड़ा ही ममत्व था। अत: जीजी की मृत्यु की इस दारुण घटना पर सभी को मेरा खयाल आ रहा था। इस बेचारे बच्चे का क्या होगा ?

अब अगले दिन का सवेरा हो चुका था। सूर्यदेव ने अपने दर्शन दे दिए थे। मगर बादल के एक-दो टुकड़े अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। जीजी को जमीन पर लिटा दिया गया था। ऊपर से चादर डाल दी गई थी। नाक में रुई लगा दी गई थी। मैं बार-बार उसे देखने जा रहा था। सोच रहा था कि कोई करिश्मा हो जाए और जीजी उठ खड़ी हो, वह जिंदा हो जाए और मुझे गले से लगाकर मुझसे बातें भी करे, मगर मेरा सोचा कहाँ होनेवाला था!

कितनी ही यादें ताजा हो आई थीं। उसकी बीमारी के दिनों में किसी हकीम ने कोई घास बताई थी, जिसका अर्क निकालकर उसे दिया जाता था। मैं दूसरे-तीसरे दिन इस घास को लेने के लिए चंदौसी के पास चार मील दूर जीजाजी के पैतृक गाँव सिसरका तक पैदल जाता था और उसी दिन वह घास लेकर उलटे पाँव लौट आता था। जब उसकी यह दवा मैं लाता था तो कितनी ही देर तक वह मुझे निहारती रहती थी, जैसे कह रही हो कि तू मेरी कितनी चिंता करता है, थक गया होगा···।

मुझे याद आया कि एक बार मोहल्ले के किसी बच्चे से मेरी लड़ाई हो गई थी और मेरे जरा सा खून निकल आया था तो उसके घरवालों से वह मेरी हिमायत में कितना लड़ी थी···मैं जाने किन-किन यादों में खो गया था। उस समय मुझे याद आया कि जब मैं स्कूल में इम्तिहान देने जा रहा होता था तो वह मुझे दही-पेड़ा खिलाना नहीं भूलती थी···कितनी ही यादें मेरे स्मृति-पटल पर आ-जा रही थीं···उधर जीजी को श्मशान घाट पर ले जाने की तैयारियाँ होने लगी थीं। सुबह के ग्यारह बजे उसे श्मशान घाट ले जाया गया था और दोपहर को लगभग तीन बजे हम सब लोग उसकी क्रिया करके लौट आए थे।

जीजाजी ने आजन्म मेरी देखभाल की, पढ़ाया-लिखाया, मेरी शादी की। मुझसे कुछ चाहा नहीं। बस मुझे चाहते रहे। अब तो वे भी नहीं हैं, चालीस साल पहले वे भी विदा ले गए। उनका तो जन्म ही शायद इसलिए हुआ था कि वे मुझे सँवारकर स्वयं विदा ले जाएँ। उनके जाने पर मैं बहुत रोया किंतु मृत्यु कहीं आँसुओं की भाषा सुनती है?···नहीं सुनती। मगर अभी भी जीजाजी के ये शब्द न जाने क्यों मेरे कानों में अचानक गूँज जाते हैं, 'बहन से बात करोगे?'···

२ एफ-५१, नेहरू नगर
गाजियाबाद-२०१००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८९८३७९४२२

एकाग्रता

लघुकथा

● सत्य शुचि

दरअसल वर्षों से घर में लकड़ी-चूल्हे पर रोटियाँ पकती-सिंकती रही हैं। इसीलिए बाबूजी कई दिनों से अपनी धुन में कहीं खोए-खोए से रहते थे। और फिर एक दिन बुदबुदाए, 'जब एक तारीख के लिए सबकुछ क्लियर-साफ हो चुका है तो उनको अब बेफिकर ही रहना चाहिए!'

···आज वह घड़ी भी आ चुकी थी, जिसका सभी को इंतजार था। लेकिन आज एक तारीख की वजह से चहुँओर मुर्दनी सी छाई रही।

''हाँ-हाँ···, बाबूजी! अगले महीने देखेंगे। आप एक महीने की और प्रतीक्षा करें!'' तुरंत अपने हाथों से खरीदी वस्तु को दिखलाते हुए वह मुख्तसर में प्रकट हुआ।

''नहीं, बेटा! तुमने यह गलत किया है।'' बाबूजी के स्वर में रोष था।

''कतई गलत नहीं है, बाबूजी! यह हमारे वास्ते हद-बेहद जरूरी थी, सो···'' लापरवाही में उसने उगला।

···बहरहाल, बाबूजी एक अंतर्द्वंद्व की पीड़ा से सहम से उठे। और फौरन पत्नी के समीप थोड़ा रुककर वे गेट के बाहर हो लिये। रफ्ता-रफ्ता चलते बाबूजी ने सोचा, 'गैस-चूल्हा आज ही खरीदना है; किसी और दिन नहीं!'

सच में शाम तक घर में गैस-चूल्हा आ गया था और पुत्र के सिवाय घर भर में खुशियों से हर किसी की पलकें भीग आईं।

मगर एकाएक बाबूजी के डबडबाते नेत्र पत्नी के गले को बगैर मंगलसूत्र के निहारकर एक पल में बह गए, फिर भी बाबूजी शांत-शांत रहे।

आवासीय बँगला

सबकुछ ठीक सा चल रहा था। लेकिन एक रोज जाने क्यों उनके चेहरे की हवाइयाँ उड़ी-उड़ी सी दिखने लगी थीं। वस्तुत: कोर्ट के एक फरमान से उनकी चेतना हिल उठी; और कोर्ट के अनुसार जिन-जिन पूर्व मुख्यमंत्रियों ने अभी तक सरकारी बँगले खाली नहीं किए हैं, उनको राज्य सरकार यथाशीघ्र खाली करवाए!

सहसा उस राज्य के एक पूर्व मुख्यमंत्री क्षणमात्र उदासी से भीग उठे थे, और उन्होंने महसूसा, 'पब्लिक में उनकी इमेज सदा की तरह आज भी बरकरार रहे, अत: उनके नाम एलॉट बँगले को वे खाली कर देंगे।' मन-ही-मन एक दृढ़ निश्चय उनके भीतर उपजा, 'जित्ता आर्थिक लाभ सरकारी बँगले से उनको मिलना था, उससे वे काफी खुश हैं!'

मगर थोड़ी देर में वे तसल्ली से बुदबुदाए, 'उनके सरकारी बँगले में एक परिवार अरसे से एक किराएदार के रूप में मौजूद था, जिसे अब जल्द ही खाली करवाना होगा!'

साकेत नगर
ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४१३६८५८२०

इति कवि कथा

• सोमा बंद्योपाध्याय

राजाश्रयी कवियों के युग का अवसान हो चुका है। अब न वह राजकीय सम्मान है और न ही ऐश्वर्य का वैभव। ऐसे में एक प्रौढ़ कवि उद्देश्यहीन यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं। आज ऐसा कोई मित्र नहीं रह गया है, जो उन्हें इस दुर्दिन में आश्रय दे। कभी-कभी हिमालय पर्वत की तलहटी में बसे उस छोटे से गाँव की याद बरबस आ जाती, जो कभी उनका अपना हुआ करता था। कदम उस ओर चल पड़ने को तैयार हो जाते हैं, पर अतीत की यादें उन्हें वहीं रोक लेतीं। कभी-कभी उज्जयिनी से आनेवाले कुछ पुराने मित्र राह में मिल जाते हैं, पर उनमें से अधिकतर उन्हें न देख पाने का अभिनय करते हुए आगे निकल जाते। कवि आहत दृष्टि से उनके गमनपथ को निहारते रहते। फिर दीर्घ श्वास लेकर अपने भाग्य की भीषण विडंबना को स्वीकारते हुए आगे बढ़ जाते हैं। हाय! क्षुधा और तृष्णा के समय संबल केवल चने और कूप का ठंडा पानी। कभी-कभी वह भी नहीं मिलता। अपने स्वर्णिम काल में कवि ने संचय का सहारा कभी नहीं लिया था। उज्जयिनी त्याग करने के पश्चात् उन्होंने जितना धन अर्जित किया था, अपने शिष्यों यानी युवा कवियों में बाँट दिया था। ऐसे में कभी किसी संपन्न गृहस्थ के द्वार के आगे खड़ा होना पड़ता। ब्राह्मण कवि को अन्न नहीं मिलेगा, देश की स्थिति उतनी भी बुरी नहीं थी।

कल शाम एक और राजकवि से साक्षात्कार हुआ था, जो निकट के राज्य कुंतल से थे। उन्हीं से वार्त्तालाप के पश्चात् एक हल्की सी आशा की किरण दिखी और वे दक्षिण की ओर चल पड़े।

दक्षिण दिशा···और भी दक्षिण में···सुदूर दक्षिण!

भारत के अंतिम प्रांत में, जहाँ नीले समुद्र की आदि-अंत न दिखनेवाली जल-राशि भारतमाता के चरणयुगल को धो देती है—और ठीक उसके पदप्रांत में अर्पित पंकज के समान विराजित वह प्राचीन सिंहल द्वीप! मानो उसी ओर अग्रसर होने को ठान लिया था हमारे कवि ने।

कभी कलिंग के निर्जन जंगल के बीच होकर तो कभी दक्षिणात्य के दुर्गम विंध्य पर्वत लाँघकर भी कवि आगे बढ़ते रहते हैं। दिन बीतते हैं आदिवासियों के द्वारा दिया गया आतिथ्य ग्रहण कर। कभी झरने का शीतल जल तो कभी जंगली कंदमूल खाकर कवि बढ़ते रहते हैं। साथ में है केवल एक पोटली, जिसमें हैं कुछ एक पांडुलिपियाँ, भोजपत्र के बने ग्रंथ और दो मलिन वस्त्र।

सुपरिचित लेखिका। हिंदी, अंग्रेजी एवं बांग्ला में २२ पुस्तकें तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख, साक्षात्कार और अन्य विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति प. बंगाल विश्वविद्यालय में एज्यूकेशन प्लानिंग ऐंड एडमिनिस्ट्रेशन में कुलपति। साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार, प्रयाग साहित्य सम्मेलन सम्मान सहित अन्य कई सम्मान प्राप्त।

अंततः वे समुद्रतट पर पहुँच जाते हैं। स्थानीय लोगों से पता चलता है, जगह का नाम है रामेश्वरम्। दो दिनों में सिंहल जाने के लिए व्यापारियों का एक दल तैयार है। कवि उनकी सम्मति से उनके पोत में सवार हो जाते हैं।

समुद्रतट छोड़ते ही अनंत जल-राशि को देखते हुए कवि की आँखें अश्रुपूरित हो जाती हैं। अपनी मातृभूमि त्यागने का दर्द और असहायता उनकी दृष्टि में स्पष्ट दिख रही थी। उज्जयिनी राज्य, राजकवि की यशप्राप्ति, उज्जयिनी का वह ग्राम, समृद्धि और प्रशस्ति के शिखर पर चढ़ जाना और सृजनशक्ति का यकायक दुर्बल पड़ जाना, फिर एक दिन वहाँ से अज्ञात स्थान की ओर रवाना हो जाना···सारी स्मृतियाँ जैसे भीड़ जमा रही थीं।

□

इसी तरह तीन हफ्तों के पश्चात् आज दो दिन हो गए हैं, कवि सिंहल आ पहुँचे हैं और वहाँ राजपथ में एक आश्रय की खोज में घूम रहे हैं। दोपहर के वक्त एक सहृदय गृहस्थ ने उन्हें आश्रय भी दिया। शयन के लिए अतिथि-कक्ष का द्वार खोल दिया। बहुत दिनों बाद स्वादिष्ट व्यंजनों से भोजन भी करवाया। गृहस्वामी को संभवतः दुर्बल कवि के म्लान मुखमंडल के पीछे उनका आभिजात्य और उनके गरिमामय अतीत जीवन की कोई झलक सी दिख गई थी। भोजन के उपरांत कवि ने कोमल शय्या पर अपने क्लांत जीर्ण शरीर को लिटा दिया।

'आह! महीनों पश्चात् ऐसी कोमल शय्या मिली है। निद्रा अच्छी होगी।' पर नहीं! नींद मानो आँखों से कोसों दूर थी।

उज्जयिनी त्यागने के पश्चात् ऐसी कोमल शुभ्र शय्या मिली हो, ऐसा याद नहीं है। तो फिर निद्रा में बाधा क्यों?

थोड़ी देर और प्रयत्न करने के पश्चात् वे उठकर बैठ गए। फिर अपने सिरहाने रखी अपनी छोटी सी पोटली में से कुछ भोजपत्र निकालकर तकिये पर रख दिए। फिर कलम और दवात निकाल लिए। थोड़ी देर चिंतामग्न रहने के पश्चात् उनकी कलम भोजपत्रों पर द्रुतगति से चलने लगी। विश्व-संसार को जैसे भूल चुके थे, ऐसी तन्मयता थी उनमें। उन्हें पता भी न चला कि कब गृहस्वामी आकर उनके द्वार पर खड़े होकर विमुग्ध नेत्रों से उन्हें सृष्टि में मग्न देख रहे थे।

सहसा बाहर नगर के प्रहरियों के पुकारने की आवाज से चौंककर कवि ने उन्मुक्त द्वार की ओर देखा तो गृहस्वामी को अपनी ओर देखते पाया। उन्हें लज्जा का अनुभव हुआ और उन्होंने गृहस्वामी से क्षमा माँगी।

गृहस्वामी की दृष्टि उनकी पोथी पर निबद्ध थी। कवि ने यह देखा तो शीघ्रता से पोथियों और भोजपत्रों को समेटने लगे। तभी गृहस्वामी ने पूछा, ''मान्यवर! यदि बुरा न मानें तो क्या पूछ सकता हूँ, आपका वास्तविक परिचय क्या है?''

कवि ने दुविधा भरी आवाज में उत्तर दिया, ''मुझे क्षमा करें। मैंने बहुत बड़ी भूल कर दी। आपकी निद्रा में बाधा पहुँचाई। मैं अभी दीपक बुझा देता हूँ। आप जाकर विश्राम कीजिए।''

परंतु गृहस्वामी ने उन्हें मना करते हुए अपने प्रश्न की पुनरावृत्ति की। पूछा, ''विश्राम से पूर्व क्या मैं आपका वास्तविक परिचय जान सकता हूँ? ब्राह्मण भिक्षु के वेश में किस महान् व्यक्तित्व को अपने घर में मुझे आतिथ्य प्रदान करने का सौभाग्य मिला है, क्या मैं यह जान सकता हूँ? आपकी तन्मयता को देखकर मैं चमत्कृत हो गया हूँ। आप कौन हैं महामना?''

विचलित कवि ने शीघ्रता से कहा, ''नहीं-नहीं! मेरे आश्रयदाता, आप अति उदार हैं। परंतु यहाँ आप गलती कर रहे हैं। मैं एक साधारण भिक्षुक मात्र हूँ। मैं आश्रयहीन, परिजन-विहीन हूँ। इस पोटली के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है। आपकी दया और उदारता मैं कभी नहीं भूलूँगा। आपका सदैव ऋणी रहूँगा।''

''पर आपकी पोटली में जो पोथियाँ और भोज-पत्र हैं, वे किसी साधारण भिक्षुक के पास क्या होंगे?''

''हाँ, यह सही है कि इन पोथियों में ही मेरे प्राण बसते हैं।''

''आप द्रुतगति से कुछ लिख रहे थे। क्या मैं एक बार देख सकता हूँ कि आप क्या लिख रहे थे?''

गृहस्वामी ने उत्सुकता के साथ पूछा।

क्षणभर के लिए कवि हिचकिचाए, फिर कहा, ''ठीक है, आप देख सकते हैं!''

गृहस्वामी को कवि की हिचकिचाहट साफ समझ में आ रही थी। उन्होंने अनुचित उत्साह दिखते हुए कहा, ''कोई बात नहीं। रात्रि का अंतिम पहर है। आप आराम कीजिए। मैं अपने कक्ष में जा रहा हूँ।''

गृहस्वामी के चले जाते ही कवि निश्चिंत हो गए। एक दिन यश के शिखर पर विद्यमान यह कवि आज न जाने क्यों अपना परिचय छिपा रहा था। क्या कालचक्र के घूमने के साथ-साथ गुमनामी के अंधकार में खो जानेवाला यह कवि अपने जीवन के सृजनहीन उन क्षणों को विस्मृत करना चाहते थे, जब चाहकर भी उसकी लेखनी से वाणी की वह झरना नि:सृत नहीं हो पाती थी। आज महीनों बाद नया परिवेश, नए स्थान और नए लोगों के संस्पर्श में आकर संभवत: लेखनी की वह स्तब्ध निर्झरिणी फिर से बह निकली थी।

प्रात: सूर्योदय होते ही गृहस्वामी अतिथि से मिलने आए। रात उन्हें बिल्कुल भी निद्रा नहीं आई थी। हो न हो, यह कोई अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हैं।

शारीरिक अस्वस्थता और मलिन वस्त्रों के बावजूद उनका सौम्य मुखमंडल, उज्ज्वल आँखें और गौर वर्ण बता रहा था कि वे कोई साधारण भिक्षुक नहीं हो सकते थे।

परंतु यह क्या! कक्ष खाली था। अतिथि और उनकी वह पोटली दोनों नहीं थे। तभी शय्या के ऊपर रखे एक भोजपत्र पर उनकी दृष्टि पड़ी। उस पर मोती जैसे अक्षरों में एक पंक्ति लिखी हुई थी, 'परम आदरणीय, आश्रयदाता की बिना अनुमति लिये मैं यहाँ से जा रहा हूँ, इसके लिए मैं अत्यंत लज्जित हूँ। क्षमा-याचना सहित, अपरिचित अतिथि।'

□

फिर वही पथ का साथ!

इस पथ का कोई अंत नहीं। क्लांत-विश्रांत कवि आखिर क्या चाहता था? सिंहल की एक नगरी से दूसरी नगरी होते हुए संभवत: राजधानी पहुँचना ही उसका लक्ष्य था। चलते-चलते पाँव क्षत-विक्षत हो गए थे। आँखों की द्युति कम होने लगी थी। चेहरे की कांति शारीरिक अस्वस्थता के कारण म्लान हो चुकी थी। परंतु इतनी बाधाओं के बावजूद उनकी विशाल उदार हृदय की गरिमा जरा भी कम नहीं हुई थी। बल्कि इस बाधा ने एक चमत्कार कर दिखाया। उनकी पूर्व की वह मानसिक दृढ़ता और खोई हुई सृजनशीलता, कवि-प्रतिभा और कल्पनाशक्ति मानो वापस आ गई थी। वह अपमान, वह निरादर, वह अवहेलना, जो उन्हें पिछले कई वर्षों में लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जैसे भटकने पर मजबूर करती रही, आज उनके हृदय को क्षण-भर के लिए भी निरुत्साह नहीं कर पा रही थी।

कवि अपनी इच्छाशक्ति को समेटकर अंतत: पहुँच गए अपने ईप्सित स्थान पर, अर्थात् जिसे सब राजधानी स्वर्णपुरी लंका के नाम से जानते हैं।

यही क्या वह लंका है, जहाँ कभी महापराक्रमी राक्षसराज रावण राज किया करते थे? क्या यही वह लंका है, जिसे रघुकुल तिलक श्रीरामचंद्र ने अपनी चरणधूलि से धन्य किया था। क्या यहीं कहीं किसी अशोकवाटिका में सीता की क्रंदन ध्वनि आज भी प्रतिध्वनित होती है?···कवि की कल्पना-तरंगें शब्दों का आकार लेने लगती हैं, यहीं वह सुरम्य स्थान हैं, जहाँ की प्राकृतिक सुषमा को बिना देखे ही कवि ने कभी अपनी कल्पना में स्थान दिया था और जिन्हें श्लोकों में परिवर्तित होने में अधिक समय नहीं लगा था। कवि की स्मृति में वह श्लोक अनायास झाँकने लगा, जब रावण-वध के पश्चात् श्रीराम सीताजी को लंकापुरी से पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या वापस ले जा रहे थे। तब उस आकाशयान से आँखों देखी समुद्र तट की प्राकृतिक शोभा का वर्णन कवि ने इस तरह से करवाया था—

दुरादयश्चक्रनीमस्य तन्वी
तमालतालिवानराजिनीला।
आभाती वेला लवणाम्बुराशे
धारानिवद्धेव कलंकरेखा।

इसी तरह अतीत की सुखस्मृति में खोए कविजी द्रुतगति से चले जा रहे थे। तभी अचानक किसी पथिक से टकरा गए और उनकी स्मृतियों का जाल छिन्न-भिन्न हो गया। पथिक ने चिढ़कर कहा, 'देखकर नहीं चल सकते?'

'क्षमा कीजिएगा, महोदय! क्या आप बता सकते हैं कि मुझे यहाँ आश्रय कहाँ मिल सकता है?'

'आश्रय? भिक्षुक को आश्रय? वह भी विदेशी भिक्षुक?' पथिक व्यंग्य करते हुए आगे बढ़ गया।

हाय, नियति का यह क्रूर परिहास! भारतवर्ष का राजकवि आज आश्रयहीन! नहीं-नहीं, मुझे निराश नहीं होना है। लक्ष्य मेरे निकट है। कवि ने सोचा।

□

'सूर्यास्त हो चुका है। आज रात के लिए यदि आश्रय मिल जाए, कल दिन के समय नगरों में कहीं-न-कहीं कुछ व्यवस्था कर लूँगा।' कवि की सोच में बाधा पड़ गई। सामने ही एक द्विमंजिली अत्यंत प्रशस्त अट्टालिका और उसके ऊपरी तल पर बरामदे में खड़ी एक अपूर्व रूपवती रमणी उन्हें ही देख रही थी। कवि को असहाय दृष्टि में कोई मूक कातर अनुरोध था, जिसे संभवत: वह स्त्री पढ़ पाई थी। वह विचलित होकर नीचे उतर आई और कवि को अपने भवन में आने का निमंत्रण दिया।

कवि तब तक इतना अधिक थक चुके थे कि भीतर तक चलकर आने की भी उनमें शक्ति बाकी नहीं थी। सुंदरी रमणी ने अपनी दासी से उन्हें अंदर ले आने को कहा। फिर कवि को आसन पर बिठाकर बोली, 'क्या आप अस्वस्थ हैं?'

कृतज्ञता से कवि का कंठ भर आया। उनकी आँखों में वही द्युति लौट आई। पर वे कुछ कह नहीं पाए। रमणी ने अपने अतिथिगृह में उनके रहने की व्यवस्था की और दासी से उन्हें पौष्टिक आहार देने को कहकर भीतर चली गई।

कवि अतिथिगृह में अपने कक्ष में पहुँचकर कुछ देर अचेत अवस्था में पड़े रहे। उन्होंने अनुभव किया, जैसे उनका अंतिम समय आ गया है। थोड़ी देर स्पंदनहीन पड़े रहने के पश्चात् उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। सामने एक चौकी पर दासी जतन से रखकर गई थी—फल, गरम दूध और कुछ मिष्टान्न!

दो दिन का उपवासी पेट सामने सजी हुई थाली देख जैसे रो उठा। अचानक कवि की चेतना लौटी। अपने आस-पास किसी उन्माद की भाँति कुछ ढूँढ़ने लगे। तभी उनकी नजर कक्ष के कोने में रखी उस पोटली पर पड़ी!

नहीं, वह रमणी केवल सुंदर और दयालु ही नहीं थी, बुद्धिमान भी थी। ऐसी मलिन पोटली वह दासी से कहकर फिंकवा सकती थी। पर ऐसा उसने नहीं किया। संभवत: वह समझ गई थी कि यह पोटली ही उसके अतिथि का सर्वस्व है। धीरे से कवि उठ बैठे। कक्ष के एक कोने में एक दीपक टिमटिमाकर जल रहा था। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् अब उनमें थोड़ी-बहुत ऊर्जा वापस आ गई थी। काँपते हाथों से कवि ने दुग्ध पात्र को उठाकर दूध पी लिया। फिर फलाहार ग्रहण करने के पश्चात् कवि थोड़े स्वस्थ अनुभव करने लगे। आज, हाँ आज ही! आज ही अंतिम अध्याय की रचना करनी होगी। गत कई वर्षों का परिश्रम तब जाकर सफल होगा। तभी कवि के निष्क्रिय होने के आरोप का खंडन होगा। आज वास्तव में बहुत खुशी का दिन था। यह सोचते ही कवि के चेहरे की खोई हुई चमक वापस आ गई।

पोटली खोलकर कवि ने कलम और दवात निकाली। ये दोनों वस्तुएँ उनके लिए अमूल्य हैं; क्योंकि उन्हें उज्जयिनी के राजा ने प्रथम बार राजकवि की उपाधि से भूषित करते समय इन दोनों वस्तुओं को उपहार में दिया था। ये दोनों वस्तुएँ सोने से बनी हैं, इसलिए नहीं बल्कि राजसम्मान हैं, इसीलिए अमूल्य हैं। स्वर्ण-दवात का सुनहरा रंग स्याही के स्याह रंग के कारण अब काफी काला पड़ चुका है। कलम की दशा भी कुछ वैसी ही है। कवि का सबकुछ चला गया था, पर ये दो वस्तुएँ उन्हें प्राणाधिक प्रिय हैं। इन्हें तो वे मृत्यु के साथ ही त्यागेंगे!

'चरैवेति! चरैवेति!'

कवि की लेखनी अविराम गति से आगे बढ़ने लगी। वेगवती पहाड़ी झरने की तरह। सहज-सरल मधुमय छंद में जैसे मंदाकिनी बह रही हो। फिर कब जाने कवि की कल्पना ने सीमांत को स्पर्श कर उसकी लेखनी को स्तब्ध किया, कवि जान भी न पाए। उनका श्रांत-क्लांत निद्रित मस्तक पांडुलिपि पर स्थापित रहा। वे गहरी निद्रा में डूब गए।

□

रात्रि का तीसरा पहर आरंभ हुआ। नगरी के तोरण पर तीन की घंटी बज रही थी। सहसा कवि की नींद टूटी और वे हड़बड़ाकर उठ बैठे। कुछ क्षण पश्चात् वे अतिथि-कक्ष के बरामदे पर आए। वहाँ से उनकी दृष्टि दूसरी मंजिल के कक्ष के गवाक्ष के पास बैठी उस रूपवती रमणी

पर पड़ी, जो कुछ लिख रही थी। कवि ने देखा, रमणी लिखने के बाद पढ़ रही थी और फिर जैसे निराश होकर भोजपत्रों के टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दे रही थी।

कवि बहुत देर तक एकटक उन्हें देखते रहे। फिर कुछ सोचकर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ते हुए गृहस्वामिनी के कक्ष के द्वार के समक्ष उपस्थित हुए। क्षणभर रुकने के पश्चात् उन्होंने द्वार पर हल्के से आघात किया।

रमणी चौंक उठी।

''कौन है इतनी रात को?''

द्वार खोलते ही सामने कवि को खड़ा देख रमणी क्षणभर के लिए क्रोधित हो गई।

''रात्रि के तीसरे प्रहर में एक भद्र रमणी के कक्ष के बाहर आप क्या कर रहे हैं? आपको जरा भी लज्जा नहीं आई?''

यों अवांछित संबोधन सुनकर कवि मृदु स्वर में बोले, ''आप क्रोधित न हों देवी! गवाक्ष से आपको बहुत विचलित होकर कुछ लिखते और फिर उन भोजपत्रों को टुकड़े करते मैंने देखा, तो मुझे लगा, आप किसी समस्या से विचलित हैं। यदि मैं किसी काम आऊँ, यही सोचकर मैं यहाँ चला आया।''

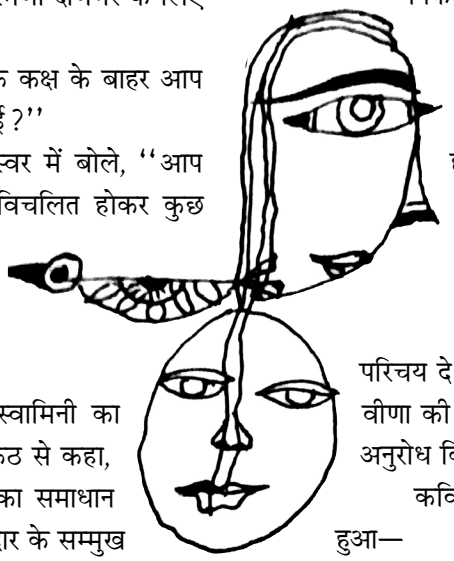

आश्रित भिक्षुक का यह साहस देख गृहस्वामिनी का मुखमंडल रक्तिम वर्ण हो उठा। उन्होंने कर्कश कंठ से कहा, ''चले जाओ यहाँ से इसी क्षण। मेरी समस्या का समाधान करना तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर है। पुन: यदि मेरे द्वार के सम्मुख तुम्हें देखा तो उसी क्षण मेरे गृह से तुम्हें विताड़ित करने को बाध्य हो जाऊँगी।''

गृहस्वामिनी की तिरस्कार भरी बातें सुन कवि नतमस्तक अपने कक्ष में लौट आए। पर उनके हृदय की व्याकुलता और बढ़ गई। आँखों से निद्रा जैसे कोसों दूर चली गई। जो पीड़ा उन्होंने गृहस्वामिनी की आँखों में देखी थी, उससे वह परिचित थे। वह सृजन की पीड़ा थी। रमणी केवल सुंदरी नहीं, विदुषी भी थी। यह सोचते हुए कवि पुन: गृहस्वामिनी के द्वार पर वापस लौट गए। कुछ क्षण पूर्व किया गया अपमान वह भुला चुके थे। उन्हें सामने खड़ा देख रमणी दासी को पुकारने ही वाली थी कि कवि की आँखों के स्वच्छ, वासनाहीन अविचलित भाव ने उसे अपने निर्णय को बदलने के लिए बाध्य किया। कुछ सोचकर उसने कवि को भीतर आने के लिए संकेत किया। आसन पर बैठने को कहकर उसने पूछा, 'ब्राह्मण, आप सत्य कहिए, आप कौन हैं?'

''मैं एक आश्रयहीन असहाय पथिक हूँ, देवी!''

''क्या आप काव्य-रचयिता हैं?''

''मुझे कविता से प्रेम है। मैंने अपने युवावस्था में कई काव्य-ग्रंथ कंठस्थ किए थे। आप चाहें तो सुना सकता हूँ।''

''यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है। अपना परिचय दीजिए। क्या आप कवि हैं?''

कवि ने झिझकते हुए कहा, ''कुछ-कुछ लिख लेता हूँ, एकाध छंद भी कभी मिला लेता हूँ।''

रमणी तब उदास होकर बोली, ''तुमने सही समझा था। मैं एक समस्या का समाधान नहीं कर पा रही हूँ। पिछले तीन दिनों से एक श्लोक पूरा करने की कोशिश कर रही हूँ, पर सफल नहीं हो पा रही हूँ। क्या तुम इसे एक बार देखोगे?''

फिर उसने अपने श्लोक की पहली पंक्ति सुनाई

''कमलात् कमलोत्पत्ति श्रुयते न च दृश्यते···''

श्लोक का अंत होते न होते कवि के मुख से दूसरी पंक्ति अनायास निकल आई—

''बाले तव मुखांभोजे कथम इंदिवर द्वय!''

यह क्या? वीणापाणि (सरस्वती) की वीणा का अपूर्व झंकार है क्या? गृहस्वामिनी को ऐसा ही लगा। कुछ क्षण निस्पंद, निर्वाक् वह देखती रही कवि को। प्रौढ़ता के बावजूद कवि की आँखों की द्युति, प्रशस्त ललाट, घुँघराले केश, तीक्ष्ण नासिका और सौम्य मुखमंडल एक असहाय आश्रयहीन पथिक का नहीं बल्कि कुछ और ही परिचय दे रहा था। काव्य का यह सुललित वाक्य-विन्यास वीणा की झंकार से कम न था। उसने पुन: कवि से कातर अनुरोध किया, ''पुन: आवृत्ति करो।''

कवि के मधुर पर गंभीर स्वर में श्लोक पुन: ध्वनित हुआ—

''कमलात् कमलोत्पत्ति श्रुयते न च दृश्यते।
बाले तव मुखांभोजे कथम् इन्दिवर द्वय!''

उत्तेजना से भरकर वह बारंबार श्लोक की आवृत्ति करने लगती है। वह इतनी प्रसन्न हुई कि कवि को धन्यवाद देना भी भूल गई। ऐसे में कब कवि कक्ष त्यागकर अपने कक्ष में जाने के लिए रवाना हुए, रमणी को पता भी न चला। जब श्लोक की पूर्ति की उत्तेजना थोड़ी कम हुई, रमणी को कुछ स्मरण हो आया। वह त्वरित गति से सीढ़ी उतरकर अपने अतिथि के पास पहुँची और पूछा, ''अतिथि, हो न हो कोई बड़े कवि हो, मुझे इतना बता दो, श्लोक को इतनी शीघ्रता से तुमने कैसे पूरा किया?''

कवि ने मुसकराते हुए पूछा, ''पृथ्वी पर सर्वाधिक सुंदर भाव क्या है, जो किसी को कवि बना दे?''

रमणी ने आश्चर्य से भरकर पूछा, ''क्या है?''

कवि ने द्वार बंद करते हुए कहा, ''प्रणय!''

□

रमणी अपने कक्ष में लौट आई थी, काफी समय बीत चुका था। उसके मन में उथल-पुथल मची हुई थी। एक अशुभ चिंता जन्म ले रही थी। उसने सोचा, कल सिंहल राजसभा में राजकवि का निर्वाचन था। इतने महीनों से इसी की तैयारी में मैं लगी हुई थी, श्रेष्ठ श्लोक जिसका होगा, कल उसी का राजकवि के रूप में चयन होगा। आज मेरे जिस

श्लोक को मेरे आश्रित अतिथि ने पूरा किया है, उसकी तुलना हो ही नहीं सकती। इसलिए कल की सभा में मेरी जीत निश्चित रूप से होगी। परंतु यदि यह विदेशी कवि ही वहाँ उपस्थित हो जाए, उसकी प्रतिभा के आगे सब फीके पड़ जाएँगे। मैं भी अपने श्लोक को अपना कह नहीं पाऊँगी। हो न हो, मेरा यह अतिथि कल की प्रतियोगिता में भाग लेने ही आए हैं।

एक अज्ञात भय ने रमणी के हृदय के स्पंदन को तेज कर दिया।

'हाँ, मैं अपने अतिथि को उसके कक्ष में ही बंद करके बाहर से साँकल चढ़ाकर राजसभा चली जाऊँगी।'

'उन्हें कल भर के लिए घर पर ही आराम करना पड़ेगा।' यह सोचते ही रमणी का सुंदर मुखमंडल कुटिल मुसकान से क्षणभर के लिए विकृत हो उठा।

तभी सामने दर्पण में अपनी छवि देख वह चौंक उठी—'छिह! छिह! यह कैसे बुरे विचार आ रहे हैं मेरे मन में! उसका प्रभाव मेरे चेहरे पर भी पड़ रहा है।''

पर फिर भी दूसरे ही क्षण पुन: राजकवयित्री बनने का स्वर्णिम स्वप्न उसके विवेक को ग्रास करने लगा। इस प्रकार शुभ और अशुभ का द्वंद्व मन में लिये वह अपनी शय्या पर लेट गई और कब उसकी आँखें बंद हो आईं, उसे पता भी न चला।

बंद आँखें और विचलित हृदय दोनों नें मिलकर कुछ सुखद दृश्य रचे, जो इस प्रकार थे। रमणी अपने गृह में नहीं, राजभवन के नंदन-कानन में घूम रही थी। वह अब केवल राज्य की राजनर्तकी नहीं थी, राज्य द्वारा निर्वाचित राजकवयित्री रत्नमाला थी। उसके पास अब धन, मान, यश किसी वस्तु की कमी नहीं थी। पर अब भी वही एक समस्या थी। जब भी कोई श्लोक पूरा करने बैठती, अंतिम पंक्ति में आकर रुक जाती। वह अपरिचित कवि की तरह कुछ रचना चाहती। पर अंतिम पंक्ति में वह ईप्सित काव्य-सौंदर्य या रस व्यक्त नहीं हो पाता। आज भी वह उन्माद की भाँति अंतिम पंक्ति के सटीक शब्द चयन में लगी हुई थी, पर उसकी आँखें बारंबार किसी को खोज रही थीं, संभवत: कवि को। तभी पीछे से किसी ने उसके कंधे की धीरे से स्पर्श किया। चौंककर उसने पीछे देखा, तो उस अपरिचित कवि को खड़ा पाया।

''कविवर! आपकी ही खोज में लगी थी मेरी आँखें, मेरी सहायता कीजिए। इस श्लोक का पादपूरण कीजिए।'' कहकर उसने भोजपत्र पर अधूरा श्लोक दिखाया।

''मुझे क्या दोगी?''

''स्वर्णमुद्रा, आभूषण, बहुमूल्य वस्त्र, जो चाहिए।''

''दैवी, तुम अपूर्व रूपवती हो, कुशल नर्तकी, काव्य प्रतिभा भी कुछ है, पर तुम्हारे पास हृदय नहीं है। तुम मस्तिष्क का प्रयोग अधिक करती हो, हृदय का नहीं।''

''हृदय नहीं तो हर्ष, विषाद, भय ये भाव कैसे आते हैं?'' कवि ने हँसते हुए कहा, ''हाँ, पर प्रणय का अभाव है। रमणी, तुमने कभी प्रेम नहीं किया।''

रमणी इस वाक्यबाण को सह नहीं पाई और विषाद तथा क्रोध दोनों से भरकर जैसे ही मुड़ी, आँखें खुल गईं और निद्रा टूट गई। आँखों में अश्रु भरकर वह स्वप्न के बारे में सोचने लगी। सच ही तो है, उसके जीवन में सारे भाव हैं, पर प्रेम का सदैव अभाव रहा है।

□

स्वर्णपुरी सिंहल की सुविख्यात राजधानी श्रीलंका के राजदरबार को आज विशेष रूप से सजाया गया है। श्रेष्ठ कवि या फिर कवयित्री का सम्मान आज किसे मिलेगा, यह जानने के लिए राजधानी के हर नागरिक के मन में अनंत कौतूहल की लहरें हिलोरें मार रही थीं। विजय-माला जिसे मिलेगी, आगामी एक वर्ष के लिए राजकवि या कवयित्री बनकर वे राजभवन में ही निवास करेंगे। उन्हें धन, सम्मान, यश सब मिलेगा। अत: आज देश-विदेश के अनगिनत कवि उपस्थित हो चुके हैं वहाँ, स्वरचित काव्य-पाठ के लिए। इस वर्ष इस समागम में एक विशेष आकर्षण यह है कि पहली बार राज्य की राजनर्तकी, एक अपरूप सुंदरी स्त्री इस काव्य-प्रतियोगिता में भाग ले रही है। इससे पूर्व किसी स्त्री ने कभी इस समारोह में भाग नहीं लिया था। धीरे-धीरे एक-एक कर सभाकक्ष में सभी कविगण अपना-अपना आसन ग्रहण कर चुके हैं।

भारतवर्ष से ही सर्वाधिक कवि आए हैं। इनमें से कई अत्यंत प्रतिभाशाली एवं विख्यात हैं। तभी घोषक सिंहलराज कुमारदास रत्नालंकारा के सभाकक्ष में प्रवेश की घोषणा करता है। महाराज के आसन ग्रहण करने के पश्चात् मंगलाचरण आरंभ हुआ। मंगलाचरण समाप्त होने पर सभा का कार्यक्रम आरंभ हुआ। पहले गत वर्ष के राजकवि ने अपनी विदाई पर भाषण दिया और महाराज के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। फिर धीरे-धीरे प्रत्येक कवि ने अपने-अपने काव्य का वाचन किया। सभाकक्ष में जैसे एक के पश्चात् एक शब्दों की रंगोली बनाई जा रही थी। सुमधुर शब्दों की झंकार से झंकृत होने लगा था सभास्थल। राजसभा में उपस्थित प्रत्येक नागरिक श्रोता एवं कविगण भी काव्य की रसधारा में अवगाहन करने लगे।

इसी सभा के एक ओर अब तक नीरव बैठी थी हमारी परिचित गृहस्वामिनी, राजनर्तकी तथा कवयित्री देवी 'रत्नमाला'। घोषक ने अंतिम प्रतियोगी के रूप में उनके नाम की घोषणा की तथा उनका परिचय यों दिया, 'अब अंतिम प्रतिभागी के रूप में अपना काव्य-पाठ करने आ रही हैं, सिंहल राज्य की अपरूप सुंदरी, सर्वजनप्रिय, नृत्य-गीत में कुशल, विदुषी, काव्यप्रिया, सुरसिका 'रत्नमाला देवी'। सभाकक्ष करतल ध्वनि से मुखरित हो उठा। देखा गया, उसकी काव्य-प्रीति के बारे में वहाँ के नागरिक भी जानते थे। रमणी धीरे-धीरे अपने सुमधुर कंठ से काव्य का पाठ करने लगी। सभाकक्ष बिल्कुल निस्तब्ध!

श्लोक के एक-एक शब्द नहीं, जैसे वीणा के तारों की झंकार थी। तो क्या यह रमणी ही होगी इस वर्ष की राज-कवयित्री? उपस्थित सबके मन में चरम उत्सुकता विराज रही थी। राजा की घोषणा के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी राजा सिंहासन त्यागकर उठ खड़े हुए और उत्तेजित स्वर में बोले, 'भद्रे। कृपया और एक बार श्लोक की पंक्तियों का वाचन करें।'

रत्नमाला ने राजाज्ञा मानकर पुनरावृत्ति की। राजा ने पुन: उसे वही करने की कहा। अबकी बार थोड़ा भयभीत होकर रत्नमाला ने श्लोक की पुनरावृत्ति की। फिर राजा ने स्वयं पाठ किया—

'कमलात् कमलोत्पत्ति श्रुयते न च दृश्यते।
बाले तव मुखांभोजे कथम् इन्दिवर दव्य!'

''देवी, यह किसकी रचना है? सत्य कहिए। क्या वास्तव में आपने इस श्लोक की रचना की है?''

रत्नमाला के मुखमंडल का मानो रंग उड़ गया। ऐसा प्रश्न कोई कर सकता है, इसकी कल्पना उसने स्वप्न में भी नहीं की थी।

राजा ने पुन: प्रश्न किया, ''आप नीरव क्यों हैं? बोलिए भद्रे, यह श्लोक आपके द्वारा रचित है? इसका पादपूरण क्या आपने किया है?''

रत्नमाला ने किसी तरह कहा, ''मैंने ही किया है महाराज! पर क्यों?''

राजा ने संदेह व्यक्त करते हुए कहा, ''पर यह कैसे हो सकता है। असंभव! आपके श्लोक में जैसे प्रतिध्वनित हो रही है उनकी वाणी? उनकी असाधारण प्रतिभा! आप सत्य कहिए, क्या पंक्तियाँ आपके द्वारा रचित हैं?''

कवयित्री के चेहरे और भंगिमा में निराशा के चिह्न उभर आए। पर उसने छिपाते हुए क्षीण कंठ से कहा, ''यह मेरी ही रचना है। पर क्या मैं जान सकती हूँ कि महाराज को संशय क्यों हो रहा है?''

राजा ने उत्तेजित स्वर में कहा, ''ऐसा अभिनव श्लोक, विशेषत: अंतिम पंक्ति, जिसे पादपूरण कहा जाता है, मेरे मित्र भारत के कवि-समाट् का ही प्रयास हो सकता है। यह शैली मेरी अत्यंत परिचित है और वे ही ऐसी रचना कर सकते हैं।''

'बाले तव मुखांभोजे कथम् इन्दिवर द्वय!'

''उनसे जब अंतिम बार उज्जयिनी में मेरी मुलाकात हुई थी, मैंने उन्हें कम-से-कम एक बार मेरी सभा में आने के लिए आमंत्रण दिया था। उन्होंने कहा था, कभी वैसी आवश्यकता पड़े कि मातृभूमि त्यागनी ही पड़े तो अवश्य मेरे यहाँ ही आएँगे। हाय! एक बार यदि उनके दर्शन मिल जाते तो मेरी अब तक की प्रतीक्षा सफल हो जाती!''

सिंहलराज कुमारदास की काव्यप्रीति सर्वविदित थी। वे केवल काव्य-रसिक ही नहीं थे, स्वयं भी सिंहल के एक ख्यातिमान कवि थे। उनके द्वारा रचित 'जानकी-मंगल काव्य' के कारण उन्हें अत्यधिक ख्याति एवं प्रशंसा मिली थी। राजा के हर शब्द में वेदना का प्रकाश था। ऐसा लग रहा था, जैसे उनकी आशा हताशा में परिणत हुई। फिर भी अपने को सँभालते हुए उन्होंने कहा, ''भद्रे, जब आप बार-बार कह रही हैं तो फिर आपने ही इसकी रचना की होगी। मुझे ही संभवत: समझने में कहीं भूल हुई है। आप ही अगले एक वर्ष के लिए राजकवि का आसन अलंकृत करेंगी।''

यह सुनते ही रत्नमाला और अपने आप को रोक न पाई। अपने मिथ्या भाषण के कारण उसका हृदय ग्लानि से भर उठा था। उसे लगा, प्रौढ़ कवि का वचन 'तुम्हारे पास हृदय नहीं है', सत्य हो गया। उसका हृदय उसे धिक्कारने लगा। वह विदुषी थी, काव्य के प्रति एक तीव्र आकर्षण था उसके मन में। राजनर्तकी के रूप में, स्त्री होने का सम्मान, जिसे एक दिन के लिए भी मिला नहीं था, वही सम्मान, एक कवि के रूप में अपने आप को प्रतिष्ठित कर वह लोगों की आँखों में देखना चाहती थी। पर राजा की आँखों में वह अविश्वास, संशय देखकर उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसने लगी। अनजाने में उसने एक बड़ी भूल कर दी थी। वह व्यक्ति, जो एक महाकवि था, कवि-सम्राट् था, सिंहलराज जैसे कवि और काव्य-प्रेमी जिसके दर्शन के इतने दिनों से अभिलाषी थे, उसने अज्ञानता के अंधकार में, लोभ के वश में आकर उस महाकवि को ही चाहरदीवार के बीच बंदी बना रखा था और उसी की काव्य-पंक्ति को अपनी कहकर मिथ्या-भाषण कर रही थी!

रत्नमाला अपने को और न रोक पाई। उसने सिंहलराज के समक्ष पिछली रात की सारी घटनाओं का वर्णन किया और कवि द्वारा श्लोक के चाहपुरण की वास्तविक कहानी सभी को बताई। यह सुनकर सिंहल-राज की मन की अधीरता कई गुणा बढ़ गई। उन्होंने कहा, ''प्रतिहारी, सर्वप्रथम नगर द्वार बंद कर दो। मैं आज कवि-सम्राट् के दर्शन कर पुन: धन्य हो जाऊँगा। वह मुझे पुन: छोड़कर न चले जाएँ। महामंत्री आप शीघ्र कवि को सम्मानित करने की सारी तैयारियाँ शुरू कर दीजिए। मैं स्वयं जा रहा हूँ उन्हें ले आने के लिए। अगले एक वर्ष क्यों, भारत के सर्वकालीन श्रेष्ठ कवि को मैं कई वर्षों तक यहाँ से जाने नहीं दूँगा।'' सिंहलराज का कंठ भावावेग से थरथरा रहा था। आज सिंहल और सिंहलवासी दोनों धन्य होंगे, यह सोचते हुए रत्नमाला को साथ लेकर रथ पर चढ़कर वे उसकी अतिथिशाला में पहुँचे।

अतिथिशाला के कक्ष का द्वार बंद था। वह अज्ञात कवि किसी तरह राजसभा में न पहुँचे, इसकी पूरी व्यवस्था रत्नमाला ने राजसभा जाने से पहले की थी, ताकि विजयमाला उसी के गले में पड़े। कक्ष का हर गवाक्ष भी बंद था। बाहर एक प्रहरी खड़ा था। राजा ने गंभीरतापूर्वक प्रहरी को द्वार खोल देने के लिए कहा। भयभीत प्रहरी ने शीघ्रता से द्वार खोला। बाहर से सूर्य की किरणों ने राजा और रत्नमाला के साथ कमरे में प्रवेश किया।

सबने देखा, कक्ष के बीच शय्या पर सोए हुए हैं वह अपरिचित अतिथि। आँखें बंद! चिरशांति की गोद में जैसे आश्रय लिया था उन्होंने। उनके समस्त मुखमंडल पर एक शांति और संतुष्टि की आभा जैसे छाई हुई थी, और वक्ष पर रखी थी एक पांडुलिपि, जिस पर मोती जैसे हस्ताक्षरों में लिखा हुआ था—

'रघुवंशम्
श्री श्री कालिदास विरचित।'

सा.अ.

२५/२ बालीगंज, सरकुलर रोड,
कोलकाता-७०००१९
दूरभाष : ९८३११२४१४२

हृदय-परिवर्तन

● प्रदीप कुमार

पं विश्वनाथ, एम.ए. स्थानीय हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। उनका छोटा सा मकान था, किंतु लंबा परिवार। पंडितजी बड़े ही शांतिप्रिय और धर्मपरायण व्यक्ति थे। बीसवीं शताब्दी की तड़क-भड़क से बिल्कुल दूर। उनकी पत्नी शारदा विशारद शिक्षित महिला थी किंतु पति के इतने सीधे होने को अपने भाग्य की विडंबना ही समझती थी। विश्वनाथजी हर महीने 'रजिस्टर' पर रुपए ४५०/- के हस्ताक्षर करते थे, परंतु पाते थे मात्र रु. ३००/- ही। स्कूल की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। अतएव वह त्याग स्कूल में नौकरी की एक शर्त ही बन गया था। लेकिन कभी उनकी धर्मपत्नी ने प्रश्न किया तो विश्वनाथजी का उत्तर होता था स्वाभिमान और त्याग की भावनाओं से ओत-प्रोत—'यदि मैं ही ऐसा न करूँ तो सहायक अध्यापकों के सामने क्या उदाहरण रख सकता हूँ।'

उनके पड़ोस में एक अच्छा सा मकान था, जिसमें एक आबकारी निरीक्षक (इंस्पेक्टर) रहते थे। हर महीने दस्तखत करते थे रुपए २२५ पर, लेकिन मिल जाता था कई गुणा और ऊपर से धर्मपत्नी मनोरमा देवी विद्या में सरला से अधिक न थी। लेकिन पहनाव-उठाव और शृंगार में बहुत आगे थी। चित्रपट पर किसी अभिनेत्री की पोशाक पसंद आई कि दूसरे दिन दरजी के यहाँ पहुँच गई। उनके घर में आधुनिक सुविधा और विलास के सभी साधन थे, जैसे कि रेडियो, फ्रीजीडियर इत्यादि। आए दिन पार्टी होती रहती थी और शोरगुल मचा रहता था।

उस दिन तरकारी वाले की आवाज सुन जब सरला अपने दरवाजे पर आई तो सामने मनोरमा को देखा। कोई मैगजीन पढ़ रही थी। मनोरमा ने भी सरला को देखा और अपने यहाँ आने को कहा। सरला ने एक क्षण कुछ सोचकर उत्तर दिया—'चूल्हे पर दूध रखा है, फिर आऊँगी।' वास्तव में सरला ने अपनी फटी साड़ी का ध्यान करके मनोरमा के पास जाना उचित न समझा था। सरला कह तो गई, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे अपना उत्तर लज्जास्पद जान पड़ा। इस घटना को कई दिन बीत गए, लेकिन सरला का साहस न हुआ मनोरमा से मिलने का। उसे अपने ही ऊपर क्रोध आता था कि उस दिन ऐसा झूठ बोलने की क्या आवश्यकता पड़ी थी। सरला की दशा उस व्यक्ति के जैसी थी, जो अदालत में आवेश में आकर झूठा बयान तो दे गया, लेकिन फिर अपने ही घर में घुसने से डरे।

भारत सरकार के 'दूर-संचार विभाग में इंजीनियर रहे। सेवा-निवृत्ति के बाद अब नाइजीरिया में अपना व्यापार सँभाल रहे हैं। कहानी आदि लेखन में रुचि।

कोई दस दिन बाद तीसरे पहर मनोरमा हाथ में स्वेटर लिये सरला के घर पर आ गई। शिष्टाचार के उपरांत उन दोनों में बातें होने लगीं। इसी बीच में रूपा महरी चौका-बरतन करके निकली, ''बीबीजी, आज शाम को न आऊँगी, उनकी तबीयत ज्यादा खराब है। खाँसी और बुखार हो गया है। डॉक्टर ने बीमारी बतलाई है।'' मनोरमा ने कहा, ''तो अस्पताल में भरती करा दे। घर पर इलाज न हो सकेगा।'' महरी एक साँस में बोली, ''अस्पताल में भरती करने गए थे। हे राम, आजकल का सा अन्याय तो अंग्रेजी राज में भी नहीं था। छोटे डॉक्टर से बात हुई, कहता था—बड़े डॉक्टर को घर पर दिखाओ, सोलह रुपए फीस देनी होगी। तब दाखिला हो जाएगा। भला गरीब के पास सोलह रुपए कहाँ से आए? उनका दु:ख देखा नहीं जाता। लेकिन वह तो कहते हैं, मुझे पड़ा रहने दो, जो भगवान् करेंगे होगा, तुम कर्ज में अपना गला मत फँसाओ। उम्र भर पिसती मरोगी। फिर बच्चों को पिसना होगा। भगवान् की जो इच्छा।''

सरला ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा, ''आजकल तो जिसकी लाठी उसकी भैंस। अगर आप प्रभावशाली हैं, ब्लैक-मार्केटिंग करके रुपया जोड़ लिया है, आपका किसी मिनिस्टर या एम.एल.ए. से परिचय है तो आप अच्छे-भले अस्पताल में भरती हो सकते हैं। स्पेशल वार्ड में आपको जगह मिलेगी। फल और मक्खन खाने को मिलेगा। दर्जनों नर्सें आपकी सेवा में लग जाएँगी। डॉक्टर भी ब्लड-प्रेशर देखेगा दिन में दो बार।''

बात काटते हुए मनोरमा ने कहा, ''और आपके वार्ड पर लिखा जाएगा 'नर्वस डिबिलिटी'। पढ़ने को मिलेंगे चित्रपट और फिल्मफेयर।''

सरला ने फिर कहना आरंभ किया, ''उस दिन अखबार में पढ़ा था, एक छह वर्षीय बालक टॉन्सिल्स के ऑपरेशन हेतु अस्पताल भेजा गया। माँ-बाप बच्चे को डॉक्टर के सुपुर्द कर बरामदे में बैठ गए। बेहोशी की दवा आवश्यकता से अधिक सुँघा दी गई। बालक निष्प्राण हो गया। जब मृतक बालक माँ-बाप को दिया गया तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़े और रोने लगे। उधर एक डॉक्टर निकले और कर्कश बोली में कहा, 'शोर बंद करो, यह अस्पताल है।' कितनी अमानुषिक घटनाएँ होने लगी हैं। अगर डॉक्टर को रुपया चटा दिया होता तो बड़ी सावधानी से काम होता और ऐसी दुर्घटना न हो पाती। धन-लोलुपता कितनी बढ़ गई है!''

इस पर मनोरमा ने कहा, ''मैं तो इन सबका कारण आर्थिक परिस्थिति ही समझती हूँ। लोगों का सूखे वेतन में गुजारा नहीं होता, इसलिए इधर-उधर की कमाई में लगते हैं। आखिर इन्हें भी तो अपने बाल-बच्चों को पालना है। आजकल वह महकमा ही नहीं, जहाँ रिश्वत-खोरी और चोरबाजारी न हो। उस दिन जब ननदजी अपने पाँच बच्चों के साथ एक महीने के लिए आ गईं तो मैंने नौकर को भेजा, राशन-दफ्तर कार्ड बनवाने के लिए। राशन इंस्पेक्टर ने तीन दिन तक उसे दौड़ाया, कभी बच्चों की उम्र मालूम करने के लिए, फिर उनका और पिता का नाम करने के लिए। आखिर में कह दिया कि क्या सबूत है कि वे लोग आए हैं। अगर इंस्पेक्टर का हाथ गरम कर दिया होता तो खड़े-खड़े कार्ड बन जाता। मैं उसके लिए उस गरीब इंस्पेक्टर को दोष नहीं देती। दोष देती हूँ सरकार को। भला सौ-सवा सो पानेवाला कैसे जिंदा रहें।''

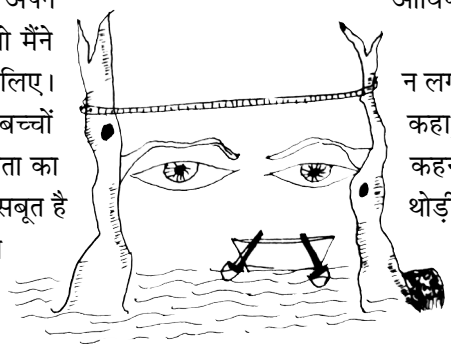

मनुष्य की प्रकृति है कि वह ऐसे सिद्धांत का समर्थन करता है, जिसके अनुकूल स्वयं का आचरण होता है। मनोरमा के घर ऊपर की आमदनी आती थी, इसलिए रिश्वत लेना वह परिस्थियों का ही परिणाम समझती थी। किसी व्यक्ति विशेष का दोष नहीं। सरला ने उत्तर दिया, ''मनुष्य को बहिर्मुखी न होना चाहिए बल्कि अंतर्मुखी बनना चाहिए। अगर किसी को थोड़ा वेतन मिलता है तो उसे अपने खर्च कम करने चाहिए, न कि बढ़े हुए खर्चों को चलाने के लिए अनुचित आमदनी करे।''

मनोरमा तुरत बोली, ''मैं मानती हूँ कि व्यर्थ के खर्च कम करने चाहिए, लेकिन एक हद होती है कम खर्च करने की। एक हजार रुपया पानेवाला यदि रिश्वत लेता है तो उसे गोली से मार देना चाहिए। लेकिन दो सौ, ढाई सौ वाला क्या करे? एक मध्यम श्रेणी के लिए पाँच सौ तो चाहिए ही। इससे अधिक वेतन काट देना चाहिए।''

सरला ने जवाब दिया, ''मनोरमाजी, जिसको जितना मिला है, वही उसको न्यूनतम मानता है। अगर यह प्रश्न किसी एक हजार पानेवाले से पूछा जाए, तो वह कहेगा, कम-से-कम पंद्रह सौ तो मिलना ही चाहिए। उसकी समझ में तीन हजार पाने का किसी को हक नहीं है।''

मनोरमा को सरला की बात अच्छी न लगी, बोली, ''आखिर आपकी राय में कौन सा आवश्यक खर्च है और कौन सा फिजूल? अपने-अपने दृष्टिकोण के मापदंड से एक खर्च एक के लिए आवश्यक है तो वही अन्य के लिए फिजूल हो सकता है। रेडियो रखना किसी के लिए शौक की चीज हो सकती है, लेकिन वही एक उच्च वर्ग के लिए नितांत आवश्यक। उससे संसार की घटनाओं का शीघ्रातिशीघ्र पता लग जाता है।''

सरला के यहाँ रेडियो न था, इसलिए मनोरमा का यह वाक्य उसे व्यंग्य लगा। उसने महसूस किया कि मनोरमा उसे निम्न वर्ग की समझती है और अपने को उच्च वर्ग में गिनती है। अपमान से तिलमिला गई, लेकिन चुप रही। मनोरमा कहती गई, ''मैं निरर्थक खर्च बढ़ने के पक्ष में नहीं हूँ। किंतु मनुष्य को अपने जीवन का स्तर तो ऊँचा करना ही चाहिए। उसके लिए इच्छाओं की आवश्यकता होती है। बिना इच्छाओं के संसार में कोई उन्नति नहीं हो सकती। कहा गया है, 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।''

सरला को मनोरमा की बढ़-चढ़कर बातें अच्छी न लगीं। उसपर किए गए व्यंग्य का घाव हरा था। उसने कहा, ''आप विषय से बहुत दूर निकल गईं, मेरा तो कहना है कि मनुष्य आवश्यक खर्च कम करके अपनी थोड़ी ही आमदनी में गुजारा करे। आखिर हम भी तो खाना खाते हैं, कपड़े पहनते हैं।'' मनोरमा बोली, ''खाने-खाने में और कपड़े-कपड़े में अंतर होता है। एक कुली और रिक्शावाला भी खाना खाता है, कपड़े भी पहनता है, लेकिन मनुष्य को अच्छी तरह रहने की कोशिश करनी चाहिए। मुझे अजगर का जीवन पसंद नहीं।''

सरला ने कहा, ''मैं यह नहीं कहती कि मनुष्य को अच्छी तरह रहने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए अथवा जीवन स्तर को ऊँचा नहीं करना चाहिए, लेकिन यह सब करना चाहिए मेहनत, सच्चाई और सन्मार्ग पर रहकर।''

वाक्य एकदम सादा था और सहजता से कहा गया था, लेकिन मनोरमा को लगा कि सरला ने उसको चाँटा मार ही दिया, तिलमिला उठी। उसने कहा, ''किसी को कष्ट देकर उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी से रुपया लेना पाप हो सकता है, लेकिन अगर कोई खुशी से दे दे तो उसे लेने में क्या बुराई? शराब की दुकान आठ बजे बंद हो जानी चाहिए लेकिन अगर एक-आधा घंटा और खुल जाने दी जाए तो किसी का क्या नुकसान। इतने पर ही इन्हें अच्छी आमदनी हो जाती है। पीनेवाले खुश, बेचनेवाले खुश। मुझे तो पंडितजी (सरला के पति) पर कभी-कभी अफसोस होता है, पिछले जून में आपको मालूम है इनके पास मैट्रिक की परीक्षा की कॉपियाँ आई थीं। ठेकेदार रुस्तमजी का लड़का इंतिहान में बैठा था। इंस्पेक्टर साहब के पास आया, एक हजार देने को बोला, केवल थोड़े से 'नंबर' बढ़ाने के लिए। इंस्पेक्टर साहब ने पंडितजी से कहा, लेकिन आप इतने डर गए और सहायता करने की लाचारी दिखाई।

आप ही सोचिए, लड़का पास हो जाता, उसे और उसके माँ-बाप को खुशी होती। आपका रुपयों से कितना काम चलता? आखिर जहाँ एक लाख लड़के पास हुए वहाँ एक लाख एक सही।''

मनोरमा की बात सरला के मस्तिष्क पर ऐसे ही असर कर रही थी जैसे शराब का पहला पैग नौसिखिया पर करता है। उसे ऐसा जान पड़ा मानो कि १००० रुपए सचमुच उसके हाथ में आ गए हों, उसने अपने बॉक्स में बंद कर दिए हों, और यकायक अपने पति की मूर्खता के कारण खो गए हों। एकदम उसकी ऊँची 'फिलासफी' और सिद्धांत लुप्त होते लगे। उसने अपना भाग्य कोसते हुए कहा, ''पंडितजी का इतना सीधापन मुझे भी अखरता है। इनके साथी वर्माजी कॉलेज में प्रोफेसर हो गए, और भटनागर साहब शिक्षा सचिवालय में कितनी उन्नति कर गए। इनका यही घर और वही स्कूल।''

मनोरमा ने भाँप लिया कि क्लोरोफॉर्म असर कर गया। गंगाजल मिला था, मदिरा को शुद्ध करने के लिए, किंतु स्वयं ही मदिरा बन गया। मनोरमा के हर्ष की सीमा न रही। उसे ऐसी ही प्रसन्नता हुई, जैसे कि किसी पहलवान को अपने प्रतिद्वंद्वी को पछाड़कर होती है। अथवा मेनका को ऋषि विश्वामित्र का ध्यान भंग करके हुई होगी। इसी समय नौकर ने आवाज दी, ''बाबूजी घर आ गए हैं, चाय ठंडी हो रही है।'' मनोरमा झट उठकर चली गई।

उस दिन जब कोई रात को आठ बजे पंडित विश्वनाथ आए तो सरला ने प्रश्न किया, ''साढ़े चार बजे स्कूल से चलकर एक मील आ पाए हैं?'' सरला की आवाज में क्रोध और तिरस्कार का आभास था। विश्वनाथजी ने सरल स्वभाव से उत्तर दिया, ''शाम को बच्चों के साथ घूमने चली जाया करो, आखिर मुझे तो इधर-उधर जाना लगा ही रहता है।''

''अगर यह मिलने-जुलने की आदत पहले ही डाले होते तो बहुत आगे बढ़ गए होते। आपने तो इसी स्कूल की मौह सी लिखा रखी है।''

''इन दिनों में देखता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य ऐसे ही रहता है। बनारसी बाग ही हो आया करो।''

''मेरी बात अलग रही, बच्चों के पास आज तीन महीने से जूते नहीं हैं, बाहर जाकर क्यों अपमान कराऊँ। बराबर की पड़ोसन को देखिए दिन में तीन बार कपड़े बदलती है, बच्चे भी राजकुमार बने फिरते हैं।''

सरला कुछ रुआँसी हो गई। विश्वनाथजी ने समझ लिया, पड़ोसन का असर है। विश्वनाथजी के साथियों में कई बहुत ऊँचे पदों पर पहुँच गए थे, लेकिन इस ओर उनका कभी ध्यान नहीं गया था। आज प्रथम बार उन्हें अपने जीवन की विषमता का कटु अनुभव हुआ था। मनुष्य बाहर के लोगों से किया गया अपमान सह सकता है, किंतु जब उसे अपनी स्त्री भी मूर्ख समझने लगे तो उसके विषाद की सीमा नहीं रहती।

उस दिन से सरला की दृष्टि में मनोरमा और उसके पति एक आदर्श पति-पत्नी तथा सफल नागरिक बन गए। दिन यों ही बीतते गए। सरला और विश्वनाथजी में मनमुटाव बढ़ता ही गया। पति की प्रत्येक बात में उसे संदेह और बनावट दीख पड़ने लगी, 'आखिर मैं कोई निरक्षर तो नहीं हूँ, विशारद बी.ए. के बराबर माना जाता है। डेढ़ सौ, दो सौ रुपए की नौकरी मिल ही जाएगी।' उस रात को जब विश्वनाथजी घर आए तो सरला ने कहा, ''मैं डॉक्टर भैया के पास दो साल से नहीं गई, विचार है, कल चली जाऊँ। एक सप्ताह में आ जाऊँगी, वहीं पर आँखें भी टेस्ट करा लूँगी और मेरा चश्मा भी बन जाएगा।''

दूसरे दिन सरला को स्टेशन छोड़ते हुए विश्वनाथजी स्कूल चले गए। घर की दूसरी चाबी, जो सरला के पास रहती थी, उसे बेटी को देते हुए यह कहा कि चाबी सँभाल के रखना और अपने भाई-बहनों का खयाल रखना।

सरला ने टिकट लिया और प्लेटफॉर्म पर पहुँची। गाड़ी चलने को तैयार खड़ी थी, आनन-फानन में सामने खड़े डिब्बे में बैठ गई। यह थर्ड क्लास का डिब्बा था तो रिजर्वेशन वाला, पर सरला की तरह और भी बिना रिजर्वेशन वालों के कारण डिब्बे में काफी भीड़ थी, वह सचमुच भानुमती का कुनबा होता है। डिब्बे में दो सरकारी चपरासी बैठे थे, एक पासी को पकड़ हुए, जिसके कपड़े फटे-चीथड़े थे। दूसरी ओर स्कूल के कुछ विद्यार्थी बैठे थे। एक अधेड़ उम्र का मारवाड़ी सेठ तोंद फैलाए अपनी पूरी सीट घेरे बैठे थे। उसकी पत्नी रामायण का गुटका पढ़ रही थी। सामने की सीट पर उन्नत ललाट श्वेत केशधारी एक संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहने बैठे थे। गाड़ी खुली और जल्दी ही रफ्तार पकड़ ली। संन्यासी ने सरकारी चपरासी से पूछा, ''क्यों बच्चा, इस जीव ने क्या अपराध किया है?'' वात्सल्य भरी वाणी सुनकर पासी हाथ जोड़े और गिड़गिड़ाते हुए बोला, ''महाराज, आप परमात्मा के समान हैं, आपके सामने मैं अपने लड़के की सौगंध खाकर कहता हूँ, मैं बिल्कुल निरपराध हूँ, ये लोग ढाई सौ रुपए माँगते हैं और कहते हैं मैं शराब बना रहा था।''

चपरासी ने उत्तर दिया, ''महाराज, हम लोग भी निरपराध हैं, जैसा ऊपर से हुकुम मिला, वैसा कर रहे हैं।'' संन्यासी ने फिर आँखें बंद कर लीं, थोड़ी देर बाद फिर चपरासी को संबोधित करते हुए कहा, ''बच्चा, इसको क्यों सताते हो?'' चपरासी बोला, ''हमारे इंस्पेक्टर साहब कहते हैं कि चार-छह केस न पकड़ोगे तो निकाल दिए जाओगे। ऊपर से सख्ती होती है, वही हमें बरतनी होती है।''

मारवाड़ी सेठ लेटे थे, उठकर बैठ गए और बोले, ''इन लोगों के मुँह हराम लग गया है, रुपया चाहिए, चाहे जैसे भी क्यों न आए। एक इंस्पेक्टर ने मुझसे दो हजार रुपए माँगे, मैंने मना कर दिया। बदमाश ने किसी से मेरे गोदाम में कोकीन रखवा दी। मेरे घर में जब मेरी लड़की की बारात दरवाजे पर थी, तलाशी का वारंट लेकर मेरे घर आ गया। मैंने पाँच सौ देकर इज्जत बचाई। सरला ने सेठ की स्त्री से पूछा, ''नाम क्या है?'' ''नाम तो मालूम नहीं, सदर में रहता है। उसकी स्त्री देखो सिल्क

और मखमल से कम बात ही नहीं करती।'' कोने में बैठे एक सज्जन ने कहा, ''जैसा धन आता है, वैसी बुद्धि हो जाती है। फिर वैसे ही कर्म और वैसा ही अंत। भला बेईमानी की कमाई से आज तक किसी का पूरा पड़ा है। थोड़े दिन का मन समझाना होता है।''

उधर एक विद्यार्थी ने कहा, ''सुरेश! हिसाब की कॉपी कहाँ गई है, मालूम है?'' सुरेश बोला, ''आनंद के मामाजी तो बोर्ड ऑफिस में हैं, उसका तो डिस्टिंक्शन आएगा। एग्जामिनर से कह देने भर की बात है, नहीं तो बच्चा को अगले वर्ष कॉपियाँ नहीं मिल पावेंगी।'' एक और विद्यार्थी बोला, ''बच्चू मन के लड्डू मत खाओ, डिस्टिंक्शन नहीं ऑनर्स आवेगा। जानते नहीं हो कि अबकी बार पंडित विश्वनाथजी एग्जामिनर हैं। दूध का दूध और पानी का पानी करते हैं।''

''वह तेरे मामा लगते हैं, वह क्या किसी मिनिस्टर की भी परवाह नहीं करेंगे। मैंने तो उन्हें सत्य हरिश्चंद्र की उपाधि दे रखी है।''

''अगर उन्होंने ऐसी ही परवाह किसी की की होती तो···।'' गाड़ी में बैठे एक व्यक्ति ने कहा, ''विश्वनाथजी जैसे सच्चे कुछ लोग और बन जाएँ तो देश की ऐसी अधोगति क्यों हो, बिल्कुल रामराज्य ही न बन जाए।'' सरला ने सुना और आनंद से गद्‌गद हो गई।

सरला देख रही थी कि ट्रेन टिकट एग्जामिनर उसकी तरफ ही आ रहा है। टिकट देखने के बाद बोला, ''आप अगले स्टेशन पर बिना आरक्षित डिब्बे में चली जाएँगी, बनारस तो बहुत दूर है।'' उसने देखा था कि लड़कों से कुछ रुपए जेब में रखकर उनसे कुछ नहीं बोला था।

''ठंडा पानी, गरम चाय, खस्ता कचौड़ी की अवाज सुनाई दी, स्टेशन आ गया, गाड़ी खड़ी हो गई। सरला ने सहयात्री की मदद से सामान उतारा। सामने कुली खड़ा था, उससे ही सरला ने पूछा, ''लखनऊ के लिए अभी कोई गाड़ी है?'' ''उधर वह तैयार खड़ी है, यहाँ मेल होता है,'' उत्तर मिला। सरला ने अपना सामान उठवाया और लखनऊ जानेवाली ट्रेन में बैठ गई। शाम तक वह वापस घर लौट आई। सिर भारी हो रहा था, देखा कि बेटी ने घर की सफाई और कपड़े तह करके रख दिए हैं। बच्चे समझदार हो गए हैं, इसका पहली बार बोध हुआ। वह तख्त पर लेट गई और पता ही नहीं चला कि उसे कब नींद आ गई।

शाम को जब पंडित विश्वनाथ घर आए तो उन्हें आश्चर्य और संदेह हुआ। लेकिन आज सरला के मुख पर एक अलौकिक आनंद और स्नेह था, जो उन्होंने पिछले इतने वर्षों में कभी न देखा था।

विश्वनाथ बोले, ''क्या गाड़ी नहीं मिली?'' सरला एक साथ उठ बैठी, ''मिली और आधे रास्ते से लौट आई।''

''क्यों?'' सरला बोली, ''आपका आकर्षण···'' स्नेह से ओत-प्रोत ये शब्द विश्वनाथजी ने पहली बार ही सरला से सुने थे। ''आखिर कुछ दिन रहकर आँखें ही टेस्ट करा लेती।''

''मुझे अब चश्मे की जरूरत नहीं, बिल्कुल साफ दिखने लगा है।''

पंडितजी बोले, ''तो विश्वनाथजी के ही दर्शन-लाभ कर आती।''

''मेरे तो विश्वनाथ मेरे सामने ही हैं।''

डी-२, सेक्टर-४८
नोएडा-२०१३०१
दूरभाष : ०१२०-२५७१११२

आईना दिखलाऊँगा

गजलें

● धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल'

: एक :

वो जो सबसे भिन्न है,
वो ही सबसे खिन्न है।

अंश है जो हर वही,
कैसे कह दूँ भिन्न है?

उनके हाथों जो बना,
उनके हाथों छिन्न है।

सच, सियासत आज की,
तक-धिना-धिन-धिन है।

कथ्य भी कुछ है उदास,
शिल्प भी कुछ खिन्न है।

: दो :

कब कहा आज-कल चाहिए,
जिसमें जी लूँ, वो पल चाहिए।

तुमने पौधा लगाया अभी,
और अभी तुमको फल चाहिए।

सड़ चुका है सरोवर का जल,
उनको खिलता कमल चाहिए।

पान अमृत का जब कर लिया,
कह रहा है गरल चाहिए।

दिल की मिट्टी करो खूब नम,
गर गजल की फसल चाहिए।

: तीन :

हमको जैसे गम मिले हैं,
दूसरों को कम मिले हैं।

तुम जिन्हें कहते हो सूरज,
चाँद से मद्धम मिले हैं।

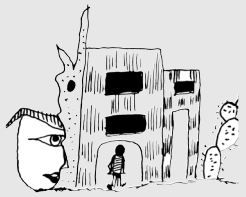

किस भरम में जी रहे हो,
किसको दो आलम मिले हैं।

रंग और खुशबू से खाली,
हमको सब मौसम मिले हैं।

तुम नहीं तुम, हम नहीं हम,
इस तरह क्यों हम मिले हैं।

जिंदगी के इम्तिहाँ में,
हमको नंबर कम मिले हैं।

: चार :

किस-किसको समझाऊँगा,
मैं पागल हो जाऊँगा।

मैं न सफाई दूँगा कोई,
जहर भले पी जाऊँगा।

जितना मुझ में डूबोगे,
उतना मैं गहराऊँगा।

अंधों की बस्ती में किसे,
आईना दिखलाऊँगा।

ठीक रहेगा हाँ इतना,
इतना दुःख सह पाऊँगा।

कड़वा सच कहता हूँ मैं,
कैसे उनको भाऊँगा!

के-३/१० ए
माँ शीतला भवन, गायघाट
वाराणसी-२२१००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८९३५०६५२२९

अलौकिक लोककवि ईसुरी

● नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

सच्ची कविता वह गंगा है, जो लोक के गोमुख से फूटती है। लोककंठ से नि:सृत होनेवाली सहज कविता ही काव्य के अनुशासन को परिभाषित करती है। इस कविता को किसी बोझिल अभिव्यक्ति, गूढ़ चिंतन तथा गहन अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती। यह कविता पोथी से परे और आत्मप्रकाशन से कोसों दूर होती है। इस कविता को प्रायोजित सम्मान भले न मिलें, लेकिन इसे लोक सम्मानित करता है। बुंदेलखंड के लोककवि ईसुरी वे कवि हैं, जिनकी कविता को लोक ने सम्मानित किया। वे निकट अतीत के लोक कवि हैं, लेकिन उनकी हस्तलिपि में लिखा हुआ कोई ग्रंथ आज तक नहीं मिला। उनकी कविताओं का संग्रह बुंदेलखंड के लोककंठों में है, जिसके नित्य संस्करण निकलते हैं।

इस लोककवि को जानना वास्तव में हमारे लोकजीवन की आत्मा को जानना है। इसलिए कि उनकी बुंदेली कविता में हमारे जीवन का प्रत्येक व्यवहार झाँकता है और इस लोक की सुंदरता उनके शब्द-शब्द में मानो रूप बन जाती है। शब्द सुनाई नहीं देते बल्कि वे दिखाई देते हैं। यद्यपि बुंदेलखंड में सूरश्याम तिवारी, मंगलदीन उपाध्याय, महिपत, महारानी रूपकुँवर, हीरालाल तिवारी, मीर खाँ, पं. बैजनाथ व्यास, पं. रामनारायण व्यास तथा शिवदयाल जैसे अन्य फाग लिखनेवाले कवि भी हुए, लेकिन जो प्रसिद्धि ईसुरी को मिली, वह इनमें से किसी को नहीं मिल पाई।

बुंदेलखंड के इस अद्वितीय लोककवि का पूरा नाम ईश्वरी प्रसाद तिवारी था, जिनका जन्म चैत्र शुक्ल १० संवत् १८९८ (ईस्वी सन् १८४१) में उत्तर प्रदेश के मऊरानीपुर के निकट मेंडकी नामक स्थान में हुआ था। उनके बचपन का नाम हरलाल था। उनके पिता का नाम श्री भोलानाथ अड़जड़िया तथा माता का नाम गंगादेवी था। वे तीन भाई थे। ईसुरी का निधन अगहन शुक्ल ६ संवत् १९६६ (ईस्वी सन् १९०९) में हुआ। उनके यौवन काल में ही उनकी पत्नी का निधन हो गया। उनकी एक लड़की थी, कोई पुत्र नहीं था किंतु वह भी विधवा हो गई, जिसके कारण वे आजीवन दु:खी रहे। ईसुरी बहुत लिखे-पढ़े नहीं थे। वे जमींदारों के यहाँ कारिंदे बनकर रहे तथा उनका अंतिम समय बुंदेलखंड के एक छोटे से गाँव बघौरा में बीता।

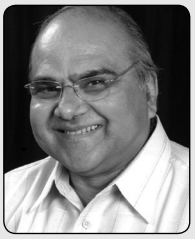

विगत ४५ वर्षों से लेखन में सक्रिय। इनके द्वारा अब तक छह संपादित, तीन अनूदित, तेरह ललित निबंध-संग्रह तथा भारतीय कला पर दस कृतियाँ प्रकाशित। उन्हें अनेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए, जिनमें मुकुटधर पांडेय पुरस्कार, कलाभूषण सम्मान, शमशेर सम्मान, अक्षर आदित्य सम्मान, श्रीनरेश मेहता वाङ्मय सम्मान व राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान।

फाग का उत्स मूलत: शृंगार है तथा बुंदेलखंड में शृंगारी कवियों की बड़ी लंबी परंपरा रही है। पद्माकर, खुमान कवि, ठाकुर, दामोदर देव, नवलसिंह कायस्थ, प्रताप साहि, पजनेश, गदाधर भट्ट, सरदार कवि, भगवंत कवि, गंगाधर व्यास तथा खयालीराम जैसे बुंदेलखंड के शृंगारी कवियों ने प्रभूत काव्य रचा। इसी काव्य का एक अंग फाग है। ईसुरी की प्रसिद्धि उनकी फागों के कारण है। फाग परंपरागत लोक संगीत है, जो परंपरागत रूप से बुंदेलखंड में प्रचलित रहा है। बुंदेली की तरह इसकी परंपरा राजस्थानी भाषा तथा प्राचीन गुजराती में भी रही है।

फाग शब्द की उत्पत्ति फाल्गुन से हुई है। इस माह में जो गीत लोक स्वर में निबद्ध किए जाकर गाए गए, वे फाग कहलाए। फागों के साथ बुंदेलखंड का सुप्रसिद्ध राई नृत्य पर किया जाता है। बुंदेलखंड में साखी की फाग, झूला की फाग, बुझौवल फाग (प्रश्नोत्तरी फाग), छंदयाऊ फाग, डिढ़खुरयाऊ फाग जैसे अनेक फाग प्रचलित रहे हैं। लेकिन ईसुरी ने चौकड़िया फाग की नई परंपरा आरंभ की। चौकड़िया का अर्थ चार कड़ीवाली फाग है। चौकड़िया का एक अर्थ चौकड़ी भरनेवाला भी है। ईसुरी की यह चौकड़िया फाग इतनी प्रसिद्ध हुई कि तुलसी की रामायण और तानसेन के राग से इसकी तुलना हुई, कहा गया—

रामायन तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलिकाल में, कही ईसुरी फाग॥

ईसुरी को प्राय: ग्रामीण फगुआरे व फड़ गायक के रूप में तथा एक अश्लील कवि के रूप में भी समझा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सामने भी ईसुरी का साहित्य नहीं आ पाया। उन्हें मान्यता बहुत बाद में मिली। उनसे बच्चनजी बड़े प्रभावित थे तथा वे उन पर काम करना

चाहते थे। इस संबंध में उन्होंने बुंदेलखंड के साहित्यकार श्री कृष्णानंद गुप्त से भी आग्रह किया था, जिन्होंने ईसुरी पर कार्य किया, किंतु इस कार्य को पूर्णता उनके पुत्र श्री रमेश गुप्त ने दी। बाद में ईसुरी पर काफी कार्य हुआ। मैत्रेयी पुष्पा ने 'कहे ईसुरी फाग' शीर्षक से आधुनिक परिवेश को केंद्र में रखते हुए अपना उपन्यास लिखा।

ईसुरी के द्वारा कही गई फागें बुंदेलखंड के अनेक लोगों ने अपने रजिस्टर्स में लिखीं। इन फागों को ईसुरी के शिष्य धीरज पंडा गाते थे। अपने आरंभिक काल में ईसुरी भी इन फागों को गाते रहे। कहा जाता है कि ईसुरी ने लगभग एक हजार फागें कहीं। बुंदेलखंड के प्रख्यात लोकविद् डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि जो बात-बात पर फाग कहता रहा हो, उसके लिए हजारों फागें लिखना कठिन काम नहीं है। ईसुरी की फागों की विषयवस्तु सीमित नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा मित्र और भौजी के विनोदों से लेकर राम और कृष्ण की भक्तिपरक भावभूमि तक, राधा-कृष्ण के प्रणय से लेकर वैराग्य को बिगाड़ने वाली वसंत ऋतु तक, जल भरती कमर की लचकन से लेकर प्रेम की तीव्र पीड़ा तक और लोक की जीवंतता से लेकर जीवन की निस्सारता के दर्शन तक को इस लोककवि ने अपनी फागों में बाँधा है।

ईसुरी की प्रसिद्धि उनकी प्रेयसी 'रजऊ' के कारण है, उसी तरह जैसे घनानंद 'सुजान' के कारण जाने जाते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि रजऊ ईसुरी की कल्पना की देन थी, लेकिन अधिकांश लोगों का मानना है कि वे वास्तव में उनकी प्रेयसी थी। लेकिन ईसुरी की रजऊ पर कही गई फागों को पढ़-सुनकर लगता है कि रजऊ उनकी प्रेयसी रही होगी, क्योंकि रजऊ का उन्होंने जो जीवंत चित्रण किया है और जिस समर्पण भाव से किया है, उससे लगता है कि वे रजऊ के प्रति दीवानगी की सीमा तक आसक्त रहे होंगे। बुंदेलखंड के ही सुप्रसिद्ध संस्कृतिविद् डॉ. श्यामसुंदर दुबे का मानना है कि ईसुरी ठेठ के ठाठ से सजे-सँवरे अपनी निश्छल अभिव्यक्ति में अद्वितीय हो जाते हैं। उनका यह कहना सटीक है। ईसुरी ने रजऊ को लेकर जिन देशज शब्दों और प्रतीकों के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त किया है, वह वास्तव में अपूर्व है। अस्थियों में घुन लगना एक बुंदेली मुहावरा है, लेकिन ईसुरी ने इसे रजऊ के प्रेमचिंतन से जोड़ दिया। एक फाग में उन्होंने कहा—

बुंदेलखंड के प्रख्यात लोकविद् डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि जो बात-बात पर फाग कहता रहा हो, उसके लिए हजारों फागें लिखना कठिन काम नहीं है। ईसुरी की फागों की विषयवस्तु सीमित नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा मित्र और भौजी के विनोदों से लेकर राम और कृष्ण की भक्तिपरक भावभूमि तक, राधा-कृष्ण के प्रणय से लेकर वैराग्य को बिगाड़ने वाली वसंत ऋतु तक, जल भरती कमर की लचकन से लेकर प्रेम की तीव्र पीड़ा तक और लोक की जीवंतता से लेकर जीवन की निस्सारता के दर्शन तक को इस लोककवि ने अपनी फागों में बाँधा है।

हड़रा घुन हो गए हमारे, सोच में रजऊ तुम्हारे।
दौरी देह दूबरी हो गई, करकें देख उगारे।

अर्थात् रजऊ से हुए प्रेम के बारे में सोचते-सोचते हड्डियाँ घुन हो गई हैं और स्वस्थ शरीर दुबला हो गया है। उसे उघाड़कर तुम देख सकती हो।

ईसुरी की प्रसिद्धि मुख्यत: अपनी प्रेमिका रजऊ को लेकर कही गई फागों से है। उन्होंने रजऊ की हर भंगिमा से लेकर उसके प्रत्येक अंग का रससिक्त वर्णन किया है। रजऊ के सौंदर्य का वर्णन करनेवाली एक फाग में उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि रजऊ की प्रशंसा में उन्होंने तीन सौ साठ गीतों की रचना कर दी। फाग है—

जोतें रजऊ के मों की जागें, चकचोंदी सी लागें।
कोंदन लागीं बिजुरी कैसी, स्याम घटा के आगें।
सूरज अटा छटा पै छूटे, देखत ही रथ भागें।
कहीं तीन सौं साठ ईसुरी, रजउ रजउ की फागें।

अर्थात् उसके मुखमंडल से ऐसी आभा फैल रही है, जिससे आँखें चौंधिया जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे काली घटा के बीच बिजली चमक रही हो। वह अट्टालिका पर बैठी है और उसके मुखमंडल के सौंदर्य को देखकर लगता है, जैसे सूर्य लजाकर अपने रथ को तेजी से भगा रहा है। ईसुरी ने रजऊ की प्रशंसा में तीन सौ साठ फागों की रचना कर दी है।

रजऊ के प्रति आसक्ति की पराकाष्ठा तो तब होती है जब ईसुरी ईश्वर से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि जब उन्हें अंत्येष्टि के लिए ले जाया जाए तो वे रजऊ की गली से गुजरें—

दोऊ कर परमेसुर से जोरें, कर औ कृपा की कोरें।
ठठरी पै धर कै ले जाइयो, रजऊ कोद की खोरें।

ईसुरी अपनी अंतिम यात्रा के बारे में कहते हैं—

बिधना करी देह ना मोरी, रजऊ के घर की दैरी।
आवत जात चरन की धूरी, लगत जात हर बेरी।
लागौ आन कान के ऐंगर, बजन लगी बजनेरी।
उठत चहत अब हाट ईसुरी, बाट बहुत दिन हेरी।

अर्थात् विधाता ने यदि मेरी देह को रजऊ के घर की देहरी बनाया होता तो उसके पाँवों की धूल का स्पर्श मिलता। लेकिन अब जाने का समय आ गया है, क्योंकि कानों में बिदाई के बाजे बजने लगे हैं। प्राण छूटनेवाले हैं, यह हाट उठनेवाली है। मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारी प्रतीक्षा की। यह फाग उस प्रेमी की ओर से है, जो आजीवन अपनी प्रेमिका से मिलन की एकांगी आकांक्षा सँजोए रहा, लेकिन उसकी लालसा अंत तक पूरी नहीं हुई।

रजऊ के सौंदर्य को बाँधनेवाली यह फाग अद्‌भुत है, जिसमें ईसुरी कहते हैं कि रजऊ तुम अद्वितीय हो। सिंघल दीप से लेकर सभी दिशाओं में खोजा, लेकिन तुम्हारे जैसी पद्मिनी दिखाई नहीं दी। तुम्हारे सौंदर्य के सामने तो संसार की सभी सुंदर स्त्रियाँ पानी भरती हैं। ईसुरी बड़ा भाग्यशाली है कि तुम उसकी प्रेयसी हो।

नईयाँ रजऊ तुमारी सानी सब दुनिया हम छानी
सिंघल दीप छान लओ घर-घर, ना पद्मिनी दिखानी
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन, खोज लई रजधानी
रूपवंत जो तिरियाँ जग में, ते भर सकतीं पानी
बड़ भागी हैं ओई ईसुरी तिनकी तुम ठकुरानी

उन्होंने रजऊ के सौंदर्य का वर्णन करते हुए एक और फाग में कहा कि उन्हें उसकी हेरन (चितवन) और हँसन (हँसी) नहीं भूलती और उसका विशाल यौवन, मतवाली चाल, इकहरी पतली कमर, बाण की तरह तनी भौंह और तिरछी नजर भुलाए नहीं भूलती। वे उसकी नजर के बाण से मरने तक को तैयार हैं, लेकिन इस बहाने कम-से-कम एक बार रजऊ उनकी ओर देख तो ले। फाग इस प्रकार है—

जियना रजऊ ने पैनो गारो, हरनी जिया बिरानो
छूँटा चार बिचौली पैरें, भरे फिरे गरदानो
जुबनन ऊपर चोली पैरें, लटके हार दिवानो
'ईसुर' कान बटकने नइयाँ, देख लेव चह ज्वानो।

ईसुरी ने ठेठ बुंदेलखंडी प्रतीकों को चुनते हुए रूप, शृंगार और प्रेम की अद्भुत फागें रची हैं। उन्होंने नायिका के नैनों की तुलना बाण, बरछी और तलवार से तो की ही है साथ ही नैनों को कसाई और शिकारी भी कहा है और एक फाग में तो ईसुरी ने उनकी तुलना पिस्तौल से करते हुए एक अद्भुत बिंब रच दिया है—

अँखियाँ पिस्तौलें सी भरकें, मारन चात समर के
गोली लाज दरद की दारू, गज कर देत नजर के,
देत लगाए सेंन के सूजन, पल की टोपी धरकें
ईसुर फैर होते फुरती में कोऊ कहाँ लौ बरकें।

आशय है, यह सुंदरी अपनी आँखों से पिस्तौल सी भरकर सावधानी से किसी को मारना चाहती है। आँखों की इन पिस्तौलों में लाज की गोली है, दर्द की बारूद भरी है, जो नजर रूपी गज से धँसी है। ईसुरी कहते हैं कि संकेत की सुई द्वारा पलकों की टोपी का निशाना साधकर ये इतनी फुरती से वार करती हैं कि इनसे कोई बच नहीं पाता अर्थात् इनके प्रेम जाल में फँस जाता है।

बुंदेलखंड में स्त्रियों के द्वारा पहने जानेवाले अलंकरणों का विवरण उन्होंने इस फाग में रजऊ के मार्फत कुछ इस तरह दिया है—

जिदना रजऊ पैरतीं गानौ, जिअना होत बिरानौ।
बेंदा, बीज, दावनी, दुरकों, पाव झलरया कानों।
सरमाला, लल्लरी, बिचौली, मोरें हरा सुहानो।
पांवपोस, पैजनियां, पोरा, ईसुर कौन बखानो।

ईसुरी ने केवल रजऊ के प्रेम तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने राधा-कृष्ण से लेकर अपने लोक सौंदर्य और देशभक्तों के शौर्य को भी अपनी फागों में जहाँ एक ओर गाया वहीं दूसरी ओर उन्होंने इस संसार की निस्सारता पर भी कबीराना ठाठ के साथ फागें कहीं। नीम के पेड़ की छाया का सुंदर वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

सीतल एई नीम की छइयाँ, घामौं व्यापत नइयाँ।
धरती नौं जे छू-छू जावें, है लालौई डरइयाँ।

अर्थात् नीम की छाया बहुत शीतल है। यहाँ धूप नहीं लगती और इसकी हरी-भरी डालियाँ धरती को छू-छू लेती हैं।

ईसुरी वृक्षों के रक्षक हैं। उनकी फागों में पर्यावरण के प्रति चिंता भी है। एक फाग में वे वृक्षों पर कुल्हाड़ी चलानेवालों को कहते हैं कि उन पर क्यों कुल्हाड़ी चलाते हो, वे तो मनुष्यों के पालनकर्ता हैं। उनमें इतनी सामर्थ्य है कि वे काल को भी काट देते हैं। उन्हें भूख से रक्षा के लिए भगवान् ने उपजाया है और वे ऐसे हैं कि मृतप्राय लोगों को तरोताजा कर देते हैं—

इनपे लगे कुलरिया घालन,
भैया मानस पालन!
इन्हें काटबो नईं चइयत तौ, काट देत जो कालन।
ऐसे सख भूख के लाने, लगवा दए नंद लालन।
जो कर देत नई सी 'ईसुर' भरी भराई खालन।

उनकी देशभक्तों के शौर्य को परिभाषित करनेवाली पंक्तियाँ हैं—

जो कोऊ भरत भूम में, सोवै तन तरवारन खोवैं।
भागै नहिं पीठ ना देवैं, घाव सामने लेवैं।

ईसुरी ने राधा और कृष्ण को लेकर अद्भुत फागें कहीं। राधा के सौंदर्य की उन्होंने अछूती उपमा दी। ईसुरी ने कहा—

कै निरमल दरपन के ऊपर, सुमन धरौ अरसी कौ।
ईसुर कत मुख लखत स्यामरौ, राधा चंद्रमुखी कौ॥

अर्थात्, कृष्ण चंद्रमुखी राधा के मुख को निहारते हैं, जो ऐसा है जैसे स्वच्छ दर्पण के ऊपर अलसी का फूल रख दिया हो।

एक और फाग में उन्होंने राधा के कानों के तरकुलों की शोभा का वर्णन करते हुए कहा—

कानन डुलें राधिका जी के, लगें तरकुला नीके।
आनंदकंद चंद के ऊपर दो तारागण झीकें।
परतन पसर परत गालन पै, तरें झूमका जीके।
जिनके घर सें जौ पैराव, और जनन नें सीके।
श्याम स्नेह ईसुरी देखत, ब्रजवासी बस्ती के॥

अर्थात् राधा के कानों के तरकुलों की शोभा देखते ही बनती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे आनंददायक चंद्रमा के समान मुख पर दो सितारे चमक रहे हों। जब वे लेटती हैं तो इन तरकुलों में लगे झुमके राधा के गालों पर पसर जाते हैं और यह पहनावा उन्हीं के घर से दूसरों ने सीखा है।

उन्होंने राधा-कृष्ण पर केंद्रित इन फागों में देशज प्रतीकों का उपयोग किया। उनकी एक फाग है—

बन में बाज रही बाँसुरिया, मो लये गुवाल मथुरिया।
फैलो फिरत सबद बंसी कौ, ज्यों जादू की पुरिया॥
मैं बरजी, बरजी ना मानी, बैरन बाँस छिपुरिया।
कुमला जात वृषभान लाड़ली, जैसे कमल पँखुरियाँ।
'ईसुर' ऐसे तड़क जात हैं, ज्यों काँच की चुरियाँ॥

अर्थात् राधा कहती हैं—वन में श्रीकृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर संपूर्ण ब्रज मंडल के गोप और गोपी मुग्ध हो गए हैं। इस बाँसुरी के स्वर जादू की तरह सम्मोहित करते हुए चारों ओर फैल गए हैं। मैंने बहुत रोका लेकिन बैरी बनी उस बाँस की छिपनी ने मेरा कहना नहीं माना। ईसुरी कहते हैं कि वृषभानु की लाड़ली राधा बाँसुरी के इन स्वरों को सुनकर कमल की पँखुरियों की तरह कुम्हला जाती है अर्थात् अपनी सुध-बुध खो बैठती है तथा काँच की चूड़ी जैसी चटककर गिर पड़ती है।

एक अद्‌भत फाग है, जिसमें अनुप्रास की छटा तो है ही साथ ही गोपी का गोविंद भाव मानो अपनी पराकाष्ठा को छूता है—

गोदो गुदनन की गुदनारी
सबरी देय हमारी
गालन पै गोविंद गोद दो, कर में कुंजबिहारी
बँइयन भौत भरो बनमाली, गरें धरौ गिरधारी
आनंद कंद लेन अँखिया में, माँग में लिखौ मुरारी
करया गोद कहइया 'ईसुर' गोद मुखन मनहारी

अर्थात् अरे गुदना गोदनेवालो, हमारी सारी देह पर गुदने गोद दो। हमारे गालों पर गोविंद, करों में कुंजबिहारी, बाँहों पर बनमाली, गले में गिरधारी, अँगिया के हिस्से में आनंदकंद, माँग में मुरारी, कमर में कन्हैया और देखो ईसुरी मुख पर मनमोहन गोद दो।

ईसुरी ने अपनी फागों में वसंत, ग्रीष्म और वर्षा का भी यथार्थपरक चित्रण किया है। वसंत का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

अब ऋतु आई बसंत बहारन, पान फूल बन कारन।
बागन बनन बंगलन बेलन, बीथी बगर बजारन।
हारु हद्‌द पहारन पारु, धवल धाम जल धारन।
तपसी कुटी कंदरन माँही, गई बैराग बिगारन॥

अर्थात् ऋतुराज वसंत की बहार आ गई है। पत्ते, फूल, फल, शाखाएँ खुशी से झूम रहे हैं। बागों, जंगलों, अट्‌टालिकाओं, रास्तों, बाजारों, खेतों, पर्वतों, सरोवरों में इसने अपना साम्राज्य फैला लिया है और इसने तपस्वियों की कुटियों और कंदराओं में जाकर उनके वैराग्य को भंग कर दिया है।

एक और फाग में ईसुरी कहते हैं—

जे-जी जान बाग में बोलें, सबद कोकिला कोलें।
सुन के संत भए उनमादे, भसम अंग में घोलें।

अर्थात् वसंत ऋतु आ गई है। कोयल का कुहू-कुहू शब्द बगीचों में गूँजने लगा है। कूक प्राणों को कुरेद रही है। इसे सुनकर भस्म रचानेवाले संतों में भी उन्माद जाग गया है।

ईसुरी ने अपने जीवन के उत्तरकाल में विरक्ति की फागें कहीं। ईसुरी ने देह की निस्सारता पर कहा—

बखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई-फूस चारे की।
बे-बंदेज, बड़ी बे-बाड़ा, जई में दस-द्वारे की।
एकऊ नई किवार-किवरियाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चांय निकारौ जिदना, हमें कौन वारे की।

अर्थात् यह देह प्राण प्यारे द्वारा किराए पर दिया गया घर है। इसमें कच्ची मिट्‌टी की दीवारें उठी हैं। घास-फूस के चारे से जो आच्छादित है, अर्थात् यह पार्थिव शरीर ऐसा है, जिसके ऊपर केश हैं। इसमें दस दरवाजे हैं अर्थात् दस इंद्रियाँ हैं, जिनमें कोई ताला-चाबी नहीं है। इसमें कोई चहारदीवारी नहीं है। यह परिसर विस्तृत और अव्यवस्थित है। इसमें एक भी किवाड़-किवड़िया नहीं है। इसलिए जब चाहे हमें इससे निकाल दो। हमें कोई लाभ या हानि नहीं होनेवाली।

एक और अद्‌भुत फाग है, जिसमें माँ अपनी बेटी से कहती है कि एक दिन अच्छा लगे या बुरा, सभी को ससुराल जाना पड़ता है। जब तुम्हारे पति बिदा कराने आएँगे तो चाहे जितना प्रलोभन उन्हें दिया जाए, वे मानेंगे नहीं। बिदा के दिन पति के साथ जाना ही पड़ेगा—

इक दिन हुअे सबई कौ गौनों होने उर अनहोनो।
जानें परै सासुरे सब खाँ, बुरौ लगै चय नोनों।
आँयें लुवौआ बे ना मानें, चाय बता दो सोनों।
ईसुर विदा हुए जा जिदना पिय के संग चलौनों।

एक फाग में वे संसार के यथार्थ को दरशाते हैं और शिक्षा देते हैं—

तन को कौन भरोसो करने, आखिर इक दिन मरने।
जौ संसार ओस कौ बूँदा, पवन लगे सें ढुरने।
जौ लो जीकी जियन जोरिया, जी खाँ जैं दिन भरने।
ईसुर ई संसार आन कें, बुरे काम खाँ डरने॥

अर्थात् इस शरीर का क्या भरोसा? अंत में एक दिन इसे तो मृत होना ही है। यह संसार ओस की बूँद की तरह है, जो थोड़ी सी हवा चलने पर ढुलक जाती है। जब तक जिसकी जितनी साँसें शेष हैं, उसको उतना समय इस संसार में काटना है। इसलिए इस संसार में आकर बुरे कर्मों से दूर रहो।

ईसुरी की इन फागों से गुजरने के बाद लगता है कि वे कितने मौलिक कवि थे। जीवन का कोई पक्ष उनके काव्य से अछूता नहीं रहा। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उन्हें ऐसी दिव्य देन प्राप्त थी, जिसने उन्हें अक्षर के संसार में अमर कर दिया और वे इस देन को देनेवाली देवी को कभी भूले नहीं, उनसे यही प्रार्थना करते रहे कि वे उनकी खबर लेती रहें, उनकी भूली कड़ियों को मिलाती रहें। बुंदेलखंड के लोक की यह गवाही है कि इस देवी ने सदैव अपने ईसुरी की खबर ली और उनकी कड़ियों को कभी टूटने नहीं दिया, ईसुरी ने प्रार्थना की—

मोरी खबर सारदा लइये,
कंठ विराजी रइये।
मैं अपढ़ा अच्छर ना जानो
भूली कड़ी मिलइए॥

सा.अ.
८५, इंदिरा गांधी नगर,
आर.टी.ओ. कार्यालय के पास,
केसरबाग रोड, इंदौर-९ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५०९२८९३

गैराज

● राकेश 'चक्र'

वानप्रस्थ आश्रम की दिनचर्या में जगदीश बाबू ढल गए थे। उन्हें आश्रम में रहते अभी दो ही माह हुए थे। प्रातः चार बजे आश्रम की घंटी बोलती, तभी वे तथा अन्य वानप्रस्थी जाग जाते। आश्रम में चहल-पहल शुरू हो जाती। ऋतु के अनुसार वे ऊषापान करते। बाद में यज्ञशाला में पहुँच जाते। वहाँ यज्ञ व प्रवचन सुनने के बाद वे जलपान के लिए अपने कक्ष में आ जाते तथा अपनी इच्छानुसार व्यंजन बनाते। आराम से गुजारे लायक उन्हें पेंशन मिल रही थी। पत्नी की मृत्यु के बाद जगदीश बाबू अपने को तन्हा महसूस करन लगे थे। पत्नी की यादों की सुखद स्मृतियाँ मानस-पटल पर प्रतिदिन ही बनती-बिगड़ती रहतीं। कितनी आज्ञाकारिणी पत्नी थी, स्वयं कष्ट में रहकर भी कभी चेहरे पर शिकन न आने देती थी···। न कभी कपड़े धोने की आवश्यकता पड़ी और न ही इस्तरी आदि करने की···एक आवाज देने पर ही चाशनी की तरह खिंची चली आती थी। यह सब सोचते-सोचते वे अकसर बैरागी से हो जाते, लेकिन फिर पुत्र और पुत्री का मोह उन सुखद स्मृतियों को विस्मृत करता रहता।

अवकाश-प्राप्ति के बाद जो उन्होंने सुनहरे स्वप्न सँजोए थे, वे सब मरे हुए पक्षी के पंखों की तरह पूरी तरह बिखर गए थे, लेकिन नए स्वप्न बनते रहते थे, ऐसा प्रतीत होता है कि आखिर तक ही स्वप्नों का बनना-बिगड़ना जारी रहता है। अब तो पूरे आश्रम के लोग ही उनके बंधु-बांधव बन गए थे, लेकिन जब कभी पुत्र की चर्चा चलती तो उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगते थे।

एक दिन आश्रम में आचार्य महावीरजी का प्रवचन था। धारा-प्रवाह प्रवचनों की समाप्ति के बाद उनकी चर्चा जगदीश बाबू से होने लगी। आचार्यजी से उन्होंने अपने शंका समाधान किए। आचार्यजी ने उनसे पूछा, ''आपको यहाँ आए हुए कितना समय हो गया है?''

''आचार्यजी, दो माह हो गए हैं।''

''जगदीश बाबू, आपके परिवार में कौन-कौन है?''

''आचार्यजी, परिवार में अब तो मैं अकेला हूँ। पत्नी स्वर्ग सिधार गई है तथा पुत्री का विवाह हो गया है और पुत्र अपने परिवार के साथ दिल्ली में रहता है।'' इतना कहते-कहते उनकी आँखों से झरना बहने लगा। महावीरजी ने सांत्वना देकर उनकी पीठ थपथपाई और उन्हें अपने पास बैठाया।

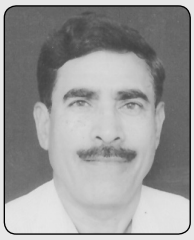

सुपरिचित लेखक। विविध विधाओं में लगभग सौ पुस्तकें प्रकाशित। संस्कृति मंत्रालय के 'बाल साहित्यश्री सम्मान' सहित अन्य कई सम्मानों से सम्मानित। यू.पी. पुलिस के इंटेलिजेंस विभाग से सेवानिवृत्त। संप्रति एक्यूप्रेशर की निशुल्क चिकित्सा सेवा में रत।

तब जगदीश बाबू आचार्यजी को अपनी व्यथा-कथा सुनाते रहे—

''मैं सरकारी नौकरी में कार्यरत था। घर में शांति और आनंद से सबकुछ ठीक चल रहा था। पुत्री का विवाह बड़ी धूमधाम से कर दिया था, वह अपने ससुराल में चली गई। पुत्र को मैंने खूब पढ़ाया-लिखाया था, उसकी मैंने हर सुख-सुविधा का ध्यान रखा। अकेला पुत्र होने के कारण उसकी माँ और मेरा प्यार उसी पर रहा था, क्योंकि वह पुत्री के जन्म के आठ वर्ष बाद हुआ था। पुत्री के ससुराल जाने के बाद तो पुत्र रमेश मेरी आँखों का तारा हो गया था। रमेश की माँ थोड़ी देर से जगती थी, इसलिए रमेश को भी देर से जगने की आदत पड़ गई थी। वैसे वह मेरा पूरा-पूरा ध्यान रखती थी, बस उसे सुबह जगने के नाम पर बहुत चिढ़ थी, इसी कारण वह मेरे साथ बैठकर यज्ञ भी न कर पाती थी। इसी प्रमाद और आलस्य के कारण पत्नी को बाद में कई बीमारियों ने घेर लिया था। वह डॉक्टरों से इलाज कराते-कराते मेरे अवकाश-प्राप्ति के दो वर्ष पूर्व ही भगवान् को प्यारी हो गई।

''मैंने दो कमरों का मकान उन्हीं के रहते बना लिया था। मैं काफी समय तक किराए के मकान में भी रहा था। मकान में दो बड़े कमरों के अलावा एक स्टोर, रसोईघर, स्नानगृह, शौचालय और बाहर सड़क की ओर कार की एक गैराज भी थी। मेरे सपने थे कि पुत्र की जब अच्छी नौकरी लग जाएगी, तब अपने पड़ोसी रामलाल के लड़के की तरह मैं मारुति कार खरीदवाऊँगा और कभी-कभी दिल्ली की सड़कों पर पुत्र के साथ सैर-सपाटे करने को जाया करूँगा। काश! कितने सुखद पल होते, यदि ऐसा होता!''

महावीरजी समझाते हुए बोले, ''भाई जगदीश, हम मन-मस्तिष्क पर माया का परदा डाल लेते हैं। मोह और लालसावश हम रंगीन स्वप्न सँजो लेते हैं, बस उन्हीं के कारण तो हमें अधिक मानसिक कष्ट उठाने

पड़ते हैं। हमारे मन-मस्तिष्क पर जितना अधिक माया का परदा पड़ा होता है, भौतिक सुख न मिलने के कारण हम उतना ही दु:खी होते रहते हैं। इसलिए हमें इच्छाओं को अपनी चादर के अनुसार सीमित रखना चाहिए।''

''आप सही कह रहे हैं आचार्यजी, लेकिन हम जैसे आम आदमी इन बातों को कहाँ समझ पाते हैं जीवनभर, बल्कि अपनी इच्छाओं को बढ़ाते ही जाते हैं, चाहे उनके कारण कितने ही दु:ख उठाने पड़ें। दूसरा मोह भी हमसे साँप की केंचुली सा चिपका रहता है। रमेश की नौकरी जब दिल्ली विकास प्राधिकरण में लग गई, तब मुझे बहुत खुशी हुई थी। नौकरी लगते ही रमेश की शादी के रिश्ते आने लगे थे।

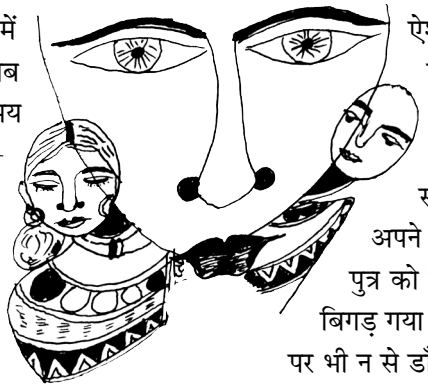

मैंने पुत्र रमेश से सलाह करके उसकी शादी दिल्ली में ही स्थित पश्चिम विहार से कर दी थी। मेरे घर में जब सुंदर सी बहू आई थी, तो मुझे लगा था कि अब समय से भोजन आदि मिल जाया करेगा तथा कपड़े धुले-धुलाए मिल जाया करेंगे और साथ में पुत्रवधु से बेटी जैसा प्यार भी, क्योंकि जब से पत्नी का स्वर्गवास हुआ था तब से ही मेरी जिंदगी में कुछ ज्यादा ही सूनापन आ गया था तथा पुत्र की जिम्मेदारी भी पूरी तरह से मेरे ऊपर आ गई थी।

''पुत्र की शादी करने के बाद मैं भी रिटायर हो गया था और प्राय: घर में ही अपनी दिनचर्या को उपयोगी बनाए रखता। दो-तीन महीने तो पुत्रवधु ने प्रात:काल जगने पर एतराज न किया, लेकिन जब उसने देखा कि अब वह रमेश के कानों में चाबी भरने में पूरी तरह सक्षम हो गई है, तो उसने एक दिन कह ही दिया, 'पापाजी, आपके सुबह-सुबह जगने से मेरी और रमेश की नींद खराब होती है। हम लोग रात में देर से खाना खाते हैं, टी.वी. देखते हैं, तो सुबह देर तक सोने का मन करता है।' इस बात में विनम्रता नहीं थी और यह बात अधिकारपूर्वक कही गई थी, इसलिए मैं खून का घूँट पीकर रह गया था और दिनचर्या भी उसी तरह ढालने का प्रयास करने लगा था।

''एक वर्ष के अंदर ही बहू के एक पुत्र हो गया था, तब मुझे बहुत खुशी हुई थी और सोचा था कि अब तो मैं उससे मीठी-मीठी बातें कर हँसा करूँगा और खेला करूँगा तो मेरा मन लगा रहेगा, क्योंकि न तो पुत्र को मुझसे बातें करने की फुरसत थी और न ही बहू को। मेरा सारा दिन बहू के काम में हाथ बँटाने में ही निकल जाता था, तब जाकर मुझे रोटी खाने को मिलती थी।

''धीरे-धीरे पौत्र भी एक वर्ष का हो गया था। उसे मैं बहुत प्यार करता था। एक दिन बहू बोली, 'पापाजी, अब जगह कम पड़ने लगी है, आप गैराज में शिफ्ट कर लीजिए, मेहमानों को उठने-बैठाने में बहुत दिक्कत हो रही है।'

''मैंने सोचा कि मकान छोटा है, बहू-बेटे को सुख देना ही मेरा धर्म है, तो मैंने खुशी-खुशी गैराज में ही रहना शुरू कर दिया था, क्योंकि पुत्र और पौत्र का मोह मेरे जीवन में फेवीकॉल जैसा चिपक गया था। मैं उनके बिना जीने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, इसलिए सबकुछ सहकर भी किसी तरह जीवनयापन करता रहा।

''पौत्र यक्ष अठखेलियाँ करता-करता बड़ा हो गया था। मैं उसके साथ कभी-कभी खेलता रहता, उसे अच्छी-अच्छी बातें और कहानियाँ सुनाता रहता। एक दिन बहू ने ये बातें सुन लीं और बोली, 'क्या पापाजी, इसे स्वामी दयानंद या महात्मा गांधी बनाएँगे, इसे मुझसे दूर करके छोड़ेंगे, मैं इसे गोविंदा की तरह डांस करना सिखाऊँगी, यह मेरे साथ डांस किया करेगा। आप इसे ऐसी-वैसी बातें न सिखाया करें, मुझे इंडियन कल्चर अच्छा नहीं लगता है, मुझे तो अंग्रेजी कल्चर अच्छा लगता है, जब जी चाहो, सोओ-जागो, खाओ-पीओ, नाचो-गाओ और ऐश करो।'' मैं यह सब सुनकर खून का घूँट पीकर रह गया था।

''पौत्र स्कूल जाने लगा था और जब तक वह स्कूल से वापस नहीं आता था, तब तक मैं सड़क पर आँखें गड़ाए इंतजार करता रहता और अपने पुत्र का बचपन स्मरण हो जाता कि मैं कैसे अपने पुत्र को लाड़-दुलार करता था और वह लाड़-प्यार में ही बिगड़ गया था। उसकी माँ तो घर का सामान तोड़फोड़ करने पर भी न से डाँटती थी, न समझाती थी, पता नहीं पुत्र के मोह में किस मिट्टी की बन जाती थी।

''एक दिन पौत्र यक्ष मेरे पास भागा-भागा हँसता हुआ आया। मैं उस दिन बड़ा खुश हुआ कि आज तो बहू ने इसे मेरे पास भेज दिया है, लेकिन आते ही बोला था, 'दादा-दादा मेरी मम्मी कह रही थी कि मैं तुझे जेबखर्च का रोज एक रुपए के बजाय पाँच रुपए का नोट दिया करूँगी, जब तेरे दादा इस गैराज को खाली कर देंगे''' ।' मैंने पूछा था कि तुम्हारी मम्मी खाली गैराज का क्या करेगी, तब वह बोली थीं कि 'अब इसमें हमारी कार खड़ी हुआ करेगी, कर दो ना दादाजी, गैराज खाली। प्लीज, जल्दी कर दो खाली। आप तो बहुत अच्छे दादा हैं।'''

अपने लाड़ले पौत्र की निश्छलता भरी बातें सुनकर मैं हतप्रभ रह गया।

उसी दिन मैंने सोच लिया था कि मैं अब इस घर के लिए कूड़ा हो गया हूँ, बूढ़ा हो गया हूँ। अब मेरी इस घर को बिल्कुल जरूरत नहीं है, हाथों से बनाया और सजाया हुआ घर अब मुझे नर्क की तरह दिखने लगा और मैं पागल कुत्ते की तरह काटने को दौड़ रहा था। मेरी आँखों से अश्रुधारा बहे जा रही थी। आनन-फानन में मैंने कुछ कपड़े और किताबें आदि तथा जरूरत का सामान साथ लिया और चल दिया था आर्यसमाज शाहदरा। मैं पागल और विक्षिप्त सा हो गया था। आर्यसमाज का मुख्य दरवाजा बंद था। अपना सिर पटक रहा था। कई घंटे बाद भवन प्रबंधक को पता चला कि कोई व्यक्ति पागल सा हो गया है और वह यहाँ रहना चाहता है, तो वहाँ भी प्रबंधक ने दो दिन से ज्यादा नहीं टिकने दिया, जबकि वहाँ रहकर मैं समाज की सेवा भी कर सकता था, लेकिन स्थानीय पदाधिकारी के हित आड़े आ रहे थे। फिर मैं पूरी दिल्ली

की आर्यसमाजों में दो-दो, चार-चार दिन चक्कर काटता रहा, उन्हें यह भी पता लग गया था कि यह पूर्णत: आर्यसमाजी है, लेकिन किसी ने भी स्थायी रूप से मुझे नहीं टिकने दिया। शायद वहाँ भी सभी के अपने-अपने हित आड़े आ रहे थे। सब जगह ही कथनी-करनी को बालू के ढेर की तरह ढहता देखता रहा, क्या कर सकता था उनका? स्वामी दयानंद के विचार और सारे ग्रंथ आर्यसमाजियों के लिए दिखावा बनकर रह गए थे। जब पुत्र ही न हुआ तो अपने समाजियों से भी मेरा मोह भंग हो गया था। एक सज्जन ने मुझे बताया कि स्थायी रूप से रहना है तो आप वानप्रस्थ आश्रम हरिद्वार में चले जाइए।

''मुझे पेंशन मिल रही ही थी और कुछ रुपया मेरा बैंक में जमा था, सो मैंने फैसला कर लिया कि अब हरिद्वार में ही रहना है।''

यह सब कहते-कहते जगदीशजी बच्चों की तरह सुबक-सुबककर रो रहे थे, उन्हें महावीरजी अपने गले से लगाकर बहुत देर तक सांत्वना देते रहे और ढाढ़स बँधाते हुए बोले, ''जगदीश बाबू! आपको ईश्वर ने सही समय और सही स्थान पर भेज दिया है, अब आप यहाँ रहकर ईश्वर का भजन और समाज के लिए सबकुछ कर सकते हैं, यही आपके मन को शांति प्रदान करेगा तथा यही मोक्ष भी दिलाएगा।''

९०-बी, शिवपुरी, मुरादाबाद-२४४००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४५६२०१८५७

लघुकथा

शुक्रिया-शुक्रिया

● सत्य शुचि

उससे मेरा गहरा अपनापा था। अत: पिछली बार की तरह इस बार भी वह मेरे यहाँ शादी-समारोह में शरीक हुआ था और उस रोज प्रवेश-द्वार पर मैं आवभगती में व्यस्त था कि वह भी खाने के बाद मेरे समीप ही खड़ा हो गया। अब वह और मैं दोनों पास-पास ही थे।

''...खाना बहुत लजीज-स्वादिष्ट था!'' उसके हाथ में लिफाफा था और वह लिफाफा मुझे सौंपने लगा, ''और बुलाते रहिएगा...!'' कहता-सा वह गेट की तरफ बढ़ने लगा।

उन किंचित् क्षणों में लिफाफे को भाँपकर मैंने झट से उनको आवाज लगाई, ''डॉक्टर साहब! जरा रुकिए, यह अपना लिफाफा सँभालो...बस, वर-वधू को आपका आशीर्वाद ही...''

''क्यों, ऐसा क्या हो गया, भई!'' वे एकदम से घूमे।

''क्या लिफाफा देना जरूरी था!'' फौरन ही मैं उनको लिफाफा वापस देना चाहता था। मगर अभी जाने कौन सी अंदरूनी शक्ति या दवाब से मैं बोल पड़ा, ''यार! पिछली शादी में भी आपने ऐसा ही लिफाफा मुझको दिया था...''

''तो इसमें मैंने क्या गलत किया था? लिफाफा जैसा लिफाफा ही तो था!'' नाटकीय अंदाज में उसने झेंप मिटाने की पुरजोर कोशिश की।

''दोनों लिफाफे आपको मुबारक! और फिर मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप एक डॉक्टर हैं, लेकिन आपकी ये हरकतें इतनी गई-गुजरी क्यों हैं?'' और मैंने दोनों लिफाफे उनके हाथों में जबरदस्ती थमा दिए थे।

सहसा अनमने से वे गेट से बाहर आ चुके थे। और शायद उन्होंने सोचा कि उनके ये खाली लिफाफे कहीं और वे चला लेंगे। आखिर लिफाफों का बिगड़ा क्या है!

मफलर का सौंदर्य

चलते समय उसे जाने-अनजाने में बाल बिगड़ने का डर सताने लगा। वह अभी खुले सिर ही था; परंतु अचानक ही वह सर्दी की चपेट में आ गया और अल्पकाल में वह खाँसी-जुकाम की जद में आ चुका था।

न चाहते हुए भी वह तत्काल अस्पताल पहुँचा, लेकिन डॉक्टर के प्रिस्क्रिप्शन देखकर उसका माथा ठनका। कदाचित् तीन दिनों के दवा-कोर्स से उसकी तबीयत रुँध गई।

चुनाँचे घर में मफलर था। वह जान-बूझकर उस वक्त मफलर से कटा-कटा रहा था। उसकी सोच में बगैर रिस्क के जिंदगी में मजा नहीं आता। और वह मायूस हो चला था। ''तीन दिन...!'' वह कमरे में चीखा-चिल्लाया, ''कैसे गुजरेंगे उसके ये दिन...काश! सर्दी के मिजाज के अनुकूल खुद को रख पाता तो मेरी यह रुटीन लाइफ गड़बड़ाती नहीं।''

अंत-पंत, उसकी झूठी शानपत ही उसके लिए एक आफत बनकर आई है!

मगर अब...उसे भीतर-ही-भीतर जरा सीख सी मिली कि जीवन में किसी भी छोटी-बड़ी वस्तु-चीज को कभी भी हलके में नहीं लेना चाहिए, गोया कि उसका मफलर!

यक-ब-यक मफलर के खयाल भर से उसके आँसू निकल गए और पलभर में ही झट से मफलर से सिर-कानों को कसकर ढकते-ओढ़ते उसने थोड़ी राहत अनुभव की।

साकेत नगर
ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४१३६८५८२०

प्रभाकर माचवे : एक अप्रतिम हिंदीतर हिंदी लेखक

● ब्रजेंद्र त्रिपाठी

प्रख्यात रचनाकार प्रभाकर माचवे का जन्मशताब्दी वर्ष बीत चुका है। उनका जन्म २६ दिसंबर, १९१७ को एक मराठी परिवार में ग्वालियर में हुआ। वे महाराष्ट्र में कभी नहीं रहे। तीन पीढ़ी पहले इनके पूर्वज महाराष्ट्र से आकर मध्य प्रदेश में बस गए थे। माचवेजी के पितामह किसी मुसलमान जमींदार के यहाँ मुलाजिम थे। पिता बलवंत विट्ठल माचवे रेलवे में काम करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्त होने के बाद वे ग्वालियर रियासत में पोस्ट मास्टर बन गए।

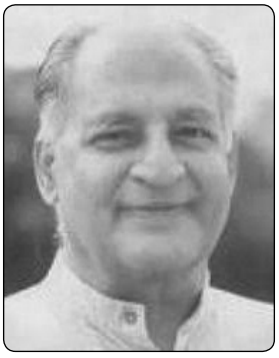

(२६.१२.१९१७—१७.६.१९९१)

प्रभाकर माचवे अपने माता-पिता की चौदहवीं और आखिरी संतान थे। इनकी माँ जबलपुर से थीं। वे पढ़ी-लिखी न थीं, लेकिन धार्मिक स्वभाव की थीं। पिता क्रोधी स्वभाव के थे, मारते-पीटते भी थे। वे बच्चों को सवेरे उठाकर व्यायाम करवाते और संस्कृत पढ़ाते थे। पिता के कड़े स्वभाव के चलते प्रभाकर अपनी माँ के अधिक निकट थे। वे उन्हें धार्मिक ग्रंथ पढ़कर सुनाते थे, जिनमें तुकाराम, ज्ञानेश्वर, रामदास आदि की रचनाएँ शामिल थीं।

माचवेजी की आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। उन्होंने रतलाम के दरबार हाई स्कूल में पाँचवीं कक्षा में दाखिला लिया, जहाँ बड़े भाई काशीनाथजी गणित के अध्यापक थे। पिता की मृत्यु जब वे आठ वर्ष के थे, तभी हो गई थी। १९३० में माचवेजी ने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। चित्रकला में उनकी बचपन से ही रुचि थी। रतलाम में रहते हुए उन्होंने कई भाषाएँ भी सीखीं।

उन्होंने क्रिश्चियन कॉलेज, इंदौर से स्नातक किया। वहाँ इंदौर प्रार्थना समाज में कई धर्मों का अध्ययन किया। १९३६ में उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा से 'साहित्य रत्न' की उपाधि प्राप्त की। आगरा कॉलेज से उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९५८ में उन्होंने 'हिंदी-मराठी निर्गुण संत काव्य' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. किया।

इंदौर में रहते हुए सन् १९३७ में राष्ट्रीय मजदूर संघ इंदौर के मंत्री पद पर उनकी नियुक्ति हुई। वहाँ उन्हें चालीस रुपए प्रतिमाह वेतन के रूप में मिलते थे। यहाँ उन्हें मजदूरों के मध्य काम करने का अवसर मिला। सन् १९३९ में वे माधव कॉलेज में अंग्रेजी और दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में १४०/- प्रतिमाह के वेतन पर नियुक्त हुए। सन् १९४८ में उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और आकाशवाणी नागपुर में काम करना शुरू किया। आकाशवाणी नागपुर, इलाहाबाद, विदेश प्रसार सेवा में छह वर्ष तक काम करने के बाद त्याग-पत्र दे दिया। १९५४ में साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली में सहायक सचिव के पद पर नियुक्ति हुई। १९५९-६१ तक अमेरिका के दो विश्वविद्यालयों—विसकांसिन तथा कैलिफोर्निया में अतिथि प्राध्यापक के रूप में हिंदी, भारतीय साहित्य और गांधी दर्शन का अध्यापन किया। १९६४-६६ तक संघ लोक सेवा आयोग में विशेष भाषाधिकारी के रूप में कार्य किया। १९७१-७५ तक साहित्य अकादेमी के सचिव रहे। १९७६-७७ में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला में मानद फेलो रहे। इस बीच कई विश्वविद्यालयों और संस्थानों में अतिथि प्राध्यापक रहे। १९७९-८५ तक भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता में निदेशक रहे। १९८८ में 'चौथा संसार' (इंदौर) के संस्थापक संपादक बने। १७ जून, १९९१ को इंदौर में हृदयाघात से देहावसान हो गया।

माचवेजी में बचपन से ही साहित्य-संस्कार का बीज पड़ गया था। माँ बचपन से ही उनसे धार्मिक ग्रंथ, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, रामदास, श्रीधर आदि की रचनाएँ सुना करती थीं। बचपन में ही वे तुकबंदियाँ करने लगे थे। यह संस्कार क्रमशः विकसित होता गया। मात्र सत्रह वर्ष की वय में उनकी पहली कविता १९३४ में माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर' में छपी। तब वे बी.ए. के छात्र थे। सन् १९३५ में प्रेमचंद ने 'हंस' में उनकी पहली कहानी प्रकाशित की। इसी तरह निराला द्वारा १९३६ में 'सुधा' में उनका पहला लेख छापा। १९३८ में अज्ञेय ने 'विशाल भारत' में उनकी दो इंप्रेशनिस्ट कविताएँ छापीं। १९३७ में उन्होंने जैनेंद्र के दार्शनिक विचारोंवाले निबंधों का संपादन किया, जो 'जैनेंद्र के विचार' नाम से प्रकाशित हुआ और यह उनकी हिंदी की प्रथम प्रकाशित पुस्तक है।

प्रभाकर माचवे द्वारा लिखित, अनूदित, संपादित पुस्तकों की संख्या सवा सौ से अधिक है। माचवेजी ने हिंदी, मराठी और अंग्रेजी में समान अधिकार से लिखा है। वे बहुभाषाविद् थे। भारत की बहुत सी भाषाएँ वे समझ और बोल लेते थे। अपने इस भाषाज्ञान का उपयोग उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए किया। दक्षिण भारत में हिंदी को आगे बढ़ाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उनकी प्रेरणा से बहुत से हिंदीतरभाषियों

ने हिंदी में लेखन शुरू किया। भारतीय भाषाओं के लगभग सभी बड़े लेखकों से उनका व्यक्तिगत परिचय था। अपनी विदेश यात्राओं के क्रम में उन्होंने वहाँ भी अनेक लेखकों को अपना मित्र और सुहृद बनाया।

माचवेजी ने हिंदी साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा है—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य, आलोचना, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, रिपोर्ताज, सभी में अपनी एक छाप छोड़ी है। उन्होंने शब्दकोश निर्माण का भी कार्य किया। राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित 'शासनकोश' में प्रभाकर माचवे और विद्यानिवास मिश्र उनके सहयोगी रहे। हिंदी में उनके सोलह उपन्यास, सात कविता-संग्रह, इक्कीस समालोचनात्मक कृतियाँ, पाँच व्यंग्य संग्रह, दो यात्रा-वृत्तांत एक-एक कहानी-संग्रह, एकांकी-संग्रह और जीवनी तथा छह बाल कृतियाँ प्रकाशित हैं। अनूदित कृतियों की संख्या उन्नीस और संपादित कृतियाँ सोलह हैं।

मराठी में प्रकाशित कृतियों की संख्या तेरह और अंग्रेजी में प्रकाशित कृतियों की संख्या उन्नीस है। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी रचनाओं की संख्या सैकड़ों में होगी, जिसे संकलित-संपादित कर प्रकाशित करने की आवश्यकता है। माचवेजी की प्रकाशित बहुत सी कृतियाँ अब अनुपलब्ध हैं। आवश्यकता है कि कोई प्रकाशन संस्थान आगे आए और उनकी रचनावली के प्रकाशन की योजना बनाए। निश्चय ही यह श्रमसाध्य कार्य है, लेकिन इसके प्रकाशन से एक महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित होगा और साहित्य का एक पूरा दौर हमारे सामने होगा।

अज्ञेय ने अपने महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक कविता-संकलन 'तारसप्तक' में एक कवि के रूप में प्रभाकर माचवे को शामिल किया। इसमें शामिल अन्य कवि थे—मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय। 'तारसप्तक' १९४३ में कलकत्ता से छपा।

'तारसप्तक' के बाद १९५४ में 'स्वप्नभंग' संग्रह आया, जिसमें सौ सॉनेट संकलित थे। हिंदी में सॉनेट लिखनेवालों के वे पुरोधा थे। हिंदी में सॉनेट लिखने के लिए चर्चित त्रिलोचन शास्त्री ने तब लिखा था—'मैंने इस रचना से सॉनेट शैली के बारे में बहुत कुछ जाना है। १९५९ में 'अनुक्षण' नामक संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें पैंसठ कविताएँ संकलित थीं। इसमें कई तरह की कविताएँ हैं—गीत छोटी कविताएँ, लंबी कविताएँ, सॉनेट, षटपदी और दो गीति रूपक। इन कविताओं का गुण है—समाज से इनकी निकटता और इनकी सहज संप्रेषणीयता। इस संग्रह में माचवेजी की कविता के कई रंग उभरकर सामने आए हैं।'

प्राय: विदेश में लिखी गई कविताओं का संकलन है 'मेपल', जो १९६३ में प्रकाशित हुआ। इसमें १९५९ से १९६१ के बीच लिखी गई कविताएँ शामिल हैं। इसमें उनकी प्रयोगधर्मी कविताएँ हैं, जो विदेश में अलग-अलग जगहों पर लिखी गईं। 'मेपल' के प्रकाशन के एक लंबे अंतराल के बाद १९८८ में उनका खंडकाव्य 'विश्वकर्मा' प्रकाशित हुआ। इसकी समीक्षा करते हुए विष्णु प्रभाकर ने लिखा, ''अपने खंडकाव्य 'विश्वकर्मा' में उन्होंने सूर्य के जिस सौम्य रूप को देखा है, वह आज के यंत्र युग से त्रस्त मनुष्य के लिए संजीवनी के समान है।...''

साहित्य अकादेमी के उपसचिव रहे। 'साहित्य अमृत' एवं भारतीय अनुवाद परिषद् की पत्रिका 'अनुवाद' का संपादन। कविता-संग्रह, निबंध-संग्रह, बाल साहित्य की अनूदित एवं संपादित कृतियाँ प्रकाशित। विश्व हिंदी सहस्राब्दी सम्मान, डॉ. यशवंत परमार पुरस्कार तथा कई अन्य पुरस्कार। संप्रति द्वैमासिक हिंदी पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' के अतिथि संपादक के रूप में कार्य।

माचवेजी ने अपने उपन्यासों में अभिनव प्रयोग किए। उन्होंने मनोविश्लेषणवादी लघु उपन्यास लिखे और अंत:प्रज्ञा प्रकृति और शैली का प्रयोग किया। १९५१ में उनका 'परंतु' उपन्यास आया, फिर 'साँचा' और 'द्वाभा'। इनमें बराबर सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। 'तीस-चालीस-पचास' पीढ़ियों के संघर्ष पर केंद्रित है। 'जो' उपन्यास में अमेरिका में नीग्रो सत्याग्रहियों के आंदोलन का जीवंत वर्णन है और हमारे देश की जातिवादी सोच पर प्रहार है। 'दशभुजा' में हम नारी विमर्श के एक रूप को देख सकते हैं। 'लापता', 'कहाँ-से-कहाँ', 'किसलिए' जैसे उपन्यासों में वे कुछ दार्शनिक सवालों से मुठभेड़ करते हैं। माचवेजी शुरू से प्रयोगधर्मी रहे और आलोचकों की चिंता किए बगैर विचारोत्तेजक लेखन करते रहे।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने माचवेजी की प्रतिनिधि रचनाओं का एक संचयन 'प्रभाकर माचवे : प्रतिनिधि रचनाएँ' संपादित किया था जो १९८४ में प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि 'डॉ. प्रभाकर माचवे देश के ऐसे लेखकों में से हैं, जो हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी जैसी तीन श्रेष्ठ भाषाओं में पिछले पचास वर्षों से रचना करते आ रहे हैं, किंतु हिंदी तथा मराठी में एक ऐसा वर्ग है, जो उन्हें संदेह की दृष्टि से दे खता है और उन्हें साहित्यकार ही मानने को तैयार नहीं हैं। गोयनका का कहना है कि वे नवीनता प्रेमी हैं। शायद इसी कारण उन्होंने कविता, उपन्यास, व्यंग्य सभी में नए-नए प्रयोग किए हैं, चाहे वे सफल हुए हों या असफल। असफल होने के भय से नया प्रयोग करना ही नहीं चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता नहीं है। वे नए नए प्रयोग करते हैं, इस आशा के साथ कि आनेवाला युग उनकी नई संवेदना एवं नए शिल्प को सही संदर्भों में रखकर समझ सकेगा। डॉ. गोयनका के शब्दों में, ''हिंदी साहित्य को समृद्ध करनेवाले ऐसे साहित्यकार के प्रति यदि हम उपेक्षा भाव रखेंगे और उनका तर्कहीन मूल्यांकन करेंगे तो क्या हम कृतघ्न न कहलाएँगे? सीमाएँ सबकी होती हैं, माचवेजी की भी हैं, किंतु उपन्यास, कविता, व्यंग्य तथा आलोचना में उनके योगदान को रेखांकित न करना सरासर बेइनसाफी है।''

मैं उस समय भारती भंडार, इलाहाबाद में साहित्यिक सलाहकार के रूप में कार्यरत था, जहाँ से माचवेजी की दो पुस्तकें प्रकाशनाधीन थीं। एक तो व्यंग्य-संग्रह 'विसंगति' और दूसरा लेखों का संग्रह 'संगति'। विसंगति के हर लेख के साथ छोटे-छोटे रेखाचित्र हैं, जो माचवेजी के

बनाए हुए हैं। मुझे याद है कि वे रेखाचित्र कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों पर बनाकर उन्होंने भेजे थे। कई तो पोस्टकार्ड पर भी। 'विसंगति' की भूमिका में माचवेजी का यह दु:ख झलकता है कि पाठकों ने उनकी रचनाओं को गंभीरता से नहीं लिया, ''(पर) मेरी शिकायत यही है कि अभी तक मेरी रचनाओं को गंभीरता से पढ़नेवाला 'पाठक' ही नहीं मिला।'' फिर अपने चिरपरिचित चुहल और व्यंग्य भरे अंदाज में, ''पाठक नाम के एक हमारे सहपाठी थे, सो तो कभी के रिटायर होकर स्वर्ग भी पहुँच चुके। अब जो बचे हैं, वे (उठा) पाठक ही अधिक हैं या 'कीलोत्पाटी' वानर की जात के पाठक। सुधी पाठक जानते होंगे कि हिंदी शब्द 'ठग' संस्कृत 'ठक' से बना है।''

व्यंग्य के उनके अन्य संग्रह हैं, 'खरगोश के सींग', 'बैरंग', 'तेल की पकोड़ियाँ' और 'खबरनामा'। व्यंग्य जीवन की विसंगतियों से उपजता है। माचवेजी ने इस संदर्भ में बड़ी गंभीर बात कही है–''हमारे जीवन में बड़ी विसंगतियाँ रही हैं। शायद हर एक लेखक के जीवन में होती होंगी। कई उन्हें चुपचाप पी जाते हैं। कुछ 'साहित्यिक सन्निपात' में उन्हें परिणत कर लेते हैं। जब मैं हिंदी साहित्य सम्मेलन के साथ १९४८ में राहुलजी के साथ 'शासन' शब्दकोश बना रहा था, तब शब्दों और अर्थों के साथ जूझते-जूझते ये विसंगतियाँ मन को और मथने लगीं। हम कहते क्या हैं, करते क्या हैं, शायद इसीलिए कहते हैं कि कर कुछ नहीं पाते या इसलिए कर बैठते हैं, चूँकि कह नहीं पाते।''

व्यंग्य के उनके अन्य संग्रह हैं, 'खरगोश के सींग', 'बैरंग', 'तेल की पकोड़ियाँ' और 'खबरनामा'। व्यंग्य जीवन की विसंगतियों से उपजता है। माचवेजी ने इस संदर्भ में बड़ी गंभीर बात कही है—''हमारे जीवन में बड़ी विसंगतियाँ रही हैं। शायद हर एक लेखक के जीवन में होती होगी। कई उन्हें चुपचाप पी जाते हैं। कुछ 'साहित्यिक सन्निपात' में उन्हें परिणत कर लेते हैं। जब मैं हिंदी साहित्य सम्मेलन के साथ १९४८ में राहुलजी के साथ 'शासन' शब्दकोश बना रहा था, तब शब्दों और अर्थों के साथ जूझते-जूझते ये विसंगतियाँ मन को और मथने लगीं। हम कहते क्या हैं, करते क्या हैं, शायद इसीलिए कहते हैं कि कर कुछ नहीं पाते या इसलिए कर बैठते हैं, चूँकि कह नहीं पाते।''

माचवेजी का कार्यक्षेत्र इतना विविध है कि आश्चर्य होता है कि कोई व्यक्ति एक साथ इतने क्षेत्रों में कैसे सक्रिय रह सकता है। उनका एक रूप चित्रकार का भी है। बचपन से ही चित्र बनाने में उनकी रुचि रही है। जब वे क्रिश्चियन कॉलेज, इंदौर में पढ़ते थे, उस समय 'आर्ट स्कूल' के छात्र भी रहे, जहाँ उनके साथ बेंद्रे, एम.एफ. हुसैन और एम.एस. जोशी भी थे। आजीवन उनके हाथों में कलम और कूची रही। बचपन से ही वह पोर्टेट और स्केच रेखाओं, जल और तैल रंगों में बनाते रहे। उन्होंने हजारों रेखाचित्र बनाए होंगे। चित्रकला का प्रशिक्षण उन्होंने इंदौर स्कूल ऑफ आर्ट में देवलालीकरजी से लिया था। शब्दरेखा की भूमिका में उन्होंने लिखा है, ''सन् उन्नीस सौ तीस और चालीस के बीच मैंने एक मालवी किसान (लाल पगड़ी और हरे बैक ग्राउंड वाले) पोर्टेट तैल रंगों में बनाया था। कैनेडियन मिशनरी प्रोफेसर ने उसे खरीदा। वह क्रिश्चियन कॉलेज, इंदौर के स्टाफरूम की दीवार पर वर्षों तक टँगा हुआ था। बाद में वह किसी कबाड़खाने में चला गया।''

इसी प्रकार एक बूढ़े राजपूत का पोर्टेट उन्होंने बनाया था, जिसे उन्होंने यशपाल को भेंट किया था। 'शब्दरेखा' में कुछ बड़े आदमियों, लेखकों, कवियों, कलाकारों, समीक्षकों आदि के हस्ताक्षर सहित चित्र हैं, वह उनके विशाल संग्रह का एक छोटा-सा अंश है। इन रेखाचित्रों के साथ माचवेजी से कुछ इबारत भी लिखी है, इसीलिए वे इन्हें शब्दचित्र कहते हैं। माचवेजी के लेखन के विविध रूपों पर अलग-अलग शोध कार्य की जरूरत है। वे एकांकीकार हैं, यात्रा-वृत्तांत लेखक हैं, संस्मरण और जीवनी-लेखक हैं। आलोचक, निबंधकार और अनुवादक के रूप में हिंदी साहित्य को उनका महत्त्वपूर्ण अवदान है। बच्चों के लिए भी उन्होंने पर्याप्त लेखन किया है। एक बहुभाषाविद् के रूप में हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं के मध्य वे एक दृढ़ सेतु हैं। हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं के मध्य आदान-प्रदान को सुकर बनाने में भी उनकी अहम भूमिका रही।

माचवेजी राहुलजी की तरह बौद्ध दर्शन से प्रभावित रहे। अपने जीवन में वे निस्संग बने रहे। अपनी खिल्ली स्वयं उड़ाई और अपने लेखन को बहुत महत्त्व नहीं दिया। खुद ही उसे थोथा और अर्थहीन कहते रहे। सत्तर वर्ष के होने पर उन्होंने एक कविता लिखी 'अपने मन से', जो इस प्रकार है—

हुए प्रभाकर अब तुम सत्तर
मियाँ दुकान उठा लो अपनी
और समेटो कागज पत्तर।
बहुत अकेले लड़े पुकारा
अँधियारे को भी ललकारा
बहुत अँधेरा सिया सँभाला
तार-तार अब अस्तर।
जंगल में गाते-चिल्लाते
टूटे बहुत बने जो नाते
बहुत बहे ऊबड़-खाबड़ में
पत्थर रहते पत्थर।
नहीं जुटाए चेला-चाँटी
जो कि चलाते गुरु-परिपाटी
दो डग पीछे नीचे होते
एक कदम अग्रिम व वृहत्तर।

माचवेजी को मेरी विनम्र श्रद्धांजलि।

साअ
१०१, अर्श कॉम्प्लेक्स
सेक्टर-अल्फा-१
ग्रेटर नोएडा-२०१३१०
दूरभाष : ०९८९१४८०६०१

विषधर

● रवि किरण सचदेव

कन्हैया लाल आर्य हमारे शहर के प्रसिद्ध दवा विक्रेता थे। उनका लंबा-चौड़ा कारोबार था। उनकी दवाइयाँ पूरे हरियाणा के उन दवा विक्रेताओं द्वारा थोक भाव से खरीदी जाती थीं, जिनके मेडिकल स्टोर थे। वे आर्य समाज के विद्वान् तथा प्रांत स्तर के बड़े पदाधिकारी भी थे। शहर में विशाल जन-समुदाय से उनकी जान-पहचान थी। एक बार उन्होंने अपने घर पर आर्य समाज से संबंधित बहुत बड़े कार्यक्रम का आयोजन किया। उस कार्यक्रम में डॉ. सुभाष चंद्र भी पहुँचे। डॉ. सुभाष चंद्र ने सोनीपत के लड़कियों के हिंदू कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य किया था। तीन वर्ष पूर्व वे सेवानिवृत्त हो चुके थे। यद्यपि वे आर्य समाजी न होकर पौराणिक थे। पौराणिक वे व्यक्ति कहलाते हैं, जिनकी हमारे प्राचीन सनातन धर्म में आस्था होती है। ये लोग मूर्ति-पूजक भी होते हैं। डॉ. सुभाष चंद्र की विद्वत्ता के कारण सभी धर्मावलंबी उनका हृदय से सम्मान करते थे तथा धर्म के प्रति उनका सर्वधर्म समभाव जैसा लचीला रुख होने के कारण उन्हें अपने कार्यक्रमों में आमंत्रित करते रहते थे।

वे अच्छे वक्ता तथा पांडित्य की दृष्टि से अपने विषय के दिनकर थे। एक बार पूना में धर्म से संबंधित किसी विषय पर बोलने के लिए भाषण प्रतियोगिता हुई। राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता थी। उस प्रतियोगिता में डॉ. सुभाष चंद्र सहित पैंसठ विद्वानों ने भाग लिया। डॉ. सुभाष चंद्र ने उस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उस अवसर पर उनकी विद्वत्ता रूपी दुंदुभि इतने तीव्र स्वर से बजी कि उस पर सम्मोहित होकर गुजरात के सुप्रसिद्ध संत तथा रामकथा वाचक मोरारि बापू ने उन्हें अपने एक कार्यक्रम में आमंत्रित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने डॉ. सुभाष चंद्र को सपरिवार हवाई जहाज से आने-जाने का किराया भी भेजा। ऐसे परम समर्थ व्यक्ति को अपने घर में आयोजित कार्यक्रम में जब कन्हैया लाल आर्य ने मंच पर वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किया तो डॉ. सुभाष चंद्र के साथ एक दुर्घटना घटित हो गई। दरअसल डॉ. सुभाष चंद्र मंच पर चढ़कर जैसे ही माईक के सामने पहुँचे, मंच के पास खड़े सोहन लाल नामक बुजुर्ग व्यक्ति ने उनकी ओर देखते हुए चिल्लाकर कहा, ''रुको!''

उस व्यक्ति की आयु लगभग अस्सी वर्ष थी। शहर के मुख्य बाजार में डॉ. सुभाष चंद्र के पिता की दुकान के साथ सोहनलाल की फर्नीचर की दुकान थी। दस वर्ष पूर्व डॉ. सुभाष चंद्र के पिता का स्वर्गवास हो गया था।

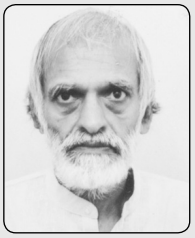

सुपरिचित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'निसर्ग सुंदरी' पर्यावरण पत्रिका का संपादन किया। राधेश्याम चितलांगिया (राष्ट्रधर्म) कहानी पुरस्कार प्राप्त। केंद्रीय विद्यालय से योग शिक्षक के पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन में रत।

डॉ. सुभाष चंद्र ने चौंककर सोहनलाल की ओर देखा। सोहनलाल बिजली की गति से मंच पर पहुँचे तथा माइक के आगे खड़े होकर जोर से चिल्लाए, ''कन्हैया लालजी, ये आपने किस आदमी को मंच पर बुला लिया? ये सुभाष तो साँप है, साँप! थाने में जब पुलिस ने इसकी पिटाई की थी तो यह माफी माँगकर आ गया था। अब सरकार की तरफ से इसे हरियाणा रोडवेज की बसों में सफर करने हेतु पास भी मिल गया। अब ये पेंशन भी लेगा, क्योंकि हमारी सरकार...''

डॉ. सुभाष चंद्र ने उनकी बात का घोर विरोध किया, ''मैंने तो किसी से नहीं कहा था कि बसों में सफर करने के लिए मुझे फ्री बस-पास दो। मेरे मना करने के बावजूद मुझे पास दिलवा दिया गया। मुझे पेंशन भी नहीं चाहिए, क्योंकि मुझे अपने डिपार्टमेंट से पेंशन मिल रही है। फिर मैं दूसरी पेंशन क्यों लूँगा?''

सोहनलाल और अधिक क्रुद्ध होकर बोले, ''बस-बस, ज्यादा ढोंग करने की जरूरत नहीं है। मैं सब समझता हूँ। थाने में दो थप्पड़ क्या खा लिये कि अपने आपको देशभक्त समझने लग गया! अब फ्री बस-पास लेकर सरकार को चूना लगा रहा है। बेशर्म कहीं का! साँप है तू, पक्का साँप है तू!''

कन्हैया लाल आर्य ने सोहनलाल को समझा-बुझाकर शांत किया।

इसके पश्चात् वे डॉ. सुभाष चंद्र से बोले कि वे सोहनलाल जैसे बुजुर्गवार की बातों का बुरा न मानें तथा श्रोताओं को तत्त्वज्ञान के अमृत का पान कराएँ।

विशाल जनसमूह के सामने अपमानित होने के कारण डॉ. सुभाष चंद्र का मन वेदनाग्रस्त हो गया था। इसके बावजूद उन्होंने कन्हैया लाल आर्य जैसे बुजुर्ग विद्वान् की बात का मान रखने हेतु श्रोताओं को अपने ज्ञानामृत से लाभान्वित कराया।

श्रोताओं में आकाशदीप भी बैठे हुए थे। आकाशदीप डॉ. सुभाष

चंद्र के छोटे भाई तथा सेवानिवृत्त शिक्षक थे। अपना व्याख्यान समाप्त कर डॉ. सुभाष चंद्र जैसे ही मंच से नीचे उतरे, आकाशदीप मंच पर जा पहुँचे। तदुपरांत श्रोताओं को संबोधित करते हुए बोले, ''दोस्तो, आपके सामने अभी जो सज्जन ज्ञान की गंगा बहाकर मंच से नीचे उतरे हैं, मैं उनका छोटा भाई हूँ। उनका वक्तव्य होने से पूर्व परम आदरणीय सोहनलालजी जैसे बुजुर्ग ने उन्हें साँप, बेशर्म तथा गंदा आदि कहकर महिमामंडित किया। अब मैं उस घटना का उल्लेख करना चाहूँगा, जिसके कारण श्रीमान सोहनलालजी ने डॉ. सुभाष चंद्र को साँप कहा तथा यह भी कहा कि पुलिस द्वारा उसकी पिटाई हुई थी और वह पुलिस से माफी माँगकर आ गया था।

यह घटना हमारे देश की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा देश में लगाई गई इमरजेंसी अर्थात् आपातकाल से संबंधित है। आज से लगभग पैंतालीस वर्ष पूर्व जब देश में आपातकाल लगा तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता उसके विरोध स्वरूप जेलों में गए। सोहनलालजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता थे। दूसरी ओर, डॉ. सुभाष चंद्र उन दिनों कॉलेज में पढ़ते थे। कॉलेज में अध्ययन करने के दौरान ही वे एक प्रखर वक्ता के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे। उनकी हिंदुत्व तथा आदर्शवाद में आस्था थी। सोहन लालजी इन बातों को जानते थे, इसलिए उन्होंने डॉ. सुभाष चंद्र को आपातकाल का विरोध करने के लिए प्रेरित किया। नवयुवक सुभाष चंद्र ने एक भीड़भाड़ वाले चौराहे पर आपातकाल का जमकर विरोध किया। जैसा कि अपेक्षित था, पुलिस ने सोहन लालजी के साथ सत्रह-अठारह वर्षीय नवयुवक सुभाष चंद्र को भी गिरफ्तार कर लिया।

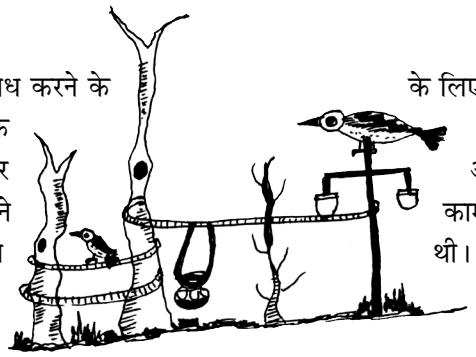

हमारे बाऊजी की दुकान सोहन लालजी की दुकान के साथ मेन बाजार में थी। उन्हें इस बात का पता चला तो वे अपनी दुकान से भागकर सीधे पुलिस चौकी पहुँचे। पुत्रमोह के कारण वहाँ उन्होंने पुलिस के सामने सोहन लालजी पर अपने पुत्र को गुमराह करने का आरोप लगाया। पुलिस ने छात्र सुभाष चंद्र को आठ-दस थप्पड़ मारकर छोड़ दिया। सोहन लालजी को जेल में डाल दिया गया। कुछ महीने पहले मैं बाजार से गुजर रहा था तो मुझे मेरे पुराने परिचित श्रीचंद मिल गए। उनकी सदर बाजार में रेडीमेड कपड़ों की दुकान है। वे शुरू से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं। अत्यंत सज्जन तथा प्रेमी व्यक्ति हैं। मेरे साथ किशोरावस्था में कुरुक्षेत्र में लगनेवाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविरों में भी भाग लेते रहे हैं। वे मुझसे पूछने लगे कि आकाशदीप, तुम इमरजेंसी में जेल में गए थे न? मैंने उनसे कहा कि मैं तो नहीं गया था। हाँ, मेरे बड़े भाई साहब सुभाषजी जरूर गए थे। श्रीचंदजी मुझसे बोले, कि भाई साहब से कह देना कि जो लोग इमरजेंसी के दिनों में जेल में गए थे, उन्हें हमारी सरकार बसों में मुफ्त में यात्रा करने के लिए पास दे रही है।

मैंने इस विषय में भाई साहब को सूचित किया। परंतु सुभाष चंद्रजी ने वह बस-पास लेने से इनकार कर दिया। क्योंकि वे स्वयं को इतने बड़े इनाम का अधिकारी नहीं मानते थे। परंतु उनके शुभचिंतकों द्वारा ऐसा माहौल बना दिया गया कि उन्हें वह बस-पास लेना पड़ा। मैं जानता हूँ कि आपातकाल के दौरान जेल में जानेवालों को मिलनेवाली दस हजार रुपए की पेंशन भी वे नहीं लेंगे। सरकार द्वारा दी जानेवाली यह सहायता राशि अर्थात् पेंशन सोहन लालजी को मुबारक हो। डॉ. सुभाष चंद्र को धन-दौलत से इतना मोह होता तो वे सोहन लालजी की भाँति व्यापारी बनते। ऐसा वे बड़ी आसानी से कर सकते थे, क्योंकि शहर के मुख्य बाजार में हमारे बाऊजी की दुकान थी। और सबसे बड़ी बात यह है कि मार्केट में सबसे पहली दुकान हमारी थी। इसके बावजूद व्यापारी बनने के स्थान पर उन्होंने देवभाषा संस्कृत जैसे चारित्रिक उत्थान करनेवाले विषय में विशेषज्ञता प्राप्त करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। मैं सोहन लालजी से यह पूछना चाहता हूँ कि ''जब नवयुवक सुभाष आपातकाल का विरोध करने के बाद पुलिस का थप्पड़ खा रहा था तो सोहन लालजी का सपूत क्या कर रहा था?''

सोहन लाल अपने स्थान पर खड़े होकर बोले, ''वह मेरी दुकान का काम देख रहा था।''

''क्यों, उसका कोई फर्ज नहीं था देश के लिए? उसे आपने आपातकाल का विरोध करने के लिए क्यों नहीं कहा?''

सोहन लाल भड़क गए, ''ओ मूरख आदमी! वह भी अगर आ जाता तो दुकान का काम कौन देखता? तुम्हारी दुकान भी तो खुली हुई थी। तेरा भाई तो दो थप्पड़ खाकर भाग आया था। हमारी हिम्मत देखो, हम तो कई दिनों तक जेल में सड़ते रहे। बड़ा आया भाई का हिमायती! जेल में सड़े हम और···''

''आप जेल गए थे, इसलिए आपको अपनी तुलना में कम कुर्बानी करनेवाले सुभाष की पगड़ी उछालने का अधिकार मिल गया। जिसने आपकी उम्र से आधी उम्र का होने के बावजूद आपातकाल का विरोध करने का साहस किया। ईमानदारी से बताइए, आपने उस समय या उसके बाद ऐसे कितने आदमियों को फटकारा है, जिन्होंने डॉ. सुभाष चंद्र जितनी हिम्मत भी नहीं की?''

जब काफी देर तक सोहन लाल की ओर से कोई जवाब नहीं आया तो आकाशदीप बोला, ''मैं तो कहता हूँ कि डॉ. सुभाष चंद्र इनसे भी बड़े इनामों के हकदार हैं।''

अब सोहन लाल फिर मुखर हुए, ''क्यों, तेरा भाई है इसलिए?''

''क्यों, आपका वह कुछ नहीं लगता? कम-से-कम वैचारिक दृष्टि से तो वह आपका अपना है। गुरु गोविंद सिंहजी ने कहा था कि चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार।''

''उन्होंने उन सिक्खों के लिए कहा था, जो देश पर कुर्बान होने के लिए तैयार रहते थे।''

''क्यों, आपको सुभाषजी में वह जज्बा दिखाई नहीं दिया?''

''अरे, पागल आदमी···''

''कमाल है, आप तो बात-बात में गालियाँ देते हैं। मैं भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा हुआ हूँ। वहाँ संघ की शाखाओं में नाम के पीछे जी का विशेषण लगाकर सम्मानपूर्वक बोलते हैं, जैसे सुभाषजी, आकाशदीपजी, सोहनलालजी। सम्मान से बोलना तो दूर रहा, उलटा आप गालियों के बिना बात ही नहीं करते। कैसे स्वयंसेवक हैं आप? कहीं आप इस मुगालते में तो नहीं हैं कि आप बड़े हैं, इसलिए आपको समाज ने छोटों की बेइज्जती करने का अधिकार दे दिया है। आपको इस बात की समझ होनी चाहिए कि आदमी उम्र से नहीं, कामों से, मेरा मतलब है कि अच्छे कामों से बड़ा होता है। शंकराचार्य ने तो आठ वर्ष की आयु में···''

''बस-बस, कल का बच्चा मुझे सिखा रहा है। अक्ल धेले की नहीं है। जेल में लाठियाँ हमने खाईं और···''

बात बढ़ती देख कन्हैया लाल आर्य बीच-बचाव करने आए तो आकाशदीप बोले, ''नहीं-नहीं, आर्य साहब, सोहन लालजी तो मेरे पिता के समान पूजनीय हैं। हमारी पंजाबी में यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है—

मा, पिऊ दी गालियाँ,

दुद-घिऊ दी नालियाँ।

इसका मतलब यह है कि माता-पिता की गालियाँ भी दूध-घी की नालियाँ होती हैं। इसलिए उनकी गालियों का बुरा नहीं मानना चाहिए। उन्हें आशीर्वाद समझकर ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि माता-पिता के मन में अपने बच्चों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं होती। वे हमारे भले के लिए हमें गालियाँ देते हैं, ताकि हम भविष्य में गलती न करें। किंतु माफी चाहूँगा, मुझे सोहन लालजी द्वारा सुभाषजी को दी गई गालियों से वह अमृत बरसता हुआ दिखाई नहीं दिया, अपितु इसके स्थान पर उनके हृदय की ईर्ष्या, डाह तथा दुर्भावना ने अपना आसुरी स्वरूप प्रकट किया। उनका अहंकार विकृत रूप में सामने आया। ईर्ष्या और अहंकार रूपी विषधरों से आदमी का अपना नुकसान होता है।

चूँकि मैं सोहन लालजी जैसे समर्पित देशभक्त का शुभचिंतक हूँ, इसलिए नहीं चाहता कि ये विषधर सोहन लालजी का अहित करें। महान् योगी अरविंद घोष ने कहा था कि हमें दूसरों को उनकी गलती का एहसास करा देना चाहिए, ताकि वे उसे सुधार लें और उनका मन निर्मल हो जाए। मैंने वही किया है। मैं यह देखकर हैरान हूँ कि वे अपने साथ पैंतालीस वर्ष पूर्व हुई ज्यादती को अभी तक भुला नहीं पाए हैं। यद्यपि डॉ. सुभाष चंद्रजी का तो इसमें कोई दोष भी नहीं था। खैर, जो हुआ सो हुआ। आशा है कि सोहन लालजी मेरी बातों को अन्यथा नहीं लेंगे। कहा भी गया है कि 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात'।''

२/४४, शिवाजी नगर
गुरुग्राम-१२२००१
दूरभाष : ९७११९१७७६९

कविता

किसान

• अशमिंदर कौर

किसान
जिनके हाथ में
हँसिए, कुदाली और फावड़े हैं
वे जानते हैं अच्छी तरह
मरुथल को कैसे ऊर्वर बनाते हैं
उनके शरीर से गिरती पसीने की बूँदें
खिलखिलाती फसलों में सोने की तरह
धूप में चमचमाती हैं
आसाँ नहीं होता नंगे पैर हल जोतना
अपने हीरा-मोती गाय के साथ
खूब सानी-पानी देना पड़ता है
अपना पेट काटकर
कितने दिन कितनी रातें
गँवाई होंगी बेहतर कल के लिए
सुख के लिए, अपने परिश्रम के लिए
लेकिन मिलता नहीं आधा भी,
एक तरफ सरकार की सब्जबाग
दुःनीतियों का अजगर
मुँह बाए कुंडली मारे
और जकड़कर बैठा है
डस रहा है आहिस्ता-आहिस्ता
तिस पर मौसम की मार ने
किसान का मेरुदंड तक हिला दिया है
इतना कि पुनः खड़ा नहीं हो सकता
सिवाय दो हाथों को जोड़कर
आकाश की ओर मुँह करके
अपनी बेबसी, लाचारी का दुखड़ा रोने के सिवाय
जब इतनी मार पड़ी हो तो क्या करे कोई?
वह ढूँढ़ता है एक घना वृक्ष
जिस पर फंदा लगाकर झूल सके
धीरे-धीरे सारे अन्नदाता इसी तरह से
अलोप हो जाएँगे,
कृषक नहीं रहेंगे
तो कौन खेतों में हल जोतेगा?
नहीं जानती दुनिया कि
आनेवाली नस्लें अपंग हो चुकी हैं
काम करना नहीं जानतीं,
निर्भर रही हैं सदा अन्नदाता पर
जिसे मृत्यु का झूला लेना पड़ता है
देखना एक दिन ऐसा आएगा कि
आनेवाली नस्लें ऐसे ही खत्म हो जाएँगी
कोई शेष नहीं बचेगा,
शेष रहेगी धरती और उसका रुदन।

म.नं. ४३३/१०, गली नं. ५
मोहल्ला-संतपुरा, कपूरथला-१४४६०१ (पंजाब)

बिन पावर सब सून

● गोपाल चतुर्वेदी

रईसों की बस्ती में सेठ करोड़ी का बँगला है। सामने मखमली दूब है, किनारे मौसमी फूल। करोड़ी डॉक्टर की सलाह पर यहीं सबेरे-सबेरे प्राणवायु का सेवन करते हैं। शहर में कई पार्क हैं। वे उनसे कतराते हैं। न जाने कौन प्रतियोगी उनकी जान से खेल जाए? ज्योतिष पर उनका गहरा विश्वास है। उन्हें ज्योतिषी ने चेताया है कि निजी सुरक्षा भरोसे योग्य नहीं है। ऐसे भी ग्रहों का गठजोड़ यही इंगित करता है कि उन्हें अस्त्र-शस्त्र से सावधान रहना है। गार्ड है तो गन भी होगी। कौन कहे कब उन्हीं पर चल जाए, लिहाजा ऊँची दीवारों से घिरा लॉन उनके लिए सुरक्षित है। वहीं गार्ड भी है, पर बाहर के खोखे में। करोड़ी की अनुमति से ही किसी का प्रवेश संभव है। इसके लिए खोखे से घर के दफ्तर में इंटरकॉम है। वहीं बैठा सचिव करोड़ी की अनुमति से ही इस वर्जित क्षेत्र में किसी को प्रवेश देता है।

करोड़ी के लिए श्रेष्ठता का मानक धन है। उनकी तुलना में कम दौलतमंद हेय हैं, बराबरी के प्रतिद्वंद्वी केवल धनी और अधिक दौलतमंद पूजनीय। अतिम श्रेणी में काम आनेवाले मंत्री अफसर, विधायक, सांसद आदि भी शामिल हैं। यह वे हस्तियाँ हैं, जो पद पर रहने तक उपयोगी हैं। चुनाव में पराजित जन-प्रतिनिधि अथवा सेवानिवृत्त अधिकारी तभी काम के हैं, जब सरकार या सियासी क्षेत्र में अपने संपर्कों से उनकी स्वार्थ सिद्धि करें। इनमें से कुछ उनके वेतनभोगी हैं और कुछ मौके-बेमौके कीमती भेंट-उपहार के हकदार। आज सुबह से करोड़ीजी का पारा सातवें आसमान पर है। दरअसल वातानुकूलन के अभाव में वे सो नहीं पाए हैं। यों पॉवर जाए तो शक्तिशाली जेनरेटर का प्रबंध है। उसके लिए अलग कर्मचारी भी नियुक्त है। कोई कारण नहीं है कि करोड़ी अपनी इच्छानुसार तय किए सुखद तापमान में न रहें? अथवा उनकी कमाऊ निर्णय लेने की क्षमता पर कोई विपरीत प्रभाव पड़े?

करोड़ी खरीदने-बेचने के विशेषज्ञ हैं। कर्मचारी ने स्वीकार किया है कि डीजल न रहने की वजह से जेनरेटर नहीं चल पाया। करोड़ी को संदेह है कि डीजल उसने बेच खाया होगा। वह उसकी नौकरी खाने पर उतारू हैं और वह उसे बचाने की प्रार्थना पर। उसने इस संदर्भ में बीबी-बच्चे की कसम भी खाई है। डीजल बेचने के गुनाह से उसका साफ इनकार है। उसके अनुसार समय पर डीजल आपूर्ति न कर पाना ही उसका इकलौता अपराध है। करोड़ी की सोच है कि क्या कोई हत्यारा हत्या का जुर्म कुबूल करता है या कोई डकैत डकैती का न जाने पुलिस इस स्वीकारोक्ति के लिए क्या-क्या यातनाओं की जुगत नहीं भिड़ाती है, फिर भी सफलता संदिग्ध है, करोड़ी ने सचिव को निर्देश दिया, ''जाओ, थाने में इस 'चोर' के जुर्म की एफ.आई.आर. दर्ज करवाओ।'' निजी सचिव उनके मुँह लगा है। उसने विरोध का दुस्साहस दिखाया, ''फिर पुलिस के पास इतने गंभीर केस हैं कि कुछ समय बाद वह रिपोर्ट को दाखिल-दफ्तर कर देगी। मेरा सुझाव है कि इसको गंभीर चेतावनी देकर अथवा एक दिन का वेतन काटकर मामला रफा-दफा किया जाए, वरना आप अखबारों की प्रवृत्तियों से तो परिचित हैं ही। वह भूखे भेड़िए की तरह ऐसे किसी तथाकथित अन्याय की प्रतीक्षा करते हैं, आपकी छवि को धूमिल करने के लिए। कुछ तो ऐसे भी हैं, जो इस 'मामले' का उपयोग 'ब्लैक मेलिंग' के लिए करेंगे। कभी न छापने के प्रलोभन से, कभी छापने की धमकी से। उसके तर्कों ने करोड़ी क्रोध के ताप पर बर्फीले पानी का प्रभाव डाला। उनका गुस्सा कुछ ठंडा पड़ा। उन्होंने निजी सचिव से कुछ खीज के स्वर में 'जैसा ठीक समझो वैसा करो' कहकर अपना पल्ला झाड़ा।

हमारा अनुभव है कि बिजली के तारों के जाल को, शरीर से कभी यकायक प्राण की आत्मा का लुप्त होना बाहरी तापमान पर निर्भर है। चिल्ला जाड़ा पड़े या लू का आक्रोश, बिजली ऐसे मौकों पर अचानक, कौन कहे, कैसे सैर-सपाटे को सिधार जाती है! हमारे मोहल्ले में कुछ गुस्सैल स्वभाव के भी लोग बसते हैं। उनमें से कुछ फोन के माध्यम से अपने जी की भड़ास निकालते हैं तब तक, जब तक कि बिजली के दफ्तर का कर्मचारी फोन काटकर उनकी मौखिक आक्रामकता का अंत न कर दे। कुछ ऐसे हैं, जो इस प्रकार के नपुंसक आक्रोश से, सहमत नहीं हैं। वह बिजली बोर्ड की दिशा में, झुंड में जाकर, वहाँ की 'कार्यकुशलता' से कुछ बिजली कर्मचारियों से हाथापाई करते हैं। देखने में आया है कि ऐसे वहाँ पधारते जरूर हैं, पर अधिकारियों की मिन्नत-मनुहार से प्रभावित होकर, उनकी मरम्मत के इरादों को मुलवी कर खाली हाथ लौट भी आते हैं। इसे भारत की मूल अहिंसक भावना को विजय के रूप में भी आँका जा सकता है।

इसीलिए मोहल्ले के हर घर में हाथ का पंखा उपलब्ध रहना ही

रहना है। ऐसा नहीं है कि हम सब देश के कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करने को कटिबद्ध हैं। पर क्या करें, हाथ का पंखा एक अनिवार्यता है। बिजलीवाले दो कमरों के निवास की कलादीर्घा में आवश्यक सजावट के बतौर बिजली का पंखा फिट है। किसी को पता नहीं है कि आवश्यकता के अवसर पर चले, न चले? दुर्दिन के समय अपने भी साथ छोड़ते हैं तो पॉवर भी अंतर्धान हो तो क्या आश्चर्य? कठिनाई है कि चंचला बिजली की चलाचली से पॉवर बोर्ड तक अनभिज्ञ है। बिजली जैसे बिना सूचना चली जाती है वैसे ही अचानक प्रगट भी होती है। बिजली बोर्ड से कोई दरयाफ्त करे तो यही उत्तर मिलता है, ''असुविधा के लिए हमें खेद है, पर लाइन में 'फील्ड' है। उसे सुधारने युद्ध स्तर पर, काम हो रहा है। 'कितना वक्त लगेगा' बताने में हम असमर्थ हैं।'' घर में आलम है कि ग्रह सज्जा की सामग्री यानी बिजली का पंखा, अपने असमर्थ आका को सिंगट्टा दिखाकर पूर्ण रफ्तार से चालू है।

नेताओं में भी खानदानी नेता हैं। इनकी पुश्त-दर-पुश्त इसी धंधे पर निर्भर है। इससे कल के फटेहाल वर्तमान के करोड़पति हैं। कभी यह धन-बल से चुनाव जीतते हैं, कभी बाहुबल से। न इनके उसूल हैं, न कोई सिद्धांत। सत्ता की जुगाड़ में यह वोटों के पुश्तैनी सौदागर हैं। झूठ इनके स्वभाव का अंग है और यह भविष्य के सपने ऐसे दिखाते हैं, जैसे ज्योतिषी किसी की कुंडली बाँचता है। सत्ता में इनकी खिलखिलाती तसवीरें हैं। संदेह होता है कि यह जनता की पीड़ा का मजाक तो नहीं उड़ा रहे हैं? यों इनसे प्रश्न करो तो यह स्वयं को देश के सुनहरे भविष्य का प्रतीक बताते हैं और कभी रामराज्य का संवाहक तो कभी सेक्युलर और उदार भारत का नुमाइंदा।

जिन्होंने भोगा है, वे जानते हैं। हमारे ऐसे अधिकांश वातानुकूलन से उतने ही अनभिज्ञ हैं, जितने बाथ-टब से। बाल्टी-लोटे से नहाकर भी उतनी ही सुखमय सफाई होती है, जितनी पानी भरे टब में लेटकर। हमें तो लगता है कि 'जकूजी' और 'शॉवर', 'टब' आदि रईसों के चोंचले हैं। नव-धनाढ्य इनकी शान बखारते हैं। इनसे कोई पूछे कि यूरोप की इस आयातित अवधारणा में कितने लोग वहाँ रोज स्नान तक करते हैं? सुना है कि बहुत हुआ तो दाढ़ी बनाकर दिन के कार्यक्रम को तैयार हो जाते हैं यूरोपवासी। फर्क के लिए मौसम उत्तरदायी है। भारत में वर्षपर्यंत कुछ माह छोड़कर गरमी पड़ती है, वहाँ ठंड। यहाँ सूर्य सालभर भट्ठी में पड़ी नान सा तपाता है आदमी को। वहीं यूरोप में सूर्य नजर आए तो उत्सव का वातावरण होता है। बहुत दिनों बाद भुवन भास्कर ने दर्शन तो दिए। कोई पूछे कि बिजली का सजावटी पंखा हम क्यों रखते हैं तो हमारा उत्तर होगा कि दूसरों को प्रभावित करने के लिए। अपना काम तो हाथ के पंखे से भी चल जाता है। पसीना बहाने की कुछ वर्जिश करते हैं। सुबह हाँफते ज्यादा और चलते कम हैं। हमें तो घर के बाहर मेहनत से पसीना आता है, खुद ही सूखने के लिए। श्रम-परिश्रम से पसीना बहाने से हम, ठाले-बैठे के मोटापे और मधुमेह से भी दूर रहते हैं, जिससे आधुनिक पीढ़ी-की-पीढ़ी आक्रांत है।

पॉवर के सैर-सपाटे से किसी को कष्ट है तो सेठ करोड़ी जैसे व्यक्तियों को है। उनका पूरा जीवन वातानुकूलन पर निर्भर है। उनको मजबूरन सूर्य का दर्शन करना पड़ता है, व्यायाम के बहाने से। वह भी इसलिए कि डॉक्टर की चेतावनी है, वरना जिंदगी को खतरा है। हमें तो दाल-रोटी नसीब है।

ऐसे बेचारे तो साँसें चलती रहें, इसके लिए रंग-बिरंगे दवा के कैपसूलों के सहारे हैं। जहाँ हर किस्म के पकवान उपलब्ध हैं, वहाँ गृहस्वामी को रूखा-सूखा खाना पड़े तो देखकर कभी हमदर्दी होती है, कभी तरस आता है।

ऐसों के जीवन का लक्ष्य विलगासिता का प्रदर्शन है। उनसे कइयों की रोजी-रोटी भी जुड़ी है। इवेंट मैनेजर इनकी फॉर्महाउस की पार्टी की सजावट और कार्य का प्रबंध करते हैं, खान-पान का कैटरर। दोनों चाहते हैं कि ऐसी पार्टी रोज करें। हमारे जैसों को भी सामान चढ़ाने-उतारने का रोजगार मिलता है, कभी-कभार नायाब विदेशी फल और खास खाद्य पदार्थों को चखने का भी। साथ ही हमें देश के समृद्ध अपवादों की जीवन-शैली के अध्ययन का अवसर भी प्राप्त होता है। यह राज भी खुलता है कि इतने आह्लादित चेहरे सिर्फ कवच हैं, आंतरिक पीड़ा और रोगों को छिपाने के। जीवन में सबके अपने-अपने दु:ख और कष्ट हैं। कभी-कभी हम सोचते हैं कि जीवन में क्या कोई है, जो पूरी तरह सुखी हो? ऐसे अजूबे शायद किसी म्यूजियम में सजाने योग्य हैं। कम-से-कम मैडम टुसार की गैलरी में ऐसों की मोम की प्रतिमाएँ ही लगा दी जाएँ। इनसे अपने मन का यह भ्रम तो दूर होगा कि जिंदगी केवल पीड़ा का अनवरत सफर है, जिसमें सुख केवल अस्थाई सराय है। जैसे बच्चे चिड़ियाघर घूमने जाते हैं, हम भी सुखी इनसानों के अजायबघर में जाकर हँसने-मुसकराने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे?

फिर हमें देश के नेताओं का ध्यान आता है। जिस धंधे में वे हैं, उसमें कभी जनसेवा की प्रमुखता थी। आजादी के बाद से इसे देश का ऐसा कमाऊ पेशा बना दिया गया है, जिसमें जनसेवक जनता के हित का कम और अपने स्वार्थ का अधिक सोचते हैं। आज यह देश का सबसे मुनाफे का पेशा है। कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि आज जनता इन्हें जन-भक्षक का दर्जा देती है।

नेताओं में भी खानदानी नेता हैं। इनकी पुश्त-दर-पुश्त इसी धंधे पर निर्भर है। इससे कल के फटेहाल वर्तमान के करोड़पति हैं। कभी यह धन-बल से चुनाव जीतते हैं, कभी बाहुबल से। न इनके उसूल हैं, न कोई सिद्धांत। सत्ता की जुगाड़ में यह वोटों के पुश्तैनी सौदागर हैं। झूठ इनके स्वभाव का अंग है और यह भविष्य के सपने ऐसे दिखाते हैं, जैसे ज्योतिषी किसी की कुंडली बाँचता है। सत्ता में इनकी खिलखिलाती तसवीरें हैं। संदेह होता है कि यह जनता की पीड़ा का मजाक तो नहीं उड़ा रहे हैं? यों इनसे प्रश्न करो तो यह स्वयं को देश के सुनहरे भविष्य का प्रतीक बताते हैं और कभी रामराज्य का संवाहक तो कभी सेक्युलर

और उदार भारत का नुमाइंदा।

गिरगिट की तरह रंग बदलना इनकी फितरत है। जिस पार्टी में खाने की गुजांइश है, उसमें शरीक होना इनकी विवशता है। भारत के सब दल उसूलों के ड्राईक्लीनर हैं। कोई जैसे ही एक में शामिल होता है, उसके कल के सिद्धांत धुल जाते हैं। कभी-कभी किसी को भी शक हो कि यह इनसान है कि गिर-गिरटान? इनके व्यवहार और आचरण से तो यही प्रतीत होता है कि यह कहलाते भले ही मानव हों, पर गिरगिटी प्रवृत्ति के अधिक करीब हैं। इन्होंने आजतक जनता को खैरात उसी के पैसे से बाँटी है। खर्चा जहाज का हो या रेल का, इन्होंने हर तरकीब से जेब का धेला बचाया है। खुद महलों में रहकर यह गरीब, किसान, पिछड़ों और दलितों के हितचिंतक हैं। जुबानी जमा-खर्च में जाता ही क्या है? इन्हें एक से निकालकर दूसरी जेब में डालने की महारत हासिल है। जैसे कई विषय के अज्ञानी होकर भी उसके पी-एच.डी. हो जाते हैं, यह भी न गरीबी का 'ग' जानते हैं, न किसानी का 'क'। फिर भी ये पीढ़ियों से गरीबी हटा रहे हैं। गरीबी ऐसा अंगद का पाँव है, जो इनके प्रयत्नों के बावजूद हटने को कतई प्रस्तुत नहीं है। पुरखों ने कभी देश-सेवा के लिए त्याग किया था, उसी का राग यह आज भी अलाप रहे हैं, वह भी बेसुरे अंदाज में।

खान-पान, महल, धन-दौलत, मनोरंजन, सैर-सपाटे आदि की इफरात है इनके जीवन में। फिर भी बिना पॉवर के इनकी गुजर नहीं है। जैसे मछली बिना पानी के तड़पती है, यह बिना सत्ता के। अंतर इतना है कि मछली में अंतर का दर्द छिपाने की चतुराई नहीं है, यह चालाक हैं। सत्ता गँवाने की पीड़ा यह विरोधियों के झूठे वादों को देते हैं। इनका सिर्फ एक मुद्दा, जो भी प्रधानमंत्री हो, उसे कोसना है। कहने को कुछ भी कहें, सत्ता गँवाने का उनका दर्द छिपाए नहीं छिपता है। उनको सुनकर कभी जनता को हँसी आती है, तो कभी रोना। जो खुद करप्शन की कालिख में सिर से पाँव तक डूबे हैं, उन्हें लगता है कि सरकार बिना भ्रष्टाचार के चलती तो दूर, रेंग भी नहीं पाती है। उन्हें आश्चर्य है कि कोई सरकार बिना भ्रष्टाचार के पाँच साल कैसे काट गई, वह भी बिना किसी आरोप-आलोचना के।

उनकी प्रमुख पीड़ा दूसरी है। प्रजातंत्र के प्रधान की कुरसी उनकी बपौती है। इस पुश्तैनी कुरसी पर कोई और कैसे काबिज हो गया? तीन-चार पीढ़ियों के उनके अधिकार से उन्हें एक सामान्य, गैर-खानदानी व्यक्ति ने कैसे बेदखल कर दिया? उनकी सोच सामंती है। राजा में योग्यता, अनुभव होना कोई जरूरी है क्या? दिमाग की दरकार क्या है? उसमें भूसा भी भरा हो तो चलेगा। यह कुरसी का करिश्मा है, जो उन्हें महान् बनाता है। इतने देशी-विदेशी सलाहकार हैं। उनका काम क्या ऊँचे वेतन पाकर सिर्फ घास छीलना है? वह योजना बनाएँगे। क्रियान्वयन पर नजर रखेंगे और खानदानी वारिस श्रेय लेगा, नाम कमाएगा। उसी पीढ़ी-दर-पीढ़ी का यही योगदान है तो उसका क्यों न हो? उन्होंने भी बिना आत्मसात् किए उसूलों की कै की है तो वह भी क्यों न करें? इधर उनके सलाहकार भूसे की उपयोगिता पर बयान दे रहे हैं। दूसरों के अंतर में घृणा है। इसके मन में केवल प्रेम है। यह फौज को निर्बल कर, केवल प्रेम से, आतंक से मुक्ति व राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ करने को तत्पर हैं। किसी ने लिखकर दे दिया। उन्होंने पढ़ दिया। तब से वह मंत्र के समान इसे ही दोहरा रहे हैं।

यों पॉवर का अभाव उन्हें अखरना स्वाभाविक है। कभी उनकी इच्छा सरकार के लिए आदेश था। वह जनता के सामने कैबिनेट को पारित प्रस्ताव की धज्जियाँ उड़ाने में समर्थ थे, वह भी अपनी ईमानदारी की छवि बनाने को। अब भी खानदान का महत्त्व है। पर वह धीरे-धीरे किसी नवाब के अतीत की यादगार चाँदी का पानदान बना जा रहा है। सब पानदान को सम्मान देने को प्रस्तुत हैं, पर इस 'पैदाइशी' प्रधानमंत्री को सत्ता देने को नहीं। न दरबारियों की भीड़ है, न जनता की, न स्वार्थ साधकों की, न विदेशी बिचौलियों की। विदेशी राजदूत उससे कतराते हैं, वरन् कभी-कभार वह जी बहलाने को अपने क्षेत्र का दौरा कर लेता है या मन बदलने और अपनी महत्ता के प्रदर्शन को पार्टी द्वारा शासित प्रदेशों का।

राजनीति में आयु को लेकर लचीलापन है। जब नेता का जन्म ही पैंतीस या चालीस वर्ष की उम्र में होता है तो उसका पचास-साठ की उस तक युवा हृदय सम्राट् बने रहना स्वाभाविक है। अधिकतर, क्षेत्रीय दलों में भी अब सियासी खानदानों का महत्त्व और महत्ता बढ़ती जा रही है। वह भी उनके अनुकरण में लगे हैं। जो किसी अन्य धंधे के अयोग्य होता है, वह राजनीति में प्रवेश करता है। बहुत कम ऐसे हैं कि किसी राजनीतिज्ञ का पुत्र या भतीजा-भानजा व्यापार करे या प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफल होकर अफसरी।

यों खानदान का प्रजातंत्र की अवधारणा में एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने प्रजातंत्र को परिवार-केंद्रित बना दिया है। उसे देश को पारिवारिक प्रजातंत्र का नाम भी दिया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि विश्व में सियासी परिवारों का महत्त्व नहीं है, पर उनमें सीधे प्रजातंत्र के आका के अवतार कम ही पैदा होते हैं। अब यह प्रदूषण राज्यों तक फैल गया है। यदि कोई राज्य का मुख्यमंत्री रह चुका है तो उसका पुत्र ही पद का उचित और काबिल उत्तराधिकारी है। संसार में कहीं ऐसा नहीं है, पर खानदान का ऐसा संक्रामक प्रभाव है कि अब राज्यों में भी यह छूत की बीमारी फैल रही है। हमें विश्वास है कि इतिहास में खानदान के इस योगदान को स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जाएगा और धीरे-धीरे पारिवारिक प्रजातंत्र शायद विश्व में भी प्रचलित हो!

वह और उनके सलाहकार आजकल गंभीर चिंतन में व्यस्त हैं। उनके पुरखों ने संविधान में कई उपयोगी संशोधन किए हैं। ऐसा संशोधन क्या उचित नहीं होगा कि प्रधानमंत्री एक ही परिवार से हो? कठिनाई यही है कि उसके लिए भी बहुमत अनिवार्य है!

साअ

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

अधूरी ख्वाहिशें

• प्रशांत कुमार सिन्हा

देखा गेट पर डाकिया रुका है, डाकिए को देख अब पहले जैसी उत्सुक्ता नहीं रही। एक लिफाफा गुमसुम, अनजान सा, अधूरा पता, प्रेषक का नाम नहीं। लिफाफा खोला तो बिजली सी दौड़ गई सिर से पाँव तक। एक ही साँस में पत्र पढ़ डालता हूँ—''आनंद दा, देवघर आ रही हूँ बाबा बैद्यनाथ की पूजा-अर्चना करने, आप हमें रिसीव करने जसीडीह आने की कृपा करेंगे! आप मुझे गलत न समझें।'' बैसाखी।

नीचे ट्रेन का नाम—पूर्वा एक्सप्रेस ए.सी.-२ तथा तारीख अंकित है। झल्लाहट हुई—फोन नंबर तो दिया होता!···जाने पत्र कितनी दफे पढ़ डाला। भूले-बिसरे कितने ही क्षण सहसा जीवंत हो उठे। धूप-छाँह, तिरस्कार-अपनापन के अंतर्द्वंद्व दफ्तर से अलग होते समय उसकी उपेक्षाओं ने हृदय के जख्म पर लगे सभी टाँके तोड़ डाले थे। मैं बुरी तरह आहत हुआ था। आने के बाद फोन भी किया, घंटी बजती रही, पर फोन नहीं उठाया गया। बाद में उसने फोन नंबर बदल लिया। कुछ माह बाद पूर्व के एक सहकर्मी से ज्ञात हुआ कि उसने कहीं बेहतर नौकरी पकड़ ली थी।

बैसाखी की उपेक्षाओं के दंश मुझे आज भी चुभते रहे हैं। बावजूद उसके तिरस्कार की पोटली बड़े यत्न से अपने अंदर सहेज रखी है। कहीं पढ़ा था—सुख-दुःख, लगाव-अलगाव, मिलन-विच्छेद, प्यार-नफरत···दोनों स्थितियों में प्रेम तो है ही।

मैं आज तक समझ नहीं पाया कि ऐसी कौन सी बात थी, जो हमारी निर्निमेष आँखें एक-दूसरे के आगोश में समा जाने की चुप सी अभिलाषा के बीच हमेशा नंगी तलवार सी लटकती रहीं। हम दोनों अंतर्मुखी थे। उसकी तटस्थता के मद्देनजर मैं कभी प्रपोज करने का दुस्साहस नहीं कर पाया। लेकिन यह सत्य है कि हमारी आँखें हमारी चेतना प्रस्तावों से भरी होती थीं। या तो हमने एक-दूसरे को समझा नहीं या फिर हम जानकर भी अनजान बने रहे 'पहले आप' की तर्ज पर।

घर के आस-पास गहरी नीरवता छाई है। वायुमंडल शांत, सड़क के किनारे अमलतास के पेड़, पीले फूलों से लदी खामोश टहनियाँ, सबकुछ गुमसुम सा। बाहरी दृश्यों का अंग बन बैठा हूँ मैं खयालों में डूबता-उतराता।

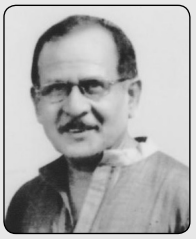

सुपरिचित लेखक। कई पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ आदि प्रकाशित। संप्रति बिहार सरकार की सेवा से निवृत्ति के उपरांत स्वतंत्र लेखन में रत।

···बैसाखी! दफ्तर में आए नियुक्ति-पत्र की प्रतिलिपि में जब पहली दफा नाम देखा तो तन-मन ताजगी से भर उठा था। और जब सामना हुआ तो साँसें कुछ क्षणों के लिए थम सी गईं। गेहुआँ रंग, हलके गुलाबी रंग की सलवार-सूट, पारदर्शी दुपट्टे के अंदर का आकर्षण, झुकी पलकें, कँटीली भौंहें, सूती परिधान, साधारण मैकअप तथा पीछे बैंड किया हुआ पॉनीटेल केश-विन्यास। इन सबसे बढ़कर उसकी स्वप्निल आँखें, जिसमें कलकल करती गंगा की पावन धारा बहती दीख पड़ी थी। मधुर स्वर कानों को शीतल कर गया—'मैं बैसाखी बनर्जी, ज्वॉइन करने आई हूँ।'

हरसिंगार की टहनियों को किसी ने हिला दिया। फूल झर उठे, खुशबू बिखर गई। और पहले से लिखकर लाई गई अर्जी उसने आगे बढ़ा दी। आवेदन की परिपक्व शैली को देखकर उत्सुकतावश पूछ बैठा, 'पहले भी कहीं थीं?'

'जी।'

'कितना प्यारा नाम है—बैसाखी। दुखियों, विकलांगों का सहारा, उनकी गतिशीलता।' उत्तर में एक संक्षिप्त सा थैंक्यू। एक कृपण मुसकान, बस।

'आनंद, इन्हें अभी डिस्पैच दे दो तथा थोड़ी मदद कर दिया करो! कंट्रैक्टर्स बिल भी देखा करेंगी!'

अफसर के निर्देश पाकर उसे काम सौंप दिए। बधाईस्वरूप मैंने हाथ बढ़ाया। पल भर को उसने मुझ देखा तथा धन्यवाद की मुद्रा में मुसकरा भर दी।

'इतना रिजर्व!' उत्तर उसने नहीं, बल्कि उसकी विशिष्ट भंगिमाओं ने दिया। मुझे लगा कि मेरे एकाकी जीवन में अनायास ही सरसता आ

गई है। यह मेरी खुशफहमी भी हो सकती थी। लेकिन धन्यवाद की मुद्रा में उसके होंठों पर उभरी मुसकान में अद्‌भुत आमंत्रण था।

दफ्तर में मैं लेट-लतीफी के लिए कुख्यात था; किंतु बैसाखी के आने के बाद मेरी दिनचर्या ही बदल गई थी। सबसे पहले दफ्तर पहुँचनेवालों में मेरा नाम शुमार हो चला था। दफ्तर पहुँचते ही हम एक-दूसरे के कमरे में जाते। हममें एक होड़ सी थी, पहले अभिवादन की। उस होड़ में अकसर मैं बाजी मार लेता, 'गुडमॉर्निंग मिस बैसाखी!'

'ओह नो, सर!' वह शर्मिंदा हो उठती।

'सर नहीं, आनंद!' मैं टोकता।

'यस मि. आनंद, हैव अ नाइस डे।' उसकी पलकें झपकतीं।

एक दिन मैं लेट था। पता चला कि बैसाखी की त्योरियाँ चढ़ी थीं। बात सिर्फ इतनी थी कि अपनी मेज पर बैग रखकर मेरे कमरे की ओर रुख किया ही था कि ड्राफ्ट्समैन ने टोक दिया, 'आज आनंद बाबू नहीं आए हैं!'

सुनना था कि बैसाखी फट पड़ी, 'नक्शा बाबू, आप दायरे में रहा करें।''

फटकार का असर पूरे दफ्तर पर पड़ा।

अजीब स्थिति थी। जब कभी मेरी भावनाओं के ज्वार उठते, दूसरे दिन अकारण ही परिस्थितियाँ बदली सी होतीं, मसलन अभिवादन को अनसुनी कर जाना। कटा-कटा सा पूरा दिन अपनी कुरसी से चिपकी रहना तथा मेरे कमरे में नहीं आना। ऐसे पल नंगी आँखों से न देखनेवाली किंतु बेचैनियों से भरी होतीं तिल-तिल जलाती हुई। अपने द्वंद्वों से जब उसे अवगत कराया तो निरपेक्षता के साथ उसने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसा आपने क्योंकर सोच लिया!'

एक दिन वह अखबार लिये मेरे कमरे में आई। एक आलेख को इंगित किया और बोली, 'पढ़िए।' कनखियों से मुझे देखा और दुपट्टे को सहेजती लौट गई। मैं पढ़ने लगा—'प्रेम की जननी है आकर्षण और पालनकर्ता है विकर्षण। हम पहले किसी की ओर आकृष्ट होते हैं। उसे चाहने लगते हैं। इस आकर्षण के विरुद्ध जो भी होता है, उससे हम विकर्षित होते जाते हैं। आकर्षण का वेग जितना तीव्र होता है, उतनी ही तीव्रता से हम विरोधी चीजों से विकर्षित होते जाते हैं। और यही तीव्र विकर्षण आकर्षण को प्रेम में बदल देता है। किसी के प्रति जनमा प्यार धीरे-धीरे सघन होता जाता है और हृदय की अवस्था बन जाता है। आकर्षण और विकर्षण के मिलन से उत्पन्न प्रेम इस प्रेम-जगत् का चमत्कार है।'

आलेख पढ़कर मैं सोच में डूब गया। जब मैं अखबार लौटाने उसकी मेज के निकट पहुँचा तो वह काम में डूबी दिखी। पलकें ऊपर उठीं। उन आँखों में प्रेम की कोई भाषा पढ़ पाता, कोई अर्थ तलाशता कि पूर्व की भाँति 'ठीक है' कहते हुए उसने अखबार ड्रॉअर में डाल लिया। पलकें गिर गईं। मेरी जिज्ञासा को शब्द नहीं मिले। बोझिल सा मैं अपने कमरे में आ बैठा। इच्छा थी कि आलेख पर हम चर्चा करें, लेकिन वह दफ्तर से कुछ समय पहले निकल गई और मुझे बतलाया भी नहीं।

मैं इतनी जल्द हार माननेवाला नहीं था। रात भर मैं आलेख की बाबत सोचता रहा। दूसरे दिन मैं उसकी मेज के सामने याचक-सा जा खड़ा हुआ। उसके अनदेखा करने के बावजूद मैंने आलेख पर चर्चा छेड़ दी। उत्तर में उसने सिर्फ इतना कहा, 'फिर कभी, अभी मीटिंग के पेपर्स तैयार करने हैं!'

मैं सोच रहा था कि उसकी तटस्थता बनावटी है। हर प्रतिकर्ष के पीछे उसका नारी सुलभ प्रेम छिपा है, जिसे वह सहज ही प्रकट करने से रही। आत्ममुग्धता ही सही, पर मेरे अंदर हर पल कुछ उमड़ता-घुमड़ता रहता था। मेरा स्पंदन, मेरी प्यास, मेरी जिजीविषा, सबकुछ बैसाखी के इर्द-गिर्द घूमती रहती। अखबार पढ़कर मैं स्वयं को जीत के करीब महसूस कर रहा था। पिछले तीन दिनों से हमारी मुलाकात न के बराबर थी। आँखें चार होतीं तो हेलो के रूप में सिर्फ पलकें झपकतीं। मेरी भावनाओं के संकेत पर उसकी उदासीनता और भी प्रबल हो उठती। मानो मेरे अंदर के भूचाल से उसका अहं तृप्त हो रहा हो। भावनात्मक रूप से अपनी मूक शैली में प्रताड़ित करना उसे सुख पहुँचाता था। मैं सोचता, 'चलो उसे मेरी बेचैनी प्रिय है तो यह भी एक प्रतिदान हुआ।'

अपने खाली समय में उसके कमरे में जा पहुँचा। कमरे में अन्य लोग भी थे, किंतु उन सबों की जुबान एवं दफ्तरी फूहड़ता पर ताले जड़े जा चुके थे। बैसाखी की उपस्थिति में उन सबों की आपसी हँसी-ठिठोली पर भी प्रतिबंध लग चुका था। लोग रहस्यमयी नजरों से मुझे घूरने लगे। आज मैं ढिठाई लिये था। 'क्या मैडम, दिन भर काम···काम···काम जब देखो, ऐग्रीमेंट लिख रही हैं···टाइम एक्सटेंशन डील कर रही हैं···। ठेकेदार से कमीशन भी नहीं लेतीं। हमारा तो कारोबार ही बैठ चला है!' मैं मजाकिया मूड में था।

'सॉरी! मुझे आपकी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं, आप अपना दस्तूर चालू रखें!' उसने पैन की गति में कोई व्यवधान नहीं आने दिया। नक्शा बाबू मेरी स्थिति पर होंठों को हथेलियों से छिपाए मुसकरा रहे थे, मानो कहना चाह रहे हों—बेचारा!

अपमान के इन छोटे घूँटों को सहजता से पचा लेने की आदत सी बन गई थी। किंतु ड्राफ्ट्समैन की आँखों का उपहास असहनीय लगा।

दूसरे ही दिन बैसाखी एक काम लेकर मेरी मेज के निकट आई। आँखों में वही गंगा की पावन धारा, क्षमा-याचना के भाव। मुझे लगा, बैसाखी अव्वल दर्जे की खुदगर्ज है। काम पड़ा तो आँखें मटकाती चली आई।

'सॉरी सर! आप नाराज तो नहीं?'

मैं सातवें आसमान पर पहुँच गया और चपरासी को कुरसी एवं दो चाय लाने को कहा। अपनी कुरसी छोड़ मैं भी खड़ा हो गया। 'आप शर्मिंदा करते हैं, सर। आप क्यों खड़े हो गए?'

चपरासी कुरसी रखकर जा चुका था। बैसाखी मेरे बाजू में आ

बैठी। उसके देह से उठता मदहोश करनेवाला गंध, जिसे एक गहरी साँस लेकर मैंने अपनी नासिकाओं के सहारे आत्मसात् कर लिया।

'देखिए, आपको मैंने 'सर' से संबोधित करने को मना किया था!'

'आप भी तो मुझे 'मैडम' कहते हैं औरों की तरह!'

मैं बैसाखी की आँखों में पिछले कई दिनों से अपने प्रश्न का उत्तर तलाश रहा था। उसका 'औरों की तरह' कहना लगा, जैसे मुझे मन वांछित उत्तर मिल गया हो।

'देखो बैसाखी, सार्वजनिक रूप से मैं तुम्हें भले ही आप कहता हूँ, पर अंदरूनी संबोधन कुछ और है!'

बैसाखी की छठी इंद्रिय सक्रिय हो उठी। उसने एम.बी. (मेजरमेंट बुक) खोलते हुए काम की बात पर आ गई, 'आनंद-दा, फाइनल बिल पहली दफा चेक करने को मिला है!...'

'घबराने की कोई बात नहीं, फाइनल बिल निश्चय ही सेंसिबल होता है।'

मैं उसके सान्निध्य को विस्तार देने के फिराक में था। किंतु जानता था कि उसे तनिक भी भनक लगी कि सीधा चलती बनेगी। अत: स्वयं को सहेजा।

'फाइनल बिल चेक करते समय इसके सारे पक्षों को बारीकी से देखना है। एग्रीमेंट से क्वांटिटी एवं दर का मिलान, कैलकुलेशंस में त्रुटियाँ न हों, जे.ई., ए.ई. के सर्टिफिकेट्स देख लें, नो ड्यूज के प्रमाण। ठेकेदार द्वारा मापी की मंजूरी, बस...और क्या! सतर्कता जरूरी है, वरना कभी-कभी किसी चूक का सारा दायित्व मत्थे आ लगता है।'

काम समझाने के दौरान उसकी आँखें झुकी रहीं। 'समझ गई' के भाव के साथ उसकी गरदन में रह-रहकर हलका सा कंपन होता रहा और मैं किसी इंद्रजाल के सम्मोहन में बेसुध नीम-बेहोश सा। पंखे की हवा में उसकी लटें सलोने चेहरे से खिलवाड़ कर रही थीं मुझे चिढ़ाती सी। अपनी हथेलियों से उन लटों को आहिस्ते से परे हटा देती। लटें जिद्दी थीं, पुन: गालों को सहलाने लगीं। कैलकुलेशंस की जाँच में उसकी मदद की खातिर मेरी उँगलियाँ तेजी से कैलकुलेटर पर टिपटिपा रही थीं। मेरी चोर निगाह से बेफिक्र बैसाखी मेरी मेज पर झुकी थी। 'तुम खुद भी चेक कर लो' कहते हुए मैंने कैलकुलेटर उसकी ओर सरका दिया। कुरते के वी-गले से झाँकता संधिस्थल, दुपट्टे का एक छोर मेरी हथेलियों पर आ गिरा, जिसे नजरें बचाकर मैं आहिस्ते-आहिस्ते सहलाता रहा। बिल जाँचने के दौरान वह एकाग्र थी। सहसा रामकुमार वर्मा की पक्तियाँ याद आ गईं—

प्रिय तुम्हारे रूप में
सुख के छिपे संकेत क्यों हैं?
और चितवन में उलझते,
प्रश्न सब समवेत क्यों हैं?

दुपट्टे को समेटने के दौरान उसकी केहुनी मेरे शरीर को छू गई, पलकें उठाकर उसने क्षमा-याचना के संकेत दिए। आँखों की चपलता मेरी नजरों से छुप नहीं पाई। वह लौट गई। मैं केहुनी के स्पर्श को सहलाता रहा।

'विवाहेतर जीवन की भावनाओं पर नियंत्रण होना चाहिए। पत्नियाँ अपने पति की महिला मित्रों को नहीं स्वीकारतीं।' किसी खाली समय में किताब के पन्नों पर नजर टिकाए बैसाखी ने कहा था।

मैं खामोश रहा।

'किस सोच में डूब गए, आनंद दा, आप कभी-कभी बड़े रहस्यमय नजर आते हैं—कभी इस हद तक एक्स्ट्रोवर्ट की किताब के खुले पन्ने तो कभी इतने अंतर्मुखी कि कसी हुई गाँठ।'

मेरे विफल दांपत्य जीवन के विषय में जानकर उसे विस्मय हुआ। किताब के पन्नों में कागज के टुकड़े को फँसाते हुए उसकी आँखें मेरी आँखों में जा समाईं। शायद पहली दफा मैं संपूर्णता के साथ खुली पलकों को निहार रहा था। उन आँखों में जिज्ञासा थी। आहिस्ते से उसने पूछा, 'डायवोर्स!'

'नहीं, खुद छोड़ गई।'

मेरी इस स्थिति से बैसाखी अनभिज्ञ थी। वह चुपचाप बैठी रही कहीं खोई हुई। किताब को उसने ड्रॉयर में डाल दिया।

'आश्चर्य! आपको अंतर्मुखी, मितभाषी मानती आई हूँ, लेकिन मन के अंदर इतना विषाद दबा रखा है! नहीं जानती थी।'

बैसाखी की आँखों में करुणा के भाव उभर आए। मुझे गमगीन पाकर उसने अपनी हथेलियों में मेरा दायाँ हाथ भर लिया। हथेलियों का दबाव मेरी कमजोर नसों पर जा टिका।

मेरे टूटे दांपत्य के विषय में जानकर उसके व्यवहार में एक बदलाव दिखने लगा था। कभी-कभी खाली समय को हम आपस में बाँटा करते थे। अपनी निजी जिंदगी से जुड़ी बातें, मसलन घर पर उसके माता-पिता हैं, पिता सेवा-निवृत्त शिक्षक तथा एक भाई है, जिसे वह डॉक्टर बनाना चाहती है आदि, वरना आज तक उसने अपनी निजी जिंदगी में ताक-झाँक करने का कोई मौका नहीं दिया। यदि विवाहेतर जीवन से जुड़ी बातें समाने न आई होतीं तो मैं भी अपने निजी जीवन की पीड़ाएँ उजागर नहीं करता। उसकी हथेलियों के दबाव ने मुझमें एक ललक पैदा कर रखी थी। दबाव की अनुभूति कभी कम न होती। मुझे लगता कि उस छुअन में एक तिलिस्म है। पर प्रेम के प्रति उसका नजरिया भिन्न था। बातों-ही-बातों में उसने कभी कहा था, 'प्यार देने की चीज है, पाने की नहीं। प्रेम में कुछ पाने की कामना जगी कि वह अपने धरातल से किनारे हो लेता है और जो मिलता है, वह असह्य दु:ख के सिवा कुछ नहीं होता।'

ऐसे ही ऊहापोह के बीच एक दिन वह चहकती हुई मेरे कमरे में आई। मैं चौंक पड़ा उसे साड़ी में देखकर। उस दिन प्रतिबंधित छुट्टी होने के कारण दफ्तर में उपस्थिति कम थी। अफसर भी टूर पर थे। ऐसे दिन कार्यालय में लोग अघोषित छुट्टी मना रहे होते। बैसाखी कुछ विलंब से आई थी, पर आते ही सीधा मेरे कमरे में। आज उसकी स्वप्निल आँखों में शरारती चमक थी। पुतलियाँ नाचतीं, पलकें थिरकतीं, भौंहें चुभतीं-सी, उँगलियाँ हवा में लहराते हुए संकेत में पूछा, 'दफ्तर

खाली है। बाकी लोग···!'

'चाय की दुकान पर।' मैंने उसकी जिज्ञासा मिटाई।

'वेरी नाइस आनंद-दा, आज मैं कोई काम नहीं करूँगी, समझे! अच्छा···बताएँ कि साड़ी में कैसी दिखती हूँ?' आँचल को उसने हवा में लहरा दिया। मैं भौचक्क, बैसाखी मुखर थी। उसके अंदर ऐसी भी कोई छवि हो सकती है, जो कल्पना से परे था।

मेरी जुबान तालू से चिपक गई, पलकें झपकाना भूल गया।

'कुछ बोलते क्यों नहीं!' और एक धौल बेतक्कलुफी के साथ मेरी पीठ पर जमा दिया। वह तुम पर उतर आई। मेरी चुप्पी पर बैसाखी के चेहरे की बनावटी झल्लाहट में अधिकार था। तुनकते हुए कहा, 'चुप कोरे बोसे थाको···पागोल मानुष!'

'अद्‌भुत!···'

'क्या अद्‌भुत?' मेरे दबे स्वर को उसने सुन लिया।

'शीला, मेरी पत्नी इस परिधान में ठीक तुम्हारी तरह दिखती थी।'

'उफ! शीला कहाँ से टपक गई!···उन्हीं के खयालों में खोए थे? कितनी दफे समझाया है, जो बीत गई, वह बात गई। कल किसने देखा है! आज जो है, वही सच है···मुँह खोलें प्लीज!' और बैग से मिठाई निकालकर मेरे मुँह में ठूँस दी तथा हँसते हुए कहा, 'आनंद दा, अभी इसी वक्त आप कहें, हैप्पी ब-डे-टू-यू···'

मेरे मुख से अजीबोगरीब स्वर में निकले शब्दों को सुन वह ठठाकर हँस पड़ी। साथ ही दूसरी मिठाई जबरन ठूँस दी। किसी रेस्त्राँ में सेलिब्रेट करने के मेरे प्रस्ताव को साफ टाल गई, 'नो ट्रीट्स···नो गिफ्ट्स, मना तो लिया जन्मदिन!'

दूसरे दिन बैसाखी ने किसी के हाथों सप्ताह भर की छुट्टी की अर्जी भिजवा दी। कल ही हमने उसके जन्मदिन की खुशियाँ बाँटीं, इस बाबत उसने कुछ नहीं कहा था। आज अनायास उसकी अर्जी ने मुझे सोच में डाल दिया। उसकी अनिच्छा एवं मना किए जाने के बावजूद दफ्तर के बाद मेरी बाइक उसके हॉस्टल के गेट पर जा रुकी। गार्ड ने बतलाया कि बैसाखी घर गई है।

परिचय जानकर गार्ड ने मेरी सूचना उसके रूममेट तक पहुँचा दी। रूममेट बाहर आई और मुझे शालीनता के साथ विजिटर्स-कक्ष में बिठाया। लगा जैसा उसे मेरे विषय में पूर्व से जानकारी है। संक्षेप में बतलाया, 'अरे, बड़ी मूडी लड़की है। इतना भर कह गई कि शादी-वादी का चक्कर है, जिसे वह टालना चाहती है।'

'कारण!···कोई अफेयर्स?' मैंने कुरेदा।

'बिल्कुल नहीं, तलाक के बाद तो मर्दों से उसे विरक्ति सी है। हाँ, आपकी चर्चा अवश्य करती है।'

मैं आसमान से आ गिरा। क्या वह तलाकशुदा है! कुछ सोचकर अपने अंदर के भूचाल को बमुश्किल नियंत्रित कर पाया।

'कल ही हमने उसके जन्मदिन की खुशियाँ शेयर की थीं। पर घर जाने के विषय में उसने कुछ नहीं कहा। अर्जी में भी बीमार पड़ जाने का जिक्र किया है।'

'जन्मदिन!' रूममेट के चेहरे पर एक विद्रूप सी अबूझ मुसकान उभर आई। उसने आगे कहा, 'आनंदजी, कल उसका जन्मदिन नहीं, तलाक का दिन था। इस दिन वह अपना पुनर्जन्म मानती है।'

भारी मन लिये लौटा। रास्ते भर बाइक असंतुलित होती रही। एकाध झटके भी लगे। एक ने तो यहाँ तक कह डाला कि ज्यादा चढ़ा ली है क्या?

दफ्तर आकर बैसाखी की सर्विस बुक निकलवाई, जिसमें उसकी जन्मतिथि कुछ और अंकित थी।

छुट्टियों से लौटने के बाद उसके स्वभाव में आई तब्दीली से मुझे कोई विस्मय नहीं हुआ। दफ्तर में वह गुमसुम और मुझसे भी कटी-कटी रहने लगी। एक फासला बना लिया। किसी काम की बाबत जानकारी लेनी हो तो सीधे डी.ए.ओ. से पूछती। मुझे लगा कि हॉस्टल जाकर मैंने भूल की है। क्या रूममेट ने उसे हमारी बातचीत में आए मुद्‌दे की जानकारी दी होगी! मुझे लगा कि उसके निजी जीवन की गोपनीयता में हस्तक्षेप कर मैंने कोई बड़ा गुनाह कर डाला है। मैंने जानना भी चाहा, लेकिन संक्षिप्त रटा-रटाया सा उत्तर—नहीं, वैसी कोई बात नहीं। मैं सोचता कि काश, बैसाखी मेरे जीवन में न आई होती। सड़क पर, ट्रेन में, किसी समारोह में उसकी हमउम्र लड़कियाँ मुझे बैसाखी नजर आतीं। मैं विक्षिप्त सा हो चला था।

एक दिन उसने दार्शनिकाना अंदाज में कहा, 'आनंद दा, क्या आपने प्रेम में कभी इसके नकारात्मक पक्षों पर गौर किया है, जो वस्तुत: प्रेम का ही प्रतिरूप है। बड़ी तासीर होती है उनमें। ऐसे प्रेम को भूलना मुश्किल होता है। प्रेम की आग में तपना और फिर यातनाओं से गुजरना, अंतिम साँस तक इसकी तपिश तन-मन में बसी रहती है!'

बैसाखी के शब्द सामान्य रूप से कहे गए थे अथवा आनेवाले समय का कोई पूर्वाभास, मैं आज तक नहीं समझ पाया। बाद के दिनों में हमारे संबंधों की कोपलें फूटते ही मुरझाने लगी थीं। फिर उपेक्षाओं और उदासीनता का अंतहीन सिलसिला। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि संपर्क छूटते समय सामान्य-सी औपचारिकता तक का निर्वहन करना उसने मुनासिब नहीं समझा। दफ्तर से अलग होते समय भरे एवं बोझिल मन लिये उसकी मेज तक गया भी। कामना थी कि जाते-जाते उन हथेलियों का एक स्पर्श भर मिल जाए। घनी पलकें आहिस्ते से उठीं। पल भर के लिए आँखें टकराईं और दूसरे पल फाइल पर जा गिरीं। मानो मेरे हिस्से में इतना भर काफी हो। उन आँखों में छिपी भाषा मैं समझ नहीं पाया। एक निश्श्वास के साथ मन-ही-मन अलविदा कहा और मैं बाहर चला आया।

आज भी मैं अपने अनुत्तरित प्रश्नों से जूझता रहा हूँ। झंकृत होते

दिमागी तंतु, आत्मपीड़न और आत्मश्लाघा के विरोधाभास के बीच संबंधों के इकतरफा होने की भ्रांति; लेकिन यह कैसे संभव है! यह अनकहा हो सकता है, पर इकतरफा नहीं!

सबकुछ तर्कसंगत होने के बावजूद मन को स्वीकार्य नहीं। अशांत चेतना, कसक, अतृप्ति घुटन···

□

जसीडीह स्टेशन, आज बैसाखी आ रही है। अंतर्विरोधों के बावजूद मिलने की ललक के साथ धड़कनें बढ़ी हुई हैं। उद्घोषणा की जाती है, ''यात्रीगण कृपया ध्यान दें,२३०४ डाउन पूर्वा एक्सप्रेस, जो नई दिल्ली से चलकर हावड़ा तक जाएगी, प्लेटफॉर्म संख्या एक पर आ रही है।'' दूर से धीमी गति से प्रवेश करती ट्रेन का इंजन दिख जाता है। डिस्प्ले पर बारी-बारी से उभरता है गाड़ी का नंबर, फिर कोच संख्या। लंबी ट्रेन, लंबा प्लेटफॉर्म। कुछ ही मिनटों में ट्रेन प्लेटफॉर्म पर आ लगती है। धड़कनें बेकाबू हैं। सामने है—कोच संख्या ए.सी.२, लेकिन बैसाखी को कौन कहे, एक भी परिचित चेहरा नहीं उतरा उस कोच से। जाड़े में भी पसीने चुहचुहा आए। भागता हुआ दूसरा और तीसरा कोच, और अंतत: पूरा प्लेटफॉर्म। भीड़ में तलाशती बेचैन आँखें, छह वर्ष का अंतराल। कहीं पहचानने में भूल तो नहीं हुई! इन्क्वारी से घोषणा करवाता हूँ, ''बैसाखी बनर्जी, जो नई दिल्ली से आई हैं, अपने मित्र आनंद सेन से इन्क्वारी के पास आकर मिलें!'' तीसरी उद्घोषणा के बाद मेरी आँखें पथराने लगती हैं। प्लेटफॉर्म शांत हो चला है, फिर भी निगाहें गेट से हटती नहीं। लगता है, जैसे मेरी मानसिक क्षमता चुकने लगी है। अब न तब पागलों की भाँति चिल्ला पड़ूँगा उफ!···

स्मृतियों के ज्वार-भाटे में उठता-गिरता हुआ बालकनी में बैठा मैं, पेड़ पर बैठा अनजान पक्षी का जोड़ा चोंच से चोंच टकराता हुआ···खालीपन के एहसास से निर्मम हो उठता हूँ उनके प्रति। हाथ हवा में लहराता हुआ उड़ा देता हूँ। दूर के पेड़ पर जा बैठते हैं वे। ग्लानि होती है मुझे। दरवाजा बंद कर बिस्तर पर निढाल हो जाता हूँ। मेज पर उपहास उड़ाता बैसाखी का पत्र फर्श पर आ गिरता है। पत्र के पीछे अंकित है—

रोज एक ख्वाब तेरा देख लेती हूँ मैं,
चलो ऐसे ही ख्वाहिशें पूरी कर लेती हूँ मैं···

वर्षों पूर्व बैसाखी के शब्दों की बिखरी कड़ियाँ बड़ी तासीर होती है नकारात्मक प्रेम में। प्रेम की आग में तपना, यातनाओं से गुजरना, तपिश से गुजरने के बाद प्रेम कुंदन बन जाता है। उसकी चमक मिटती नहीं। एक स्वप्न की मानिंद बैसाखी का प्रतिरूप उभरता है, ''क्या हुआ, जो ख्वाहिशें पूरी नहीं हुईं। महसूस किया आकर्षण और विकर्षण के चामत्कारिक प्रेम को?''

नम हो आई आँखों में स्मृतियों के टुकड़े सहेजते अनायास लगता है कि हमारा पूरा वजूद पूरी गर्मजोशी के साथ एक-दूसरे के आगोश में आ समाया है—चूमता-पुचकारता-दुलारता हुआ।

सा.अ.
सागर लहर, बंपास टाउन
पो. देवसंघ (देवघर)
झारखंड-८१४११४
दूरभाष : ०९९३१०५३२५५

कविता

खोजता विहान

• श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'

खेल रही श्वास

चिंतन के चेहरों पर चेचक के दाग।
अर्जित अवकाश में है आचरण की आग॥

स्वप्नों के टूट गए तकनीकी तार।
योजना की आँखों में आँसू की धार॥

बातों की फैल गई नरम-नरम दूब।
प्रश्नों के पौधे भी उग आए खूब॥

कदम ताल सैनिक-सा करता अभियान।
समाचार, सड़कों पर खोजता विहान॥

कपट पूर्ण भाव के मुहावरे सभी।
स्वप्न के बगीचे में पहुँचे हैं अभी॥

प्रश्नों की होती है ऐसी हड़ताल।
पलभर में खींच ली उत्तर की खाल॥

अखबारी आँखों का उतरा है नशा।
आईना अकाल का देखेगा दुर्दशा॥

आशा की मुट्ठी में जीवित विश्वास।
बच्ची सी गोदी में खेल रहा श्वास॥

कबिरा के कंठ को

रोज-रोज रोक रहा रोशनी की राह।
वाह-वाह बोल-बोल पकड़े वो बाँह॥

कविता की खिड़की भी खोल दें मगर।
तूफानी वर्षा का पास है नगर॥

दुविधा इस ओर और सुविधा उस ओर।
स्कूली बच्चों-सा हो रहा है शोर॥

नदियों की भाषा के आरक्षित भाव।
लहरों ने धोया था शब्दों के पाँव॥

उगते हैं आँखों में परिमल परिदृश्य।
उद्घाटित होते इतिहास के रहस्य॥

मिट्टी के शोधग्रंथ कच्चे घर लिखें।
काँच-महल कैमरे के सामने दिखें॥

अनुपस्थित होता यदि जंगली दिमाग।
अगुआनी में जाता निश्चित अनुराग॥

कविरा के कंठ को न चाहिए गला।
कालजयी झोंपड़ी की छाँव में पला॥

सा.अ.
विजय फिलिंग के पीछे,
उत्तरी करौंदिया, सीधी, मध्य प्रदेश
दूरभाष : ०९५१६७२५५७५

दूसरा आदमी

मूल : **राजेश पटेल**

अनुवाद : **ललितकुमार शाह**

संजीत को उठने में आज फिर से देर हो गई। वह जल्दी-जल्दी नहा लिया, चाय गैस पर रख दी, बिछौना ठीक किया और दीवार घड़ी को देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि घड़ी की सूइयाँ भाग रही हैं। उसने पलंग के नीचे रखे पानी के प्याले की ओर देखा।

देर हो रही थी, इसलिए तुरंत चाय पी, तैयार हुआ, लिफ्ट आने पर सोसाइटी के सेक्रेटरी से मिले बिना गेट के बाहर निकला। वॉचमैन के सलाम की उपेक्षा करते हुए वह रिक्शे में बैठ तो गया, परंतु वह प्याला उसके दिमाग से नहीं हट रहा था।

संजीत को अच्छी तरह याद है कि पानी का वह प्याला उसने रात को सोने से पूर्व किचन के सिंक के पास रखा था, पर वह पलंग के नीचे आया कैसे?

जैसे कि किसी ने पानी पीकर प्याला पलंग के नीचे रखकर उस पलंग पर रात बिताई हो! संजीत ने रूमाल से पसीना पोंछते हुए महसूस किया कि उसके कपाल पर पसीना नहीं, बल्कि पसीना तो विचारों का आ रहा है!

संजीत अकेला रहता था। अकेला आदमी रह सके उतना व्यवस्थित या अव्यवस्थित। वैसे तो सबकुछ ठीक चल रहा था, परंतु कुछ दिनों से संजीत को ऐसा लग रहा था कि उसके घर में कोई और भी रहता है।

वैसे तो बात इतनी अविश्वसनीय एवं विचित्र थी कि ऐसी कल्पना भी हास्यास्पद लग सकती है। घर में कोई रहता हो और पता भी न चले, ऐसा हो सकता है? मगर आहिस्ता-आहिस्ता संजीत का संदेह बढ़ रहा था कि ऐसी सफाई के साथ घर में कोई रहता है कि पकड़ा ही नहीं जाता!

जैसे कि कल रात ही वह काम पर से आया, तो हाथ-पैर धोए कपड़े बदलकर वह अखबार ढूँढ़ रहा था, तभी उसकी नजर पलंग पर बिछी चादर की झुर्रियों पर पड़ी। जैसे कोई बैठकर खड़ा हो गया हो, ऐसी झुर्रियाँ। मगर कौन बैठा था और कब? वह स्वयं तो रोज के क्रम के अनुसार बिछौना व्यवस्थित करके ही काम पर जाता है। संजीत उदास हो गया। वैसे भी जीवन में समस्याएँ कम न थीं। दफ्तर में सीनियर शुक्ला तो उसका खून पीने का प्रण लेकर बैठा था। दस मिनट भी देर होने पर तीर छोड़ता—'साहब, देर से ही सही, आने की कृपा तो करते हो!' अथवा 'आइए, आइए, आप लेट नहीं हैं, सारे विश्व की घड़ियाँ ही तेजी से चल रही हैं! आपका क्या दोष?' संजीत कोई उत्तर न दे पाता और उसका काम करने का मूड ही गायब हो जाता। दफ्तर की कैंटीन का चायवाला उसे क्यों ठंडी चाय ही देता और शिकायत करने पर हँस पड़ता। संजीत को समझ में नहीं आता था कि शुक्ला तो सीनियर होने के नाते रुआब दिखाता है, मगर यह चायवाला क्यों उसको तुच्छ समझता है? संजीत के जीवन में ऐसी अनेक परेशानियाँ थीं, जो उसे कुकुरमाछी की तरह पीड़ा दे रही थीं। बस में ज्यादातर ऐसे सहयात्री मिलते, जो मोबाइल पर ऊँची आवाज में बातें करते और उसके दिमाग को गरम कर देते। 'हमारे देश के लोगों में सिविल सेंस कब आएगा?' ऐसा सोचते-सोचते वह थक जाता था। कंपनी हर मास तनख्वाह का चैक लेट ही देती और सोसाइटी का सेक्रेटरी मेंटिनेंस समय पर न चुकाने के बदले में ताना मारा करता था।

जीवन में एक गर्लफ्रेंड है। वह भी सुकून देने की बजाय सुर बदलकर ब्लड प्रेशर बढ़ाने का प्रयास कर रही है। एक दिन भी यदि संजीत फोन करना या कॉल बैक करना भूल गया तो नमिता इतना गुस्सा करती, जैसे संजीत ने उस पर अपार जुल्म किए हों। एक दिन मॉल में डेढ़ घंटे के बाद भी जब नमिता ड्रेस पसंद न कर पाई, तब खड़े-खड़े थके हुए संजीत ने केवल इतना ही कहा, ''यार, अब मैं बोर हो गया हूँ।'' तब जवाब में नमिता ने वहाँ तमाशा खड़ा कर दिया, ''मेरे लिए दस मिनट भी नहीं होते तुम्हारे पास? मेरी हर बात तुम्हें बोर करती है?'' आदि-आदि। उस वक्त वहाँ हाजिर लोग आश्चर्य से हम दोनों को देखने लगे। संजीत अचंभे में पड़ गया।

घर में थोड़ी शांति मिलती थी, मगर गत छह महीनों से वहाँ भी समस्या खड़ी हो गई है। टॉयलेट की छत से पानी टपक रहा है। चार

बार उसने सोसाइटी में शिकायत की, मगर कोई काररवाई नहीं की गई। संजीत को लगता है कि उसके चारों ओर समस्याएँ-ही-समस्याएँ हैं। सारा जहान उसके विरुद्ध हो गया है। सोसाइटी के सेक्रेटरी से लेकर हमेशा मिलनेवाले, रिक्शावाले, बस के यात्री अथवा कंडक्टर, नमिता, शुक्ला, सारे परिचित-अपरिचित, जो संपर्क में आते थे, समझो कि वे लोग ड्यूटी पर थे कि संजीत को किस प्रकार तकलीफ दी जा सके! ऐसे विचार से खिन्न होकर संजीत में कोई नई समस्या का सामना करने की क्षमता नहीं बची थी। पहेली भी कैसी कि क्या घर में कोई छिपकर रहता है?

मगर कौन रहेगा ऐसे छिपकर और किसलिए?

ऐसे प्रश्नों के उत्तर संजीत के पास न थे। किंतु ऐसे प्रश्न खड़े हों, उसके लिए वैसे प्रमाण मिलते रहते थे। कभी संजीत रात का बचा हुआ खाना सुबह के नाश्ते में खाने के लिए सोचता, मगर वह गायब हो जाता था। इस्तरी करके कपाट में रखे उसके कपड़े उसे वॉशिंग मशीन में उपयोग किए हुए मालूम पड़ते। कभी-कभी तो घर में पहनने की स्लीपर उसे बाथरूम में पानी में भीगी हुई मिलती। सिंक में बिना धोए चाय के कप-सॉसर मिलते। उसके लड्डू डिब्बे में कम हो गए हैं, ऐसा दिखता। कभी फ्रिज में आइस-ट्रे खाली पाई जाती थी। शाम को घर का द्वार खोलने पर फर्नीचर का स्थान बदला हुआ पाया जाता था।

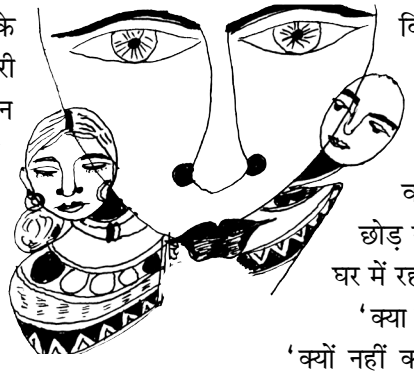

संजीत को लगा कि वह पागल हो जाएगा। क्या सच में घर में कोई है या यह उसका संदेह मात्र है? शायद वहम समझकर संजीत उसकी उपेक्षा करता, पर बाद में उसे साक्षी मिलने लगे, तो वह गंभीर हो गया। पड़ोसन ने एक बार शिकायत की कि 'कल रात बारह बजे आप तेज आवाज में रेडियो सुन रहे थे। प्लीज, आवाज थोड़ा कम कीजिए!' संजीत को याद था कि वह उस रात ग्यारह बजे ही सो गया था। इसके अलावा रेडियो में बैटरी न होने के कारण वह बज ही नहीं सकता! दिल की धड़कन थामकर उसने रेडियो चेक किया तो उसमें नई बैटरी लगी पाई गई। यह किसने लगाई? और रात बारह बजे पड़ोसी रेडियो सुनकर डिस्टर्ब हुए तो मुझे क्यों रेडियो सुनाई नहीं दिया? ऐसा सोचकर वह उलझन में पड़ गया।

एक रविवार की दोपहर को वह बीयर पीकर गहरी नींद लेने की तैयारी कर रहा था, तब ऊपर रहनेवाले रमेश भाई का फोन आया। वे अपना फ्लैट बेचना चाहते थे। दलाल किसी को घर दिखाने आनेवाला था। परंतु रमेश भाई स्वयं घर में न थे। वे संजीत को कह रहे थे कि दस मिनट में दलाल आएगा, कृपया उसे आप अपना घर देखने देना, क्योंकि सारे फ्लैट एक समान हैं। संजीत उनको कहना चाहता था कि वह व्यस्त है और दलाल को अन्य किसी का घर दिखलाने को कहो। मेरे लिए आसान न था, किंतु मोबाइल नेटवर्क ठीक न होने के कारण वह रमेश भाई को मना न कर सका। फिर फोन कट गया। केवल दस मिनट संजीत ने राह देखी, मगर बाद में उसको नींद आ गई। करीब तीन घंटे के बाद वह जागा। वह चाय बना रहा था, तब फोन की घंटी बजी। वह कुछ बोले, उसके पूर्व ही दूसरी तरफ से रमेश भाई ने बोलना शुरू किया। उन्होंने कहा, 'थैंक्स, आपने दलाल तथा उस फ्लैट लेनेवाले भाई को इतना कोऑपरेट किया। अरे, आपने दोनों को चाय भी पिलाई। बहुत-बहुत आभार, संजीत भाई! ओके-ओके' कहकर संजीत से फोन काटा और सिंक में देखा तो चाय के तीन कप और बिना साफ की हुई पतीली वहाँ पड़ी थी। संजीत को आश्चर्य हुआ और वह सोच में पड़ गया, 'मैं गहरी नींद में सो रहा था, तब घर में दो व्यक्ति आ जाए और घर में जो कोई छिपकर रहता है, उसने आनेवाले दो व्यक्तियों को चाय बनाकर पिलाई!' रमेश भाई को भी अचंभा हुआ। उसने आज रमेश भाई को भी चाय नहीं पिलाई थी। संजीत पड़ोसियों के साथ विशेष संबंध नहीं रखता था।

यह बात रहस्यमय बनती जा रही थी। संजीत को यह समझ में आने लगा कि जो कोई छिपकर रहता है, उसकी अब हिम्मत बढ़ती जा रही है और वह अपने अस्तित्व के प्रमाण लापरवाही या मन:पूर्वक छोड़ रहा है, ताकि संजीत को पता लग जाए कि वह इस घर में रहता है; मगर उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता!

'क्या वह सचमुच में कुछ नहीं कर सकता?'

'क्यों नहीं कर सकता? सोसाइटी में शिकायत कर सकता है, पुलिस की मदद ले सकता है, पड़ोसियों का साथ ले सकता है।' संजीत ने सोचा कि मैं क्या मूर्ख या कायर हूँ कि मेरे घर में कोई चुपचाप घुसकर रहने लगे! एक सुबह संजीत बालकनी में दाढ़ी बना रहा था। उस वक्त उसे लगा कि बाथरूम में कोई है। पहले तो वह डर गया। बाद में उसने सोचा कि चलो बाथरूम की कुंडी बाहर से बंद करके, पड़ोसी तथा वॉचमैन को बुलाकर लाऊँ, उस बदमाश को आज पकड़ ही लूँगा! संजीत के कदम आहिस्ता-आहिस्ता बाथरूम की ओर बढ़ रहे थे, तभी सीनियर शुक्ला का फोन आ गया। संजीत को फोन लेना पड़ा। शुक्ला ने किसी मामूली मुद्दे पर उसे झाड़ दिया। संजीत का मूड खराब हो गया। वह फिर से दाढ़ी बनाने लगा और अचानक उसे याद आया कि बाथरूम में कोई था। उसने डरते-डरते जाँच की तो अब वहाँ कोई नहीं था। संजीत को लगा, जैसे कि उसके कान के पास से कोई गोली गुजर गई हो। परंतु इस घटना के तीन दिन बाद, जो कि रविवार था, उस दिन एक बड़ी घटना घटी।

हुआ ऐसा कि संजीत बाथरूम में था और उसे घर की डोर-बेल बजती सुनाई दी। वह जोर से बोला कि वह नहा रहा है, बाद में आओ! उसके पहले किसी ने घर का द्वार खोल दिया हो, ऐसा लगा। संजीत चौंक गया! घर में जो कोई रहता है, वह इतनी सहजता से दरवाजा भी खोल सकता है! जैसे कि उसके बाप का घर हो? संजीत इतना डर गया कि बाथरूम से बाहर निकलकर उस द्वार खोलनेवाले का सामना कर सके, उसमें उतनी भी हिम्मत न थी। इसके विपरीत जैसे कि वह

अन्य किसी के घर में हो, वैसे छिपकर बाहर क्या बात हो रही है, सुनने लगा। आवाज सुनकर समझ में आया कि सोसाइटी का सेक्रेटरी मेंटिनेंस चैक माँगने आया था। संजीत ने चैक तैयार रखा था, मगर वह तो यहाँ छिपकर खड़ा था! द्वार खोलनेवाला व्यक्ति क्या ड्रावर खोलकर उसे चैक देगा? यदि सेक्रेटरी उससे पूछेगा कि आप कौन हैं, और संजीत भाई कहाँ हैं? क्या बात होगी, वह संजीत देखना चाहता था, मगर उसे बड़ा धक्का लगा, जब उसने सुना कि द्वार खोलनेवाला व्यक्ति सेक्रेटरी को ऊँची आवाज में कह रहा था कि छह महीनों से टॉयलेट की छत लीक हो रही है, उस शिकायत पर कोई काररवाई नहीं होती और हर बार मेंटिनेंस के लिए पैसे माँगने को हाजिर! एक पैसा नहीं मिलेगा। भागो यहाँ से। पानी लीक हो रहा है, पहले उसे रिपेयर कराओ, बाद में मेंटिनेंस का पैसा मिलेगा! और धड़ाम से दरवाजा बंद करने की आवाज आई। संजीत डरकर बेहोश हो गया। होश में आने पर फिर से उसका शरीर काँप उठा। उसे यह समझ में नहीं आया कि सेक्रेटरी ने उस व्यक्ति से ऐसा क्यों नहीं पूछा कि आप कौन हैं इस तरह बहस करनेवाले? संजीत भाई को बुलाइए! क्या वह व्यक्ति मेरे जैसा ही दिखता होगा? ऐसा सोचकर वह और ज्यादा डरने लगा। उसे लगा कि शायद उस व्यक्ति की आवाज भी मेरे जैसी थी। संजीत को लगा कि यदि वह व्यक्ति मुझसे संपूर्णतया मिलता-जुलता होगा, तब मैं कुछ करूँ, उसके पूर्व ही वह मुझे घूसखोर समझकर घर से बाहर निकाल दे तो? मैं कैसे साबित करूँगा कि मैं नहीं, वह घूसखोर है! डर के मारे संजीत बहुत देर तक बाथरूम में छिपा रहा। बाद में कोई हलचल न होने पर उसने आहिस्ता से कदम बाहर निकाले। सारे घर में घूमकर उसने देखा, मगर उसने किसी को वहाँ पाया नहीं।

अजीब मन:स्थिति में उसने बाकी का समय बिताए। रात के समय वह पूरी घटना के विषय में सोचने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता उसे लगा कि केवल यह घर नहीं, बल्कि उस व्यक्ति को मेरा जीवन भी जीना आना चाहिए। हर जगह वह डरकर जी रहा है। ऐसे जीवन का क्या अर्थ है? उसी आदमी को जीने का हक है, जो यदि अनुचित हुआ तो उसके खिलाफ लड़े, जैसे आज सेक्रेटरी से वह दूसरा आदमी लड़ गया था। मैं नहीं, वह दूसरा आदमी ही सही है! ऐसे विचार के साथ संजीत सो गया।

दूसरे दिन बिछौने से संजीत नहीं, दूसरा आदमी उठा। तैयार होकर घर से बाहर जाते समय सोसाइटी का सेक्रेटरी मिल गया, तब उसने खुनस के साथ देखा। सेक्रेटरी ने धीमी आवाज में कहा, ''एक सप्ताह में आपका काम करवा देता हूँ। बस, एक ही सप्ताह···!'' और संजीत के नाते वह कुछ भी बोले बिना आगे चला गया। दफ्तर में आधा घंटा लेट गया और सीनियर शुक्ला ने घड़ी की ओर तब इशारा करके देखा! उसने चिढ़कर कहा, ''घड़ी की ओर मत देखो!'' शुक्ला ऐसे विचित्र सवाल के लिए तैयार न था। वह बोला, ''मेरा पेंडिंग काम कितना है, यह बताओ।'' शुक्ला बोला, ''पेंडिंग कुछ नहीं है तो यहाँ ठीक ग्यारह बजे हाजिर होकर भजन गाना है? यहाँ सब काम करने ही आते हैं, रजिस्टर में दस्तखत करने नहीं!'' शुक्ला की बोलती बंद हो गई। इतने में चायवाला आया, तब संजीत बनकर दूसरे आदमी ने चाय का कप उसके सिर पर डाल दिया और कहा, ''बस··· ?'' वह लड़का भाग खड़ा हुआ और फटाक् से दूसरी गरम चाय ले आया।

इतने में नमिता का फोन आया। उस दूसरे व्यक्ति ने उसे कड़ी आवाज में कहा, ''खबरदार, आज के बाद कभी ऑफिस आवर्स में फोन किया तो! लाइफ में कभी भी फोन नहीं करोगी तो चलेगा! पर काम के समय फोन नहीं करना!'' उसने फोन काट दिया। ऑफिस के सहकर्मी उसकी ओर देख रहे थे। जब उसने उनकी ओर देखा तो वे सभी शर्मिंदा हो गए। वे सब अपना काम करने लगे।

अब संजीत के स्थान पर वह दूसरा व्यक्ति सेट हो गया है। अब बस में मोबाइल पर जोर से बोलनेवालों में उनका मोबाइल बाहर फेंके जाने का डर सता रहा है। रिक्शेवाले को भी वह नहीं छोड़ता। अब वह पड़ोसियों के साथ भी फ्रेंडली है।

शुक्ला हो या नमिता, सभी अपनी मर्यादा में रहकर उससे बरताव करते हैं। सेक्रेटरी ने एक सप्ताह में काम करवा दिया है।

अब वह दूसरा आदमी संजीत बन गया है।

७, प्राची, ९० फुटा रोड,
घाटकोपर (ईस्ट), मुंबई-४०००७७
दूरभाष : ९८२११२२३६१

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति गुप्ता

नवोदित लेखिका एवं चित्रकार। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में रेखाचित्र, कविता, लघुकथा आदि प्रकाशित। कविता कोश में ६० से अधिक कविताएँ संकलित। बाल-काव्य तथा कहानी-संग्रह एवं कुछ काव्य-संग्रह शीघ्र प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'साहित्यश्री', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'संपादक शिरोमणि' आदि सम्मानों से समादृत।

संपर्क : १०३ कीरत नगर, निकट डी.एम. निवास
लखीमपुर खीरी-२६२७०१ (उ.प्र.)

प्रकृति स्वयं एक काव्य है

● शीला मिश्रा

सुप्रसिद्ध लेखक-संपादक श्री कैलाशचंद्र पंत का जन्म २६ अप्रैल, १९३६ को महू (म.प्र.) में हुआ। अब तक उनकी 'कौन किसका आदमी', 'धुंध के आर-पार', 'शब्द का विचार-पक्ष', 'शैलेश मटियानी : सृजन यात्रा : संपादन', 'संस्कार, संस्कृति और समाज', 'संकल्प की प्रतीक्षा में' के साथ-साथ साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर सात सौ से अधिक आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई पत्र-पत्रिकाओं के सह-संपादक, संपादक एवं संवाददाता रहे। कई तरह के स्वैच्छिक सेवाकार्यों में भी इनकी भागीदारी रहती है। कई देशों की यात्राएँ की हैं। हिंदी की उत्कृष्ट सेवा के लिए छोटे-बड़े दो दर्जन सम्मान-पुरस्कारों से समादृत। जानी-मानी लेखिका श्रीमती शीला मिश्रा द्वारा श्री कैलाश पंत का साक्षात्कार लिया गया। यहाँ प्रस्तुत हैं उसके कुछ अंश।

सर्वप्रथम मैं जानना चाहूँगी कि लेखन के क्षेत्र में आने की प्रेरणा आपको कब और कहाँ से मिली?

मैं बचपन में जिस परिवार व परिवेश में पला-बढ़ा, वहाँ पढ़ने का ही वातावरण था। उससे पढ़ने की तरफ रुचि जागी, फिर स्कूल में मेरा लिखा निबंध हर बार कक्षा में पढ़कर सुनाया जाता था तो इससे लिखने के प्रति रुचि जागी। युवावस्था में गंभीर विषयों पर भी सोचना शुरू किया। कई बातें, जो अनुचित लगती थीं, उनके प्रति मन में उपजे विद्रोह को मैंने अपने लेखन द्वारा व्यक्त करना शुरू किया।

एक बार 'नया जीवन' के संपादक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, जो कि स्वयं लेखनी के धनी थे, एक गोष्ठी में आए, वहाँ मैंने एक निबंध पढ़ा, उन्होंने प्रभावित होकर उस निबंध को अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया, इससे मुझे प्रोत्साहन मिला।

विनोबाजी की भूदान-यात्रा चल रही थी। समर्पित स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी श्रीरामजी यादव हमारे पारिवारिक सदस्य थे। उन्होंने मुझे विनोबाजी के साथ भूदान यात्रा में साँवेर से महू तक पदयात्रा में शामिल होने को कहा। मैंने विनोबाजी के साथ तीन-चार दिन गुजारे तथा उसकी रिपोर्ट लाकर दी। तब लिखने के लिए यह पर्याप्त प्रेरणा थी।

आपका पहला चर्चित लेख कौन सा था?

प्रत्येक कॉलेज की मैगजीन में साहित्य पर केंद्रित मेरा आलेख छपता ही था। एम.ए. में मैंने पहली बार भारत की विदेश नीति पर लिखा, उसमें मैंने नेहरूजी की आलोचना की। क्रिश्चियन कॉलेज होने की वजह से परामर्शदाता प्रोफेसर ने उसे न छापने का निर्णय लिया। संपादक मेरा मित्र था, उसने कहा, 'पंत, उसमें कुछ पंक्तियाँ बदल दो।' मेरे इनकार करने पर उसने कहा, 'मैं संपादक पद भले ही छोड़ दूँ, पर तुम्हारा यह लेख जरूर जाएगा।' इस लेख का महत्त्व तब समझा गया, जब १९६२ वाली घटना घटी। नहीं तो यह माना जाता कि मैं नेहरू विरोधी हूँ, जबकि ऐसा नहीं है। केवल कुछ नीतियों पर मेरा उनसे मतभेद था।

जब क्रिश्चियन कॉलेज सौ वर्ष पूर्ण करने पर शताब्दी वर्ष मना रहा था, तब कॉलेज मैगजीन में सौ साल में छपे महत्त्वपूर्ण लेखों को एक स्मारिका में प्रकाशित किया गया। उसमें मेरा भी लेख छपा था, मुझे इसकी जानकारी नहीं थी, जबकि उस कार्यक्रम में मुझे आमंत्रित कर सम्मानित किया गया था। एक दिन अचानक क्रिश्चियन कॉलेज के एक प्रोफेसर मिलने आए, उनके साथ एक अन्य प्रोफेसर थे, जो मुझसे अपरिचित थे। बातचीत में जब उन्हें मेरा नाम ज्ञात हुआ, तब उन्होंने मुझे बताया कि आपका एक आलेख शताब्दी वर्ष की स्मारिका में छपा है। मैंने अचरज से उनसे कहा कि स्मारिका तो मुझे मिली नहीं। फिर मेरे अनुरोध पर उन्होंने स्मारिका भिजवाई। उस स्मारिका में वही लेख था, जिसको छापने में इतनी कशमकश हुई थी।

वर्तमान लेखन से आप संतुष्ट हैं? उसकी दशा और दिशा पर

आपके क्या विचार हैं?

देखिए, संतुष्टि इसमें होनी चाहिए कि लिखा तो जा रहा है। हालाँकि आज का लेखन कमजोर कहा जाता है, किंतु अपने समय में निराला, पंत, महादेवी वर्मा, बच्चन, जैसे दिग्गज रचनाकारों की आलोचना कम नहीं होती थी। इनको कमतर आँकने की कोशिश की गई थी। लेकिन आज जब हम उनको आँकते हैं, अपनी कसौटी पर कसते हैं तो ज्ञात होता है कि वे कितने बड़े रचनाकार थे। इनके गद्य व पद्य में गहराई के साथ एक निश्चित विचार रहता था। सबसे बड़ा गुण उनमें ग्रहणशीलता थी। दूसरी भाषाओं में लिखे साहित्य से भी ग्रहण करने की क्षमता थी। जब आज के लेखन से इसकी तुलना करते हैं तो निराश होना स्वाभाविक है।

आज हम किसी को कह सकते हैं कि वह निरालाजी या जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के स्तर का लिख रहा है? मैथिलीशरण गुप्तजी व माखनलाल चतुर्वेदीजी ने जिस तरह राष्ट्रीय भावनाएँ जाग्रत् कर लोगों के मन में क्रांति की आग पैदा की, आज के लेखन में वह बात नहीं है। आज का लेखन वैचारिक दृष्टि से कमजोर है। उसमें शिल्पगत नवीनता तो है लेकिन गहराई नहीं है। लेखक आत्मश्लाघा से युक्त व आत्ममुग्ध हैं। आज के लेखक अपने पूर्वज व समकालीन लेखकों को पढ़ना ही नहीं चाहते हैं। पहले जिस तरह गोष्ठियाँ होती थीं, उसमें खुलकर आलोचना भी होती थी और आलोचना करने व सहने का नैतिक बल भी होता था। शब्दों को लेकर 'सरस्वती' के संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी और अंबिकादत्त वाजपेयी के बीच काफी लंबा 'शब्द-युद्ध' चला था, पर आपस में कोई मनोमालिन्य नहीं था। इससे मालूम पड़ता है कि वे कितने विशाल हृदय थे। आजकल के लेखकों में वैसा बड़प्पन नहीं है और आलोचक में भी वस्तुनिष्ठता का अभाव है। विषय को देखकर, समझकर कवि की भावना के अंतरंग में डुबकी कैसे लगाई जाए कि जान पाएँ कि वह किस उद्देश्य से लिख रहा है, यह धैर्य ही नहीं है।

हिंदी के प्रचार के लिए आप सतत क्रियाशील हैं, इस राह में सबसे ज्यादा कठिनाइयाँ क्या हैं?

समाज की मानसिकता। जब हम अंग्रेजों से मुक्त हुए तब हमारे उत्साहित मन में यह भाव था कि अंग्रेजों के जाने के बाद अब अंग्रेजियत भी जाएगी। गांधीजी ने भी 'हिंद स्वराज' में कहा था कि अंग्रेज रह जाएँ, मुझे इसकी चिंता नहीं है, पर इस देश से अंग्रेजियत को जाना चाहिए। दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेज चले गए, अंग्रेजियत छोड़ गए। उस अंग्रेजियत को हमने अंग्रेजी के माध्यम से जिंदा भी रखा और लोगों की मानसिकता में पराधीनता के कीटाणु को कायम रहने दिया। उन कीटाणुओं का इलाज तब होता जब इस देश के लोग अपनी भाषा के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति अपने मन में गौरव का भाव जगाते। अब यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी मिलने के इतने वर्षों के बाद भी बच्चों को इतिहास में वह पढ़ाया जा रहा है, जो हमारे अतीत को धूमिल करता है, कलंकित करता है, जबकि हमारा अतीत गौरवशाली था। हम राजनैतिक दृष्टि से कुछ अंशों में पराजित हुए थे, पूरी तरह से कभी नहीं और सांस्कृतिक रूप से तो हमने पराजय स्वीकारी ही नहीं थी।

यह भी गलत प्रचारित है कि देश पूर्ण रूप से गुलाम था। जब अंग्रेज भारत से गए तो जो रियासतें बचीं, उनमें ज्यादातर हिंदू रियासतें थीं। नवाबी शासन बहुत थोड़ी रियासतों में था। इसका अर्थ यही हुआ कि मुगलों व अंग्रेजों के आने के बाद भी हिंदुओं का अधिकार बना रहा, इस बात को हम भुला देते हैं। सावरकरजी ने सिद्ध कर दिया था कि १९५७ की क्रांति ही पहला स्वतंत्रता-संग्राम था, पर उसको 'गदर' कहने की प्रवृत्ति आज भी बनी हुई है। ये बातें मानसिक जड़ता को बढ़ाती हैं। हम स्वतंत्र हुए, लेकिन स्वतंत्र रूप से सोचने की न हममें क्षमता है और न हम उस योग्य हो पाए। आज एक बड़ा वर्ग मानता है कि हिंदी में बात करना पिछड़ेपन की निशानी है तो हिंदुस्तान की संस्कृति की बात करना भी पिछड़ेपन की निशानी कहलाएगी। इसलिए जब तक हमारे मन में अपनी भाषा के प्रति गौरव का भाव नहीं आएगा, तब तक समाज नहीं बदलेगा। हम सरकार को क्यों दोष दें! अंग्रेजी पढ़े बिना भविष्य नहीं है, इस बात को अगर समाज खारिज कर दे तो सबकुछ बदल जाएगा। नौकरी में अंग्रेजी की जरूरत है किंतु कितने प्रतिशत लोगों को नौकरियाँ मिल रही हैं? अधिकांश लोग अपना कारोबार, खेती या कारीगरी कर रहे हैं। उन लोगों पर अंग्रेजी का बोझ डालकर हम उन्हें ज्ञान के अन्य क्षेत्रों से वंचित कर रहे हैं तो देश कैसे विकसित होगा? सबसे बड़ी कठिनाई समाज की मानसिकता की है। इस मानसिकता को जब तक नहीं बदलेंगे, तब तक हिंदी का रास्ता आसान नहीं होगा।

ज्वलंत समस्याओं पर लिखे हुए आपके लेख काफी चर्चित हुए हैं। अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बताइए।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि लिखते समय आपको किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता से मुक्त होना होता है। जो है, केवल वही नहीं देखना है बल्कि यह क्यों है, इस यथार्थ को जानना है? यथार्थ का चित्रण तो किया जा सकता है लेकिन यथार्थ क्यों है? समाज में व्याप्त बुराइयों की जड़ कहाँ है? उसकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। जैसे संयुक्त परिवार का चलन अब समाप्ति के कगार पर है, जबकि सच यह है कि किसी भी सदस्य के दु:ख-सुख में संयुक्त परिवार सामूहिक रूप से जवाबदारी उठाता था। इससे सुरक्षा का भाव हमेशा बना रहता था किंतु उस परिवार को तोड़कर एकल परिवार की बात की गई, यानी परिवार की परिभाषा हमारे यहाँ जो व्यापक थी, उसमें धीरे-धीरे ऐसा जहर बोया गया कि लोगों के मन में आपसी भेदभाव पैदा हो गया। लेकिन संयुक्त रूप से न रहते हुए भी संयुक्त भावना को तो बनाए रखा जा सकता है। इसके लिए जरूरी था कि हम अपने संस्कारों को अपने पारिवारिक संस्कारों से जोड़कर रखते। आज के बच्चों को यह पता नहीं कि उनके पूर्वज कौन थे, कहाँ रहते थे, कहाँ से आए, जबकि हमारे यहाँ कोई अनुष्ठान होता है तो पूरे सात पूर्वजों के नाम लेकर पहले उन्हें श्रद्धापूर्वक याद किया जाता है। यही तरीका है अपने पूर्वजों के साथ तथा अपनी जमीन से जुड़े रहने का।

हमारे यहाँ के ऋषियों ने चार धाम की यात्रा निकाली। धार्मिक

भाव के साथ-साथ हम अपने देश व समाज को भी समझ लेते हैं और यह अनुभव होता है कि मैं कितने बड़े परिवार का हूँ। इस भावना ने राष्ट्र की भावना को जन्म दिया अर्थात् राष्ट्र के पीछे एक सांस्कृतिक भाव काम करता है। इस सांस्कृतिक भाव को जगाए रखना बहुत जरूरी है। इसको दृष्टिगत रखते हुए जब लिखा जाता है तो परिवार, समाज, देश और विश्व के यथार्थ का सही विश्लेषण करने की क्षमता आती है और हम वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर पाते हैं।

मनुष्य की बुद्धि तो काम करती है लेकिन मनुष्य के भीतर एक विवेक होता है, जो कि अनुभूतिजन्य ज्ञान है, जिसे हम 'छठी इंद्रिय' कहते हैं, यह आपको बता देती है कि क्या सच है, क्या झूठ है। इसके लिए एकाग्रता चाहिए। आप गौर से किसी बात पर ध्यानपूर्वक सोचेंगे तो उसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे, जिस निष्कर्ष पर कोई बड़े-से-बड़ा विद्वान्, कोई विशेषज्ञ पहुँचेगा। बशर्ते आप उस पर पूरा ध्यान केंद्रित हो, एकाग्रता हो। मैं अपने लेखन में यह कोशिश करता हूँ कि जब मैं लिख रहा हूँ तो मैं नहीं होता। मैं यह मानकर चलता हूँ, कोई अन्य मुझसे लिखवा रहा है और मैं लिख रहा हूँ।

वर्तमान में राष्ट्र के समक्ष खड़ी समस्याओं का आकलन आप एक पत्रकार होने के नाते किस तरह करते हैं?

समाज की कमजोरियाँ ही राष्ट्र की कमजोरी बन जाती है। अगर हम परिवार को सुदृढ़ करेंगे तो समाज सुदृढ़ होगा, जब समाज को सुदृढ़ करेंगे तो राष्ट्र सुदृढ़ होगा। हम अपने सांस्कृतिक भाव में उतरते हैं, जब कहा जाता है कि आप अपने पूर्वजों की याद करो तो श्रीराम की याद आती है, श्रीकृष्ण की याद आती है। राम के बचपन का खेलकूद, कौशल्या माँ के सामने उनका नटखटपन, उनका वन-पथ-गमन और श्रीकृष्ण की लीलाएँ सब कल्पना रूप से आपके सामने आ जाती हैं। यह है अपने आपको इतिहास से जोड़ना। इसी तरह जब आप वर्षों बाद अचानक अपने गाँव लौटते हैं तो क्या विचार आता है कि मैं किस खानदान का हूँ? मेरे पूर्वज कौन थे? वे किन परिस्थितियों में जीते थे यानी एक बहुत विराट् धरातल पर आप उतर जाते हैं। यह रागात्मकता ही राष्ट्र के मनोभाव को जाग्रत् करती है।

अगर पूरे राष्ट्र के सांस्कृतिक परिदृश्य के साथ हम अपने को जोड़ते हैं तो राष्ट्र के प्रति हमारी आस्था ज्यादा सुदृढ़ होती है। सांस्कृतिक मूल्यों पर खड़े इस राष्ट्र पर हजारों आक्रमण हुए, इसे क्षत-विक्षत करने की कोशिशें हुईं, साजिशें रची गईं, फिर भी हम अपनी जगह खड़े हैं। इतने साल का इस्लामी शासन, ढाई सौ वर्षों का ब्रिटिश शासन, जिसमें केवल राजनैतिक दबाव ही नहीं था, उनके द्वारा संरक्षित मजहबों का, उनके द्वारा संरक्षित रिलीजनों का दबाव हम पर जारी था, लेकिन सांस्कृतिक रूप से हम पराजित नहीं हुए, केवल राजनैतिक रूप से हारे थे।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भी कुछ गलती की। संविधान बनाते हुए राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान की बात की, लेकिन राष्ट्र की ही बात नहीं की। संविधान के अनुसार तो भारत संघात्मक राज्य है, जिसे विभिन्न राज्यों का समूह या संगठन कहते हैं। अब राष्ट्र होना और विभिन्न राज्यों का एक संघ होना, इसमें बड़ा फर्क है। अगर हम सांस्कृतिक राष्ट्र की गणना करते हैं तो पड़ोसी को भी हम अपने परिवार का अंश समझते हैं। अगर एक उद्योग बंगाल में तथा दूसरा तमिलनाडु में खुल रहा है तो उसमें मेरे भारत की ही आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है किंतु दुर्भाग्यवश लोगों की ऐसी मानसिकता नहीं है। भाषा के आधार पर विरोध है। राज्यों में परस्पर पानी व बिजली के बँटवारे को लेकर व उद्योग खोलने को लेकर झगड़ा है, जबकि सांस्कृतिक धरातल पर हम एक हैं। राष्ट्र तो तभी टिका रहेगा, जब हम सांस्कृतिक आधार पर जीएँ। महर्षि अरविंद ने कहा था, राष्ट्र कोई सामान्य भूखंड नहीं होता। उन्होंने उसको 'भवानी' की उपमा दी थी, 'ये तो चतुर्भुजा भवानी है।' महर्षि अरविंद का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इसी संदर्भ में मैं यह भी बता दूँ कि कुछ धारणाएँ गलत भी हैं। जैसे हिंदू संप्रदाय; सुप्रीम कार्ट ने भी अपने निर्णय में हिंदू को कोई मजहब, कोई धर्म नहीं माना, एक जीवन-शैली माना है। १९१४ के आस-पास भारत आए एक अंग्रेज सैनिक अधिकारी ने पूरे देश का भ्रमण किया। वह सुनकर आया था कि हिंदू, हिंसक व क्रूर होते हैं, लेकिन उसे हिंदू ऐसे नहीं लगे। इसकी खोज में वह नेपाल, तिब्बत, कोरिया, बर्मा, लंका, बनारस, सब दूर गया और अंततः उसने हिंदुओं को परिभाषित किया, ''इफ आय टॉक आई विल डिफाइन हिंदुज्म, इट इज नेशनल एक्सप्रेशंस ऑफ एथिक्स।'' यह नैतिकता की राष्ट्रीय अभिव्यक्ति है। नैतिकता वही है, जो हमारे ऋषियों ने सिखाई। सच बोलो, तप करो, अन्याय मत करो, सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना से रहो। ये सारी बातें हमारे संस्कारों में डालने की कोशिश की जाती रही है। पूरे देश की जनसंख्या को एक साथ संस्कारित करने की प्रक्रिया चल रही थी, तभी विदेशी आक्रमण हो गए। यह अवरोध हुआ तो निश्चित है कि समाज में विकृति आएगी। कुछ दूसरों के प्रभाव, कुछ अपनी आत्मरक्षा की भावना से आईं। उन विकृतियों के कारण जो सामाजिक विकृतियाँ व बुराइयाँ हैं, वे हमारी संस्कृति, दर्शन या चिंतन की देन नहीं हैं। वे राजनैतिक दबाव और परिस्थितिवश हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यथार्थ का चित्रण करते हुए कारणों का विश्लेषण करना जरूरी है। तल की गहराई के लिए डुबकी लगानी पड़ती है।

व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों का अभाव है, इसमें साहित्य क्या भूमिका निभा सकता है?

साहित्य का मतलब क्या है—समग्रता से हित की साधना करना। समग्रता में पूरी मानवता व पूरी सृष्टि आती है। इसीलिए वेदों को वैदिक साहित्य कहते हैं। साहित्य शब्द नया है, हमारे यहाँ तो काव्य कहा गया है। प्रकृति स्वयं एक काव्य है। जब आप कोयल की कूक सुनते हैं, झरने व प्रपात की झर-झर ध्वनि सुनते हैं, बहती हुई नदी का कल-कल नाद सुनते हैं, तब उसमें वही रस आता है, जो किसी संगीत को सुनने में आता है। इसलिए प्रकृति के साथ सामंजस्य रखते हुए जीवन को आनंदमय बनाना चाहिए। यही आर्य सभ्यता है और वैदिक ऋषि का संदेश भी है। जीवन में आनंद अनुभूतियों से आता है, अंदर से आता है। बाहरी चीजों

से अगर आनंद आता तो सबसे ज्यादा आनंदित लोग तो अमेरिका में होने चाहिए, जबकि सबसे ज्यादा दु:खी वहाँ का समाज है। वहाँ बच्चे स्कूलों में गोली चला देते हैं, अपने साथियों की हत्या कर देते हैं। यह पाशविकता आ रही है। यही फर्क है। भौतिकता आपको पाशविकता की ओर ले जाती है और आध्यात्मिकता आपको मनुष्यत्व से देवत्व की ओर ले जाती है। अच्छा साहित्य हमें नैतिक मूल्यों व परस्पर सहयोग की भावना पर टिके रहने का संदेश देता है।

नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श की निरंतरता कितनी उपयोगी हो सकती है?

यह बहुत उपयोगी है। प्रत्येक समाज में अगर कुछ व्यक्ति पतित, अत्याचारी हैं तो वहाँ कुछ विवेकशील लोग भी होते हैं और उनका यह कर्तव्य है कि पथभ्रष्ट होते समाज को सही दिशा प्रदान करें। इससे समाज कभी-न-कभी तो सुधरेगा। हमारे यहाँ बच्चों को बचपन से वाल्मीकि कथा सुना दी जाती थी कि वे डाकू थे। भले ही न रहे हों, क्यों सुनाई गई? डाकू भी सुधरकर एक महाकवि हो सकता है; आदिकवि की उपाधि प्राप्त कर सकता है। रामायण जैसा ग्रंथ आज तक नहीं लिखा गया। कितना विराट् चरित्र हमारे सामने है, जो हमारा आदर्श बन गया। परमश्री, परमशक्ति, परम सौंदर्य से युक्त शीलसमन्वित पुरुषोत्तम श्रीराम हमारे सामने आ गए। उस महाकवि ने कितना बड़ा आदर्श हमारे सामने खड़ा कर दिया। इसीलिए इस तरह के विमर्श अगर जारी रहेंगे तो कहीं-न-कहीं तो बदलाव आएँगे।

ऐसा माना जा रहा है कि साहित्य से लोक-संस्कृति विलुप्त होती जा रही है। उसको बचाने के लिए क्या प्रयास किए जाने चाहिए?

मैं तो इससे पूरी तरह सहमत नहीं हूँ, क्योंकि लोक-साहित्य और साहित्य में कोई भेद नहीं है। आज साहित्य में लोक-साहित्य की बड़ी चर्चा है। हमने इसमें भेद किया है जैसे—नारी लेखन, दलित लेखन और अन्य लेखन। लेखन तो सब एक ही है, साहित्य के अंतर्गत है। यह दृष्टिकोण है—दलित दृष्टिकोण, नारी दृष्टिकोण, पुरुष दृष्टिकोण से किया गया लेखन। इसलिए हम टकरा रहे हैं। जो संघर्ष है, वह हमारी नासमझी के कारण है। स्वयं को खाँचों में बाँधकर हम लोक-साहित्य को अलग देखने लगे। किसी लेखक की कृति को भी हम किसी खाँचे में बाँधकर देखते हैं। जो लिखा जा रहा है, उसका तत्त्व विवेचन करें तब तो बात है। इसीलिए खाँचों में बँधे लेखक हाशिए पर चले गए हैं और जो अपने सांस्कृतिक मूल्यों पर, जीवन के सनातन मूल्यों को लेकर लिखते रहे, वो आज पुन: जीवित हो रहे हैं। उनका हम शताब्दी वर्ष मनाते हैं, उनको याद करते हैं, उनके साहित्य को पढ़ते हैं, उद्धृत करते हैं। यह फर्क है। जो खाँचों को तोड़ते हैं, वे कालजयी होते हैं। जो खाँचों में बँधकर चलते हैं, वे समयबद्ध हैं, कुछ दूर तक प्रवाह होता है फिर सूख जाते हैं या सड़ जाते हैं।

'दादा आपसे बात करके बहुत अच्छा लगा, प्रणाम!'

'मुझे भी, खुश रहो!'

साअ

बँगला नं. ४, सेक्टर-२
रॉयल रेजीडेंसी, बावड़िया कला,
थाना शाहपुर के पास
भोपाल-४६२०३९ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९९७७६५५५६५

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

चंदा और चाँदनी

● आमलपूरे सूर्यकांत विश्वनाथ

चंदा उस रोज फिर से ऑफिस देर से पहुँचा। सुबह साढ़े आठ बजेवाली बस छूटने से सब गड़बड़ हो जाता है। रोहा से निकलनेवाली साढ़े आठ बजेवाली वही बस, जिसमें उसे चाँदनी मिली थी। पहली बार कई बरस पहले, उस वक्त, जब चाँदनी बस के कंडक्टर से छुट्टे पैसों के लिए लड़ रही थी। उसी पहली नजर से चंदा चाँदनी पर मर मिटा था। क्योंकि चाँदनी सूरत से भी चाँदनी थी। कोई भी मर मिटे ऐसा सौंदर्य चाँदनी का था। पहली बार देखना और मुलाकात होना। उनके लिए प्रेम का संदेश था। चार दिन दोनों रोज सुबह रोहा से निकलने वाली उसी बस में आना-जाना शुरू हुआ। एक-दूसरे को फोन करने लगे। एक-दूसरे की जगह पकड़ने लगे। एक मोबाइल से गाने सुनने लगे, मेसेज देखने लगे और उनकी मुलाकात लंबी एवं बातचीत होने लगी। लगता है कि वे जनम-जनम के साथी बने। चंदा गाना भी गुनगुनाने लगता है। 'जनम-जनम का साथ है तुम्हारा हमारा।' हमारी दोस्ती कभी नहीं टूटेगी। चाँदनी भी गाना गुनगुनाती है, 'हम ऐसे करेंगे प्यार कि दुनिया याद करे।'

एक दिन चंदा चाँदनी से पहलेवाले स्टॉप पर उतर गया। उसी के साथ चाँदनी भी उतर गई। चाँद का पीछा करने लगी। फिर चाँद रुक गया। उसने पूछा, ''कुछ कहना है?'' चाँदनी बोली, ''हाँ, कहना है।''

चाँद ने कहा, ''कहो क्या है?''

चाँदनी जोर से हँसी, बहुत जोर-जोर से हँसने लगी। जैसे जेठ की वह चटख सुबह अमलतास और गुलमुहरों सी गमक उठी। चंदा के दिल की धड़कनें बेकाबू हो रही थीं। उसने इस तरह पहले कभी महसूस नहीं किया था। उसे लग रहा था कि अभी उसका दिल उछलकर बाहर आ जाएगा।

'चल जा तू, तुझसे सँभलेगा नहीं' कहकर चाँदनी वापस हो चली। चाँद उसे जाते हुए देखता रहा। उसका जी चाह रहा था कि उसे रोक ले। उसके कदमों में गिर पड़े, उसके कंधे पर सिर रखकर खूब रोए। लेकिन एटीट्यूड भी कोई चीज होती है। वह उसके पीछे नहीं गया। ऑफिस पहुँचा तो देर हो चुकी थी। बॉस की डाँट पड़ी, लेकिन उसे सुनाई नहीं दी। दोस्तों ने उसे पुकारा, लेकिन वह आगे बढ़ता गया। फाइलें निपटाईं, लेकिन उनमें क्या निपटाया, खुद चंदा को पता नहीं था। चाँदनी के सिवाय चंदा का मन कहीं नहीं लगता, आठों पहर उसका ही चेहरा मँडरा रहा था।

सारा दिन चंदा अगली सुबह का इंतजार करता रहा। बार-बार चाँदनी के कहे शब्द 'चला जा तू तुझसे नहीं सँभलेगा' कानो में झनझनाने लगे। वह मुसकराता भी और दर्द से तड़पता भी। एक ही वक्त में इतना सुख और इतना दर्द वह पहली बार महसूस कर रहा था। अकसर हम फिल्मों में देखते हैं कि ऐसे मौके पर सिर्फ सुख ही होता है।

सुबह उठते ही ताजगी और नई ऊर्जा महसूस होती है। चंदा का दिल खुश रहता है, फिर मन में गाना गुनगुनाता है—'हम ऐसे करेंगे प्यार कि दुनिया याद करे।' सुबह का नाश्ता लेकर फिर सारे काम करता है। जब मैं कपड़े धोकर बालकनी में सुखाने जाता हूँ तो लगता है, चाँदनी मुझे कही से देख रही होगी। किचन में चाय बनाता हूँ, तो महसूस करता हूँ उसकी निगाहों को। हर वक्त लगता है, वह करीब है, मुझे देख रही है। मुझे बाँहों में ले रही है। इन्हीं विचारों और कल्पनाओं में डूबता-उतराता कब मैं ऑफिस के लिए तैयार भी हो जाता हूँ, पता नहीं चलता। बस कपड़े पहनने मे थोड़ा समय लगता है, खयाल रखता हूँ कपडों का आजकल। क्योंकि चाँदनी कहीं-न-कहीं मुझे देख रही है और मेरे बारे में उसे सबकुछ अच्छा लगे, इसलिए मैं सब काम करता हूँ, सिर्फ मेरी चाँदनी के लिए।

अगले दिन बस में अचानक चाँदनी किसी से सीट के लिए लड़ती मिली। मैं उसे एकटक देख रहा था। फिर वहीं चाँदनी की बात कान में झनझनाने लगी कि 'मुझसे नहीं सँभलेगा।' चाँदनी हँस दी।

चाँद घबरा गया चाँदनी की हँसी जादुई थी। कल की हँसी अब तक उस पर ताजी थी। लेकिन आज चाँदनी की हँसी में नदियों का सा वह वेग नहीं था। आधे खिले पलाशों सी मादकता थी।

एक रोज जब चंदा हॉटल प्रभाकर में चाँदनी को कॉफी पिलाकर लौट रहा था तो चाँदनी ने कहा, ''सुनो, इस बार हमें न बिछड़ना है, न मरना है, न रोना है। बस हँसना है। जीना है समझे तुम।'' ''हाँ, समझता हूँ।'' कहकर चाँद ने उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा। दोनों ने वॉट्सअप नंबर फिर से सेव किए और प्यार की पींगें बढ़ाने लगे। कई बार दोनों फिल्म देखने बड़े मुंबई में भी जाते रहे। एक बार फिल्म देखते हुए उसने चाँदनी का हाथ चूमना चाहता तो चाँदनी ने मना कर दिया। वह झट से अपना हाथ झटक देती है। चाँद एकदम रुआँसा हो जाता है। तब चाँदनी उसे बच्चे की तरह लाड़-प्यार करने लगती है। यह फिल्म समाप्त होने तक एक-दूसरे से रूठना, ऐंठना, हँसी-मजाक चलती रहती है। फिल्म छूटने के बाद दोनों की उँगलियाँ उलझ जातीं आपस में और भीतर कोई तूफान उछालें मारता, जैसा कि हमेशा से होता आया है। चाँद व चाँदनी का सुख दुनिया की नजर में आ गया है।

कई दिनों के बाद चाँद चाँदनी से ब्याह करके उसे घर ले आया था। सेल्फी लेकर हनीमून-शनीमून निपट गया। फेसबुक अपडेट हो गया—चाँद मैरिड विद चाँदनी। लाइक-शाइक का ढेर लग गया और चाँद वापस नौकरी पर चला गया। काम-धाम सँभाला, भूली-बिसरी दोस्ती-यारी याद आई, जिंदगी पटरी पर आई। लेकिन पटरी पर चले तो साली काहे की जिंदगी। चाँदनी को घर का काम एकदम पसंद नहीं था। न झाड़ू, न पोंछा, न बरतन, न खाना।

इधर नई शादी का बुखार उतरा, उधर सासू माँ के प्रेम का। चाँदनी सुबह दस बजे उठती, चाँद जा चुका होता था जब तक ऑफिस। चाँदनी को उठते ही सासूजी का चेहरा फूला मिलता। चाँदनी उठकर इधर-उधर टहलती, अखबार पढ़ती, रसोई में जाती, जो मिलता वह खा लेती, चाय है तो भी पी लेती, नाश्ता बनाया है तो वह हड़प करती। फिर किताब खोलकर पन्ने उलटती। चाँदनी को पढ़ने का बहुत शौक था ही, इसलिए शादी होकर ससुराल आते समय ढेर सारी किताबें लेकर आई थी। न जाने क्या पढ़ती रहती है दिनभर, हर वक्त। चाँद ने उसे लैपटॉप भी माँगकर दिया था। गाने का शौक तो बचपन से ही था। वह अकसर दूर किसी पहाड़ी गाँव में बच्चों के लिए संगीत का एक स्कूल खोलने की फैंटेसी को जिया करती थी। खेतों में, गलियों में, पहाड़ी पगडंडियों पर बच्चों की खिलखिलाहटों का कूजन उसके जेहन पर दबे पाँव दस्तक देता। कई बार ऊपरवाले माले पर एक कमरे में हारमोनियम के साथ घटों बंद रहती।

चाँद के ऑफिस से आने तक दिनभर का उसका यह व्यवहार सास को कभी अच्छा नहीं लगता, क्योंकि सास हमेशा चाहती थी कि वह घर के काम में हाथ बँटाए, खाना बनाए, बरतन एवं कपड़े धोए और बचे समय में अपना शौक पूरा करे। परंतु एकदम उलटा हो गया था। इससे सास परेशान हो जाती थी। इसी बीच एक दुर्घटना घट गई थी कि चाँदनी प्रेगनेंट हो गई। इस बात पर खूब हंगामा भी हुआ। हमेशा चाँद को कहती है, इस बात का खयाल आपने क्यों नहीं रखा?

चाँद बोला, ''तुमको बच्चा नहीं चाहिए तो तुमको ही खयाल रखना चाहिए न।'' चाँदनी गुस्से से एकदम बबक गई और कहा, ''पति नहीं हो तुम, समझे। चाँद हो चाँद, जो हमको नहीं पसंद, उसका खयाल तुमको क्यों नहीं रखना चाहिए।''

यह सुनकर चाँद हड़बड़ा गया। अचानक उसे ब्रह्मास्त्र मिला और ''जो मुझे पसंद है, उसका खयाल कौन रखेगा?'' ''अरे, मैं रखूँगी और कौन रखेगा, लेकिन खयाल रखने के नाम पर खाना बनाना, बरतन धोना मत ले आना बीच में, प्लीज खयाल रखना इन सबसे काफी बड़ी चीज होती है।'' यह चाँदनी ने कह डाला था। चाँद हथ्थे से उखड़ गया और कहने लगा, ''खाना-बरतन न लाना, बच्चा न लाना, तो क्या लाना बीच में?'' चाँदनी ने कहा, ''तो तुम मुझसे खाना बनवाने, बरतन धुलवाने को ब्याह के लाए थे? क्या यही सपना तुम मेरा पूरा करोगे? ब्याह से पहले कहता था कि मैं फूलों की तरह सभालूँगा, किसी बात की आँच न आने दूँगा। यही थे तेरे मीठे-मीठे बोल? क्या यही प्यार का मतलब है, ब्याहकर बच्चे पालना और घर में दिनभर काम करते रहना। अरे, मेरे सपनों को तूने चकनाचूर कर दिया। मैं प्रदीप को पहले कितनी अच्छी लगती थी। अब मेरा क्या हाल हुआ है। हे ईश्वर! मुझे बचा ले। हे ईश्वर मुझे बचा ले!''

चाँद कहने लगा, ''यह क्या बात हुई यार, प्यार किया, यह सब प्रदीप की जिंदगी में होगा भी न।'' चाँदनी कहती है—''नहीं, कोई जरूरी नहीं है। मैंने सोचा था कि हमारे प्यार के बीच घर, घर के कामकाज, बच्चा इसलिए नहीं आएगा, क्योंकि ऐसा ही होता है। वह सब हमारी अपनी इच्छा से होगा।''

चाँद का मूड ऑफ हो गया वह सिगार सुलगाता रहा, शराब की कई बोतल भी पास में रखने लगा। उसका चेहरा उदास होने लगा, ऐसा लगता है कि अब उसकी जिंदगी सिगार में ही गुजरेगी।

चाँदनी ने खुद एक निर्णय लिया और डॉक्टर को बुलवाकर अबॉर्शन करवा डाला। उदास चाँद ने सिर्फ इतना ही कहा, ''माँ को मत बताना, उन्हें दुःख होगा।''

चाँदनी बोली, ''बताऊँगी, क्योंकि मैंने झूठ बोलनेवाला कोई काम नहीं किया है।'' फिर चाँद उदासी में मूड ऑफ होकर सिगरेट एवं शराब के साथ रहने लगा। कुछ दिन अबोला रहा, घर में अब काम करने के लिए, खाना बनाने के लिए सुनीता आने लगी थी, इसलिए वक्त पर खाना-नाश्ता मिलने लगा था।

एक दिन चाँद ने अच्छे मूड़ में शाम की चाय के वक्त कहा, ''सुनीता को हम महीने के ढाई हजार देते हैं। इन्हीं कामों में मुझे झोंकने को आप दोनों माँ बेटे पीछे पड़े थे।''

चाँद को माँ ने जरूर कहा, ''बात तो सही कही तूने बेटा। हम औरतों को पता भी नहीं चलता कि ये छोट-छोटे और चौबीस घंटे उलझाए रखनेवाले काम हमारा कितना खून पीते हैं। कैसे हम उम्र के आखिरी मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते कटखनी औरतें बनने लगती हैं।'' चाँद इस बात को सुनकर चौंक गया और बोला, ''अम्मा, यह तू कह रही है, तू जो हमेशा कामवाली बाई लगाने के खिलाफ रही। तू जो मेरा जीना हराम किए रही कि दिनभर चाँदनी घर में पड़ी-पड़ी या तो पढ़ती रहती है या टी.वी. देखती है या घूमने चली जाती है।'' ''हाँ, क्योंकि मुझे पता नहीं था कि जीना क्या होता है। तेरे पापा की खुशी, घर सँभालने, तेरा खयाल रखने को ही जिंदगी मानते-मानते आज मैं कैसी हो गई हूँ। हर किसी में खोट निकालती हूँ। सारे दिन घर के काम करती हूँ और शाम को घरवालों पर चिड़चिड़ाती हूँ।'' यह कहते-कहते अम्मा की आँखें भर आईं।

अम्मा कहती है, ''बहू मुझे जीना सिखा रही है। अब हम दोनों जाती हैं नाटक देखने। कभी-कभी तेरे पापा के साथ फिल्म भी देख आई हूँ।''

चाँद कहता है, ''हो क्या रहा है घर में।''

चाँदनी मुसकराई, कहने लगी, ''चाँदजी, जिंदगी काटनी नहीं है, हमने जीनी है, समझे आप।''

''घर में बैठकर क्या करोगी, बच्चे भी नहीं, काम नहीं; करना क्या है? बच्चे भी नहीं चाहिए, वह भी कामवाली बाई से ही पैदा करा लें। ''वैसे यह आइडिया भी बुरा नहीं है।'' चाँद को देखकर धीरे से आँख दबाई। यह अम्मा ने देख लिया और अम्मा हँस दी। चाँद बाईक निकालने लगा। सारे रस्ते चाँदनी उसे छेड़ती रही, वह मुँह फुलाए रहा। हालाँकि 'आएगा बच्चा जब दोनों का मन होगा।' यह सुनकर उसे थोड़ी गुदगुदी भी हो रही थी और राहत भी महसूस हो रही थी।

एक दिन चाँद ऑफिस से परेशान होकर वापस घर आया। चाँदनी उस वक्त घर पर नहीं थी। वह अम्मा के साथ मार्केट गई थी। उसका बुझा मन और बुझ गया। पापा टी.वी. पर कोई सीरियल देख रहे थे।

घर में आकर पापा से कहा, ''पापा, चाँदनी और माँ कहाँ गई हैं?''

पापा ने कहा, ''पता नहीं, बहुत पहले घर से निकली हैं।'' चाँद को चाय पीने की बहुत इच्छा हुई। स्वयं चाय बनाने रसोई घर में गया। चाय का पानी चढ़ाते हुए उसे जाने क्यों चाँदनी की याद आने लगी थी। एकदम रोना भी आने लगा था। बहुत दिन बाद उसका जी चाहा कि चाँदनी की गोद में छिप जाए।

पापा को भी चाय देकर बाहर बरामदे में आकर खड़ा हुआ। बेसब्री से चाँदनी का इंतजार करने लगा। चाँदनी और अम्मा मार्केट से लौटकर आई थीं। अम्मा पापा से बात कर रही थी कि सुनीता कुछ दिन से छुट्टी पर है तो खाना माँ और चाँदनी मिलकर ही बनाएँगी।

चाँदनी अपने कमरे में आ गई, जहाँ चाँद लेट गया था। वह चुपचाप कपड़े बदलकर रसोईघर में चली गई। चाँद सोने का बहाना बनाए लेटा रहा था। उसका जी चाहा कि उसे पुकारे, आवाज दे, लेकिन वह चुप रहा।

अम्मा ने खाना खाने के लिए बुलाया, चाँद डाइनिंग टेबल पर खाना खाने बैठा, भरवाँ करेला, दाल फ्राई, रोटी, चावल, सूखी भिंडी। टेबल पर यह खाना लगाया गया था।

पेटभर खाना खाकर सब सो गए थे। चाँद ने चाँदनी से सिगरेट की माँग की, परंतु उसने मना किया तो चाँद का मूड बिगड़ गया। चाँद फिर से कहने लगा, ''क्या हुआ, सिगरेट तो पीने दो, क्योंकि मेरा मूड ऑफ हो गया है। मुझे अपनी जिंदगी उदास लगने लगी है। तब मैं इस सिगरेट का ही सहारा लेता हूँ।'

''चाँदनी, तुम भी तो मेरे साथ कई बार सिगरेट पीती थी न?''

तब चाँदनी कहती है, ''तो अब मैं बड़ी हो गई हूँ राजाजी, कभी-कभार अकेले भी निपटा लेती हूँ।'' चाँदनी ने झट से छिपी हुई सिगार चाँद के हाथ में दी। आखिर चाँद को सिगरेट मिल गई थी। उसने आँखें चमकाते हुए कहा।'' सिगरेट सुलगाई, दो कश लिये और सिगरेट चाँदनी के होंठों में दबा दी।

''मुझे पता है, तुम्हें उसकी जरूरत है। अब बोलो, क्यों परेशान हो?''

तब चाँद कहता है, ''मेरे ऑफिस में जो मंजरी मैम हैं न, उन्होंने अपने पति को डिवोर्स दे दिया है।'' चाँदनी कहती है, ''वाह, यह तो बहुत अच्छी बात है।'' चाँद ने कहा, ''तुमको यह बात अच्छी क्यों लगी?'' चाँदनी कहती है, ''इसमें क्या बड़ी बात है। औरत ने मर्द को तलाक दिया, क्या तलाक हो रहा है ये?'' चाँद ने कहा, ''दोनों ही तलाक दे रहे हैं। नहीं दोनों की ही बातें ठीक हैं, यार समझ, औरत है, तलाक देने का फैसला आसान नहीं होता। इसके बाद उसका जीवन मुश्किल ही होगा, फिर भी उसने यह रास्ता चुना है तो उसके साहस की तारीफ करनी ही होगी।''

चाँदनी कहती है, ''चाँद मुझे छोड़कर कहीं मत जाना। बड़े-बड़े देशों में ऐसी छोटी-छोटी बातें होती हैं। मगर अपने दांपत्य जीवन में ऐसा कभी नहीं होने दूँगी।''

चाँदनी फिर कहती है, ''मैं चाँदनी हूँ, शादी के बाद भी चाँदनी ही बनकर रहना चाहती हूँ। तुम मुझे पत्नी बनाने पर तुले रहते हो, पत्नी तलाक दे सकती है, पति तलाक दे सकता है, धोखा दे सकते हैं एक-दूसरे को, लेकिन चाँद-चाँदनी नहीं।''

चाँद कहता है, ''मैं समझ गया मेरी प्यारी चाँदनी, सब समझ गया हूँ। जाने दो, होता रहता है।'' दूसरे दिन मुझे आश्चर्य हुआ कि

बिना फोन किए मेरे ऑफिस के तीन दोस्त आकर मेरे सामने खड़े हो गए। उन्होंने कहा, अंदर भी नहीं बुलाओगे क्या? मैं प्रश्नसूचक भाव से उनको देखता रहा और कहा, ''हाँ, आ जाओ न दोस्त, लेकिन आज अचानक ऐसे कैसे आप लोग आ गए, आप तो सभी अगले शनिवार को आनेवाले थे न?''

उसमें से एक ने कहा, ''हाँ, लेकिन हमने सोचा कि आप ऑफिस नहीं आ रहे हो, क्या गड़बड़ी चल रही है? कुछ टेंशन तो नहीं है न? क्योंकि आजकल आप उदास दिखते हो, कहीं सिगार तथा शराबखाने में नजर आते हैं। क्या हुआ है घर में, भाभी के साथ झगड़ा तो नहीं हुआ? या और कोई कारण होगा?''

चाँद कहता है, ''अरे दोस्तो, क्या बताऊँ, मुझे ऑफिस आने का मन नहीं कर रहा है। मैं अब कुछ दिन सुनीता के साथ समय बिताना चाहता हूँ। जो हमारे घर में काम करती है। खाना-वाना बनाती है। सबका खयाल रखती है। अब मेरी जिंदगी सुनीता बन गई है। पूरा प्यार अब सुनीता पर ही बरसा है। चाँदनी का दिल कम हो गया है।

''सुनीता के साथ घंटों-घंटों नदी किनारे बैठने का मन करता है। जब भी मैं ऑफिस आता हूँ, उसकी ही तसवीर मेरे सामने खड़ी होती है। ऑफिस छूटने के बाद मैं सुनीता के पीछे घंटों नदी किनारे बैठना चाहता हूँ। अगली शाम मैंने निश्चय किया कि जब तक सुनीता नहीं आती, मैं नदी के किनारे से नहीं हटूँगा।'' चाँद सुनीता के इंतजार में वहीं बैठा रहा। तभी एक बड़ा जोर का धमाका हुआ।

नदी किनारे एक बाईक खड़ी मिली, बहुत सारे लोग नदी की ओर आने लगे थे। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है। आवाज कैसी आ रही है।

तब अचानक नदी दृश्य मेरे सामने दिखाई दिया, जो मेरे दिल को बड़ा धक्का दे गया। गोताखोरों ने चाँदनी की लाश निकालकर मेरे सामने रख दी। जब मैंने चाँदनी को देखा तो मेरे आँसू अपने आप बहने लगे, तब याद आया चाँदनी का प्यार पहला प्यार है। जो हमारे घर की मेरी पत्नी है, मैं उसे छोड़कर सुनीता के साथ भागने की कोशिश कर रहा था। परंतु प्यार का अंत चाँदनी ने किस प्रकार किया, इसका जिम्मेदार मैं हूँ, मैं खुद चाँद, सिर्फ चाँद।

साअ
श्री नारासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय
गोवे कोलाड, ता. रोहा
जिला : रायगढ़-४०२३०४ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९४२१४५१७०३

माया के बाजार में

दोहे

● श्रीप्रकाश सिंह

मुरली तू कैसे बनी, मोहन की अति खास।
श्याम-अधर पर लेट के, अद्‌भुत करती रास॥

मन से मानव ताड़-सा, खार हुआ व्यवहार।
सबके अंदर फूटता, जहर भरा गुब्बार॥

बिन धुआँ दहक रही, मानव मन में आग।
आत्मा जलकर राख है, बचे-खुचे सब काग॥

घर से वे बेघर हुए, बिके खेत-खलिहान।
बेटी कन्यादान में, बाबू दे दी जान॥

वही पुराना चल रहा, धूर्त द्यूत का खेल।
शकुनी के छल-छद्‌म से, धर्म-कर्म सब फेल॥

विक्रम तो दो-चार हैं, हजार है वेताल।
सिर पर चढ़कर बोलते, आँख दिखाते लाल॥

राजनीति के खेल के प्यादे चलते चाल।
हार हो रही देश की, नेता मालामाल॥

सचमुच कोई नागमणि अथवा मन की भूल।
लूट रहे हम केंचुलें, रखते जैसे फूल॥

सिर धुने किवाड़ के, कौन सुने है पीर।
जोर चोर पर है नहीं, उसे लगे जंजीर॥

ऋतुएँ रीति बदल रहीं, बदल रहा स्वरूप।
गरमी में ठंडी पड़े, ठंडी में अति धूप॥

संस्कृति के प्रतिकूल ही, हमने किया निवेश।
अब पछताए होत क्या, बदल गया परिवेश॥

योद्धा पृथ्वीराज अब, घायल हैं गंभीर।
गोरी के तरकस सजे, जयचंदों के तीर॥

साअ
स्नातकोत्तर अध्ययन महाविद्यालय
केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय
उमियाम, शिलाँग (मेघालय)
दूरभाष : ०९४३६१९३४५८

हाय लला! अब हैं कहाँ दुनिया में?

● महेश चंद्र द्विवेदी

वर्ष १९५४ में जनवरी महीने की हाड़तोड़ जाड़ों की अँधेरी रात थी। गाँव के अधिकांश लोग कथरी (पुरानी यहाँ-वहाँ फटी रजाई) में टाँगें समेटकर दुबके हुए सो रहे थे। ठंडी ओस से बचने हेतु बागों में वृक्षों पर घनी पत्तियों के बीच दुबकी मोरनियाँ तीसरी बार पेंउ-पेंउ बोलकर बता चुकी थीं कि रात्रि का तीसरा पहर बीत चुका है और चौथा (अंतिम) पहर चल रहा है। सायंकाल देर तक नर-कुत्ते किसी साथिन के लिए आपस में लड़ते रहे और अब सो गए थे, परंतु मेरे पड़ोसी लालाराम की कुतिया के दुधमुँहे पाँच पिल्ले जाड़ा सहन न होने पर कूँ-कूँ कर चिल्लाने लगते थे। यद्यपि मैं अपनी कथरी में मुँह ढककर गहरी नींद सो रहा था, तथापि मुझे सोते-सोते में लगा था कि पिल्लों की कूँ-कूँ के अतिरिक्त एक और ऐसी आवाज कहीं दूर से आ रही थी, जैसे किसी शांत सायं में दूर से आता हुआ तूफान।

मेरी नींद खुल गई थी और तब मैं स्पष्ट सुनने लगा था कि निकट के ग्राम पटयाइत की दिशा से 'पकरौ-पकरौ', 'बंबा (छोटी नहर) की ओर लै गए है', 'भाजन न पाँय' जैसी आवाजें मेरे गाँव की ओर ऐसे बढ़ रही थीं, जैसे ज्वार के समय सागर के तट की ओर आती हरहराती लहरें। मेरे निकट की खटियों पर सोए हुए रामचंद्र भाईसाहब व श्रीचंद्र ददा तथा उगिंदर जीजा भी जाग गए थे। हम सब आशंकित व भयभीत होकर उन आवाजों का कारण जानने का प्रयत्न करने लगे थे। धीरे-धीरे हमारे गाँव के लोगों की आवाजें भी उन आवाजों में सम्मिलित होने लगीं और ऐसा लगा कि सब लोग बंबा की तरफ भाग रहे हैं। हम बालकों की हिम्मत बढ़ी, हम भी चादर लपेटकर घर से निकले और बंबा की ओर चल दिए। वहाँ अफरा-तफरी मची हुई थी—कुछ लोग बंबा के किनारे-किनारे पूर्व की ओर भाग रहे थे और कुछ निकट के खेतों में ताक-झाँक कर रहे थे, कुछ लोग बंबा के पुल पर खड़े होकर पूर्व की ओर मुँह किए हुए चिल्ला रहे थे, 'इहंईं लै गओ हुयऐ···अबै दूर नाईं जाय पाओ हुयऐ···घबड़ाव न, सूबेदार मिल जयऐं···' पूछने पर पता चला कि पटयाइत के सूबेदार का कुछ लोगों ने रात में अपहरण कर लिया है और बंबा किनारे पटरी पर से पूर्व की ओर ले गए हैं।

सुपरिचित कवि-लेखक। अब तक दो कविता-संग्रह, चार कहानी-संग्रह, तीन उपन्यास, पाँच व्यंग्य संग्रह, संस्मरण आदि प्रकाशित। अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी। छोटे-बड़े ढाई दर्जन सम्मान-पुरस्कार प्राप्त।

सूबेदार एक नवयुवक थे और मेरे से कुछ वर्ष ही बड़े थे। यह सुनकर हम लोग सन्न रह गए थे। उनके पिता, चाचा आदि पुल पर बैठकर हृदयविदारक विलाप कर रहे थे, 'हाय अब सूबेदार कहाँ मिलइयैं, हाय लला को तो मार डारो हुइयै। हाय मेरो लाल!' एक अजीब बात यह थी कि सूबेदार के घर के लोग बड़ी जोर-जोर से विलाप तो कर रहे थे, परंतु उनमें से कोई व्यक्ति अपहर्ताओं को पकड़ने के लिए दौड़कर आगे नहीं जा रहा था। यदि गाँव का कोई व्यक्ति सहानुभूति में उनसे कह देता कि 'धीरज धरौ, सूबेदार को ढुँढबे में हम सब जान लगाय दियैं, बे जरूर मिल जयऐं', तो वे और जोर से रोकर बोलने लगते, 'हाय! अब लला हैं कहाँ दुनिया में? उन बदमासन नैं अब लौ का उनै छोड़ो हुइयै? अब लौ तौ उनको खेल खतम कर दओ हुइयै···हाय मेरो लला।' कुछ लोग घटना के विषय में पूछ रहे थे तो बस यह उत्तर मिल रहा था, 'चार-पाँच जने हते। द्वारे पै आय कें सूबेदार कौ पुकारो और बा के निकरबे पै बाय दबोच लओ और बंबा की ओर भाजन लगे। सूबेदार के चिलैबे हम सब निकरे, लेकिन तब लौ बे दूर निकर चुके हते।' किसी को पहिचानने के विषय में पूछने पर उत्तर मिलता कि सब कंबल ओढ़े हुए थे। उसके बाद पुन: विलाप प्रारंभ हो जाता, 'मेरे लाल! अब कहाँ मिलइयैं। हत्यारेन ने अब लौं थोरेऊँ जिंदा छोड़ो हुइयै।'

इतना हो-हल्ला सुनकर मोर एक बार फिर पेड़ों पर पेंउ-पेंउ बोले और पूर्व दिशा में लाली उगने से पहले ही नीचे उतरकर खेतों की ओर पेट-पूजा के लिए चल दिए थे। जब सूरज ऊपर चढ़ने लगा तो सूबेदार को ढूँढ़ने गए लोग लौटने लगे। सबका उतरा हुआ मुँह देखकर स्पष्ट था कि सूबेदार नहीं मिले हैं। उनके कुछ बोलने से पहले ही सूबेदार के घरवाले फिर दहाड़ मारकर चिल्ला उठे, 'हाय लला, अब नाईं हैं दुनिया

में।' कुछ बड़ों ने उन्हें ढाढ़स दिलाने का फिर प्रयत्न किया। तत्पश्चात् धीरे-धीरे सब लोग हताश होकर अपने घरों को चल दिए।

उन दिनों गाँव की सभ्यता में आज की तरह वैयक्तिकता का बोलबाला नहीं था और किसी के घर की बात अधिक समय तक दुबी-छिपी नहीं रहती थी। सूबेदार तो अगले १० दिन तक नहीं लौटे, परंतु उससे पहले ही लोग जान गए थे कि 'लला इसी दुनिया में हैं और भले-चंगे हैं।' उनके अपहरण का ड्रामा रचा गया था। उन्होंने साल भर पहले कानपुर के किसी ठग से मिलकर गाँव में 'हीरो बनने का सुनहरा मौका' शीर्षक पैंफलेट बँटवाए थे, जिनमें छपा था—''रक्काशा' फिल्म की शूटिंग होने जा रही है। उसमें काम करने के लिए बहुत से कलाकारों की आवश्यकता है। इच्छुक युवा फार्म भर दें और सौ रुपए जमा कर अपना स्थान सुरक्षित करा लें।' उन दिनों गाँववाले छपे कागज को पत्थर की लकीर मानते थे और तमाम युवा तथा अधेड़ झाँसे में आ गए थे। जब साल भर तक हीरो बनने का बुलावा नहीं आया, तो ये लोग सूबेदार से अपने पैसे वापस माँगने लगे थे और बार-बार की टाल-टूल पर धमकी भी देने लगे थे। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए सूबेदार और उनके घरवालों को सूबेदार का 'अपहृत' हो जाना ही कारगर उपाय लगा था।

और यह उपाय कारगर भी साबित हुआ था। इस ड्रामे के बाद ठगे गए लोगों की समझ में आ गया था कि सूबेदार और उनके घरवाले कोई छोटे-मोटे कमजोर फ्रॉडियर नहीं हैं, वरन् ऊँचे समर्थ खिलाड़ी हैं। उन लोगों ने उनसे रुपए वापस माँगना छोड़ दिया था, क्योंकि बचपन से सुनी इस चौपाई पर उनका अडिग विश्वास था, 'समरथ को नहिं दोस गुसाईं'। हाँ, कुछ मसखरे लोग सूबेदार की चर्चा होने पर यह अवश्य बोल पड़ते थे, 'हाय लला! अब हैं कहाँ दुनिया में?'

१/१३७, विवेकखंड, गोमतीनगर
लखनऊ-२२६०१०
दूरभाष : ०९४१५०६३०३०

गीत

जीवन लुटाती थी

• अशोक 'अंजुम'

बीमार है गंगा

बहुत लाचार है गंगा,
बहुत लाचार है गंगा!
उठो, जागो, जरा देखो
अरे बीमार है गंगा!

वही गंगा, कभी जो अनवरत
अमृत बहाती थी,
वही गंगा, जो इक-इक धार से
जीवन लुटाती थी,
कि लेकर बह रही कचरे का अब
अंबार है गंगा!

किया उद्धार लाखों का
स्वयं उद्धार को तरसे,
लुटाया प्यार जिन-जिन पर
उन्हीं के प्यार को तरसे,
सभी भूले, करोड़ों की यह
पालनहार है गंगा!

सदा कल्याण के नगमे सुनाए
भक्त लोगों ने,
कि इसके नाम पर अरबों पचाए
भक्त लोगों ने,
बनी कितने ही लोगों के लिए
बाजार है गंगा!

ये सब विद्वान् कहते हैं
विषैली हो गई है अब,
जो सबके पाप धोती थी
वो मैली हो गई है अब,

सभी भूले धरा पर जो
तेरा उपकार है गंगा!

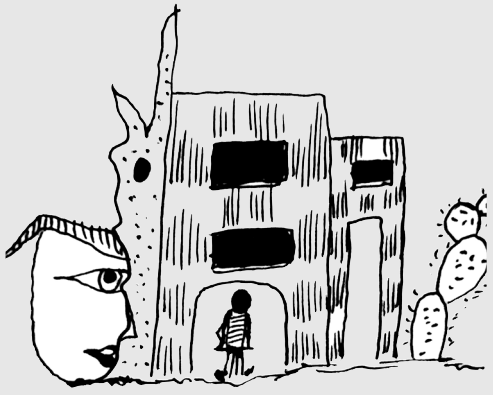

गुनगुनाती नदी

पर्वतों, जंगलों को लुभाती नदी
खेत-खलिहान में रस लुटाती नदी
वो कहाँ खो गई गुनगुनाती नदी!

जाने किस मोड़ पर जाने किस राह में
आदमी की असीमित किन्हीं चाह में
जागते-जागते रात बीती मगर
भोर में सो गई गीत गाती नदी!

जो दर्पण-सा उजला बदन था कभी
जिसके कारण धरा पर चमन था कभी,
जब चली भी तो नस-नस में उल्लास था
न कोई पीर थी, न ही संत्रास था,
थक गई, रुक गई जाने किस मोड़ पर
पत्थरों से वो पंजा लड़ाती नदी!

मैला दामन हर इक पग पे होता रहा
हर नगर राह में शूल बोता रहा,
जिस नदी ने सभी को निवाले दिए
पाप सबने उसी के हवाले किए,
कोई सुनने, समझने को राजी न था
अपनी पीड़ा यह किसको बताती नदी,
वो कहाँ खो गई गुनगुनाती नदी!

गली-२, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद)
क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-२०२०२
दूरभाष : ०९२५८७७९७४४

सात चौखट के पार

• पी.सी. वशिष्ठ

किरीट के पिता खेत में जुड़े हुए बैलों को छोड़कर मेंड़ पर छायादार पेड़ के नीचे बैठ गए। थोड़ी देर हो जाने के कारण एक बैल खुलकर दूर जाने लगा। उन्होंने उसका पीछा किया तो घास के अंदर छिपे एक गहरे गड्ढे में गिर गए और अपनी टाँग तुड़वा बैठे। विकार स्थायी हो गया; वे सदा के लिए लँगड़ाकर लाठी के सहारे चलने लगे और खेती करने के लिए अक्षम हो गए।

सात बच्चों का पालन-पोषण बिना कृषि कार्य के असंभव था। सबसे बड़ा बेटा किरीट, जो संस्कृत पाठशाला में जिला मुख्यालय के स्कूल में पढ़ता था, परिस्थिति देखकर, पढ़ाई छोड़कर खेती में जुट गया और अपने सात भाई-बहनों तथा माँ-बाप का भार अपने ऊपर ले लिया। किरीट ने कृषिकार्य और परिवार का भार क्या सँभाला, एक इतिहास ने मानो जन्म ले लिया।

सिर्फ किरीट से बड़ी बहन की शादी हुई थी, बाकी स्वयं का और पाँचों भाई-बहनों का भार ऐसा उठाया कि किरीट पिसकर रह गया। दो बहनों की शादी एक ठेकेदार को और एक कर्मकांडी पंडितजी को कर दी। पंडितजी पंडिताई का काम तो करते ही थे, साथ ही ब्याज पर पैसा उठाने का काम भी करते थे। सारा काम-काज बहन ही देखती थी। पैसा ब्याज पर उठवाने में किरीट भी मदद करता था। एक भाई पढ़ने में तेज निकला तो दो रुपए प्रतिमाह वजीफा मिलने के कारण मिडिल पास कर गया और स्वयं का व्यापार करने देश के दूसरे हिस्से में जाकर बस गया।

बाकी दोनों भाइयों को पढ़ाने, बहनों की शादियाँ करने, फिर अपनी स्वयं की संतानों की पढ़ाई, शादियाँ आदि के फेर में और कृषि कार्य की दिन-रात की हाड़तोड़ मेहनत के बीच किरीट तपकर ऐसा बन गया, जैसे लोहा इस्पात बन जाता है। संस्कृत की पढ़ाई के प्रभाव ने उसे संस्कृति, परंपरा एवं सज्जनता की प्रतिमूर्ति बना दिया। किसी से कभी कोई बेर नहीं, लड़ाई नहीं। फसल की बिक्री से इतनी आमदनी नहीं होती थी कि बिना कर्जा लिये सब काम हो जाएँ। किरीट की बहन ने उसे हर समय सहारा दिया और बदले में किरीट ने मानो अपना तन बहन के पास गिरवी रख दिया।

किसी किसान की चार बीघा जमीन किरीट लगान या अग्रिम राशि आदि देकर बहन को एक वर्ष के लिए दिलवा देता और फिर स्वयं उस खेत को जोतता, बोता, फसल काटता और भूसा, अनाज आदि सब अपनी बैलगाड़ी में ढोकर बहन के घर पहुँचाता, जिसके बदले में किरीट जो भी कर्जा बहन से लेता, बहन उस पर ब्याज न लेती। पर इसके लिए किरीट जो करता, वह बेमिसाल था।

चार बीघा जमीन में पैदा होनेवाली फसल कुछ बोरों और गठरियों में बाँधी जाती। भूसा बाँधने के लिए घर के सारे बड़े कपड़े चौतई, दुतई आदि काम में लाए जाते। अनाज की गठरियों के साथ गाड़ी में भर दी जातीं और बैलगाड़ी दस मील दूर बहन के घर के सामने रुक जाती।

बहन का घर पुराना और कच्चा था। सड़क से चबूतरा करीब चार फीट ऊँचा था। चबूतरे को पार करते ही तीन छोटे कमरे, जो सभी एक दरवाजे द्वारा एक-दूसरे में खुलते थे। उसके बाद आँगन पार करते ही ओसारा, जिसकी कम-से-कम ऊँचाई पाँच फीट तो थी। द्वार पर खड़ी बैलगाड़ी से भूसे की एक-एक गठरी किरीट सिर पर लेकर पहली चार चोखटें आसानी से पार कर जाता और ओसारे को पार करने के लिए भूसे की गठरी को अपनी पीठ पर सरकाकर आधे मुड़े घुटनों के बल चलकर कम ऊँचाईवाले ओसारे को पार करता। इसके बाद तीन कमरे और थे। इन तीनों चौखटों को पार करके बहन के घर का गोदाम था। उसी में लाकर सारा भूसा इसी प्रकार सातों चोखटों को पार करके किरीट डाल दिया करता। बैलगाड़ी खाली हो जाने पर उसे पास के ही खाली पड़े अहाते में खड़ी करके बैलों को खोल देता। बैल दस मील दूर से भरी हुई गाड़ी लाए थे, अत: तुरंत ही सुस्ताने के लिए बैठ जाते। उधर किरीट भी बहन के घर पेटभर खाना खाता। बहन के घर कुछ दुधारु पशु पाले जाते थे, अत: कुछ हरे चारे की गठरियाँ भी गाँव से वह ले आता था, जो उसके अपने खेतों में से होती थीं।

बीसों बरसातें ऐसे ही बीत गईं। किरीट का सात चौखटों को पार करने का सिलसिला नहीं थमा। घर-गृहस्थी में आए दिन नए-नए खर्चे आते ही रहते थे। किरीट बहन से पैसा लेकर अपने घर का काम चला लेता और फसल के समय वापस कर देता। उसकी अनथक मेहनत और गृहस्थी की गाड़ी की मंथर गति देखकर नंदरामजी एक दिन बोल उठे, ''किरीट तू जो मर-मरकर कमाता है और अपने भाइयों को पढ़ाने में

इतनी मेहनत कर रहा है, एक दिन ये तुम्हें कुछ नही देंगे, तू देखता रह जाएगा एवं ये आँखें दिखाकर तुमसे दूर चले जाएँगे।''

''जिस दिन मेरे भाई पढ़-लिखकर हाकिम बनकर कुरसियों पर बैठेंगे, मेरी मेहनत वसूल हो जाएगी।'' किरीट का जवाब होता था। अगर नंदराम या कोई अन्य इस विषय में कुछ और कहते तो किरीट का संस्कृत ज्ञान मुखरित हो उठता। वह कहता, तुम क्या जानो, मिले न जगत् सहोदर भ्राता। यही भावना थी कि जब दोनों छोटे भाई एक साथ रहकर किसी दूसरे गाँव के स्कूल में पढ़ते थे और अपना खाना स्वयं बनाते थे तो किरीट बैलगाड़ी पर लादकर आटा, दाल, चावल, शक्कर, गुड, देशी घी, ताजा शाक, यहाँ तक कि झंबे (अरहर की दाल के सूखे पौधे) आदि भी उन दोनों के कमरे में छोड़कर आता। जब एक भाई कहीं अध्यापक के पद पर लग गया तो दूर होने के कारण घर का खाने-पीने का सामान वहाँ पहुँचना मुश्किल हो गया। अध्यापक का कार्य एवं शांत स्वभाव के कारण यह भाई अपने आस-पास रहनेवाले किसी से भी कोई संपर्क नहीं रखता था। वेतन इतना कम था कि मुश्किल से गुजारा होता था। ऐसा एक भी दिन नहीं गया कि घर पर पैसे, आटा, दाल, चावल हों। इसी दिन घर आते समय अध्यापकजी, जिन्हें सब शास्त्रीजी कहते थे, को उनके एक मित्र मिल गए और कहने लगे, ''शास्त्रीजी, आज तो हम आपके ही घर आ रहे थे और हम आपके ही साथ खाना भी खाएँगे।'' शास्त्रीजी न तो हाँ कर पाए, न ना। पर ऊपरवाले की अपनी भी कुछ योजना होती है।

बहुत दिनों से किरीट छोटे भाई शास्त्रीजी के लिए कुछ आटा, चावल, दाल, घी आदि पहुँचाने की सोच रहा था और वह दिन भी आ पहुँचा। सारा सामान ऊँट पर लादकर भारी बारिश में किरीट उसी दिन शास्त्री के पास पहुँचा। शास्त्री का हाथ तंग था। यह बात किरीट को मालूम थी, अत: किरीट ने २५० रुपए बहन से उधार लिये और शास्त्री को देने के लिए साथ रख लिये। शास्त्री तो घबराए हुए थे, उनकी बूढ़ी माँ भी शास्त्री के पास रहती थीं। शास्त्री को परेशान देख उनकी माँ ने किरीट से कहा कि ये जो मेहमान बैठे हैं, ये खाना खाएँगे, परंतु घर में न आटा है न दाल! किरीट बोला, ''माँ, तुम उड़द की दाल और मक्का की रोटी बना लो।'' माँ ने कहा कि न मक्का का आटा है, न उड़द की दाल। इस पर किरीट ने खुश होकर कहा, ''माँ, मैं बीस किलो मक्की का आटा, दस किलो उड़द की दाल और पाँच किलो घी लेकर आया हूँ, तुम प्रेम से बनाकर सबको खिलाओ।'' यह सुनकर सबके चेहरे खिल उठे।

शास्त्री का मैनेजर कम वेतन देकर अधिक पर हस्ताक्षर कराता था। शास्त्री ने नौकरी छोड़कर मुकदमा कर दिया और जीतने पर सारी बकाया रकम मिल गई। अजीब भाईचारा था किरीट के परिवार में। शास्त्री भी आखिर संस्कारी निकला और किरीट की बड़ी बेटी की शादी शास्त्री को मिले रुपयों से संपन्न हुई। परंतु किरीट ने सात चौखटोंवाला बहन का घर भरते रहने में कोई कोर कसर उठाकर नहीं रखी। इतना ही नहीं, बहनोई कभी-कभी एक दिन में कई जगह रामकथा सुनाते और देवी माँ के रातभर के हवन के कई यजमानों के कार्य आने पर किरीट भी संस्कृत पृष्ठभूमि होने के कारण उनके साथ रातभर हवन कराता और प्रात: काल में पूरी दान-दक्षिणा बहन के घर दे आता। फिर दस मील दूर आकर अपनी खेती सँभालता। बहन के घर के किसी भी कार्य को किरीट ठीक उसी प्रकार मना नहीं कर सकता था, जैसे बैल किसान को किसी भी काम के लिए मना नहीं कर सकता था। बैल को, चाहे दिन हो या रात, किसान ने काम में जोड़ दिया तो जोड़ दिया।

घर में दुर्भाग्य की काली छाया एक बार ऐसी आई कि शास्त्री की पत्नी का असमय देहांत हो गया। दूसरी शादी के लिए किरीट ने दिन-रात एक कर दिए और गंगा पार के एक ब्राह्मण परिवार में बात पक्की कर दी। परंतु गाँव के कुछ परिवार किरीट के घर की खुशियों के दुश्मन थे। उन्होंने बात फैला दी कि हम यह शादी तुड़वाकर रहेंगे परंतु किरीट तो हार माननेवाला था नहीं। वह शादी से छह दिन पहले रात के समय उसी गाँव में पहुँचा, जहाँ से शास्त्रीजी की शादी तय की गई थी। रात के अँधेरे और बरसात में किरीट ने उसी परिवार के घर से कुछ दूर एक घर में आसरा माँगा। रात को ढोलक बजने की आवाज आई तो आश्रयदाता परिवार ने बताया कि गंगा पार से कुछ दिन में बारात आएगी। पड़ोस के पंडितजी की बेटी की शादी है। ये वही पंडितजी थे, जिनके यहाँ किरीट ने शास्त्री की शादी तय की थी। पूरी तरह से आश्वस्त होने के बाद किरीट तड़के बहुत जल्दी वापस आने के लिए निकल पड़ा और नियत समय पर शास्त्री की शादी संपन्न हो गई।

बहन का कर्जा घटता-बढ़ता रहता था, सामर्थ्य अनुसार प्रतिवर्ष सात चौखटें पार कर भूसा, अनाज ढोकर किरीट पहुँचाता रहता था। इसी बीच समय बदला, किरीट का बड़ा बेटा एक बड़े बैंक में मुलाजिम हो गया। अब तक बहन के ११९२ रुपए किरीट पर कर्जे के रूप में निकलते थे।

बड़े बेटे ने एकमुश्त १२०० रुपए देकर अपनी बुआ का कर्ज चुकता कर दिया। और ८ रुपए अधिक ही दे दिए। इस प्रकार किरीट का सात चौखटों से पीछा छूटा।

दब्बूपन, सज्जनता या दिलेरी आदि भावनाएँ संक्रामक रोग जैसी होती हैं। परिस्थितिवश किरीट सज्जनता एवं दूसरों की भलाई करने की आदत का जरूरत से ज्यादा आदी हो गया था। उसके गाँव से चार किलोमीटर दूर बस स्टॉप से बस लेकर आस-पास के १५-२० गाँवों के लोग कई शहरों को जाते थे।

वापसी में यदि बस स्टॉप से लोगों को अपने गाँव पहुँचने में रात हो जाती तो अपने गाँव न जाकर पहले किरीट के मेहमान बनते और किरीट की बैठक पर रात बिताकर अगले दिन अपने गाँव जाते। किरीट भोजन के बाद रात को इन यात्रियों को गुड की डली के साथ उपले की आग और मिट्टी की हँड़िया में उबला दूध अवश्य पिलाता। गाँव के

किसी अन्य व्यक्ति को भी दूसरे गाँव का अँधेरे में घिरा व्यक्ति मिल जाता तो लोग उसे किरीट के घर छोड़ जाते और वह रात किरीट के आश्रय में बिताकर अगले दिन अपने गाँव चला जाता।

एक बार एक गरीब ब्राह्मण किरीट के गाँव आया और रोकर बोला कि मेरी कन्या विवाह योग्य है। मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। किरीट ने उसे साथ लेकर गाँव के सभी लोगों से मदद की बिनती की। कुछ लोगों ने पैसे दिए और कुछ किसानों ने अनाज, चावल, दाल, शक्कर, घी आदि सामान दिया। किरीट ने नकद पैसे किसान को दिए। इतना ही नहीं, सारे सामान के साथ उस ब्राह्मण को ४ किलोमीटर दूर बस पर बिठाकर भी आया।

किरीट की सज्जनता एवं सदाशयता की ख्याति आस-पास के क्षेत्र में फैलने लगी, जिससे लोग उसे 'महाशयजी' पुकारने लगे। बच्चे, बूढ़े और युवक ही नहीं, महिलाएँ भी सामने पड़ने पर उसके पैर छूतीं और परदे में से भी सिर झुकाकर सम्मान प्रकट करतीं। एक मुसलिम महिला ने यह सब सुना तो वह भी बैठक पर बैठे किरीट के सामने से गुजरते समय खड़े होकर बुर्के में से ही सिर झुकाया और हाथ जोड़कर आगे बढ़ी। गाँव की ज्यादातर महिलाएँ छोटी होने के कारण किरीट से परदा करती थीं। किरीट हमेशा खाँसकर गुजरता था, जिससे आस-पास की महिलाएँ परदा कर लें। यदि किसी कारणवश कोई महिला अपना सिर न ढक पाए तो किरीट खुद अपना चेहरा ढककर या दूसरी ओर मुँह फेरकर गुजरता था।

किरीट गाँववालों को गलत काम करने से रोकता था। अपनी जाति की महिलाएँ उसे 'दादाजी' कहती थीं। एक बार एक महिला का पति कहीं जुआ खेलने चला गया। उसकी पत्नी किरीट की पत्नी से बोली, ''जीजी, जरा दादाजी को भेज दो, मेरे पतिदेव जुआ खेल रहे हैं, उन्हें रोकें।' किरीट वहाँ पहुँचा तो उसे देख सभी जुआरी सकते में आ गए। किरीट ने अपनी एक जूती उतारी और गिनकर पाँच जूतियाँ उसके पति के सिर पर मारीं। वह महाशय को अपना बड़ा भाई मानकर बहुत सम्मान करता था। इतना अपमान होने पर भी सिर झुकाकर बिना कुछ कहे अपने घर में छिपकर बैठ गया। इस बात का किरीट पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसे खुद ही पश्चात्ताप होने लगा, परंतु यह किरीट के सम्मान की पराकाष्ठा थी।

कभी-कभी मृत्यु भी अपने समाज में व्यक्ति के सम्मान एवं स्थिति की जानकारी दे देती है। महाशय का परिवार और उसका सामाजिक सम्मान शिखर पर था। तभी छह वर्ष की उम्र से पहले ही महाशय ने शरीर त्याग किया तो पूरा क्षेत्र शोक में डूब गया। दस चादरें आस-पास के गाँवों तथा सब लोगों ने श्रद्धापूर्वक उसके शव पर डालीं। पाँच चादरें ऊनी थीं। अरथी उठी तो जाति-पाँति की सभी दीवारें ढह गईं। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, सबने अपने किशोर वय लड़कों को महाशय की अरथी के नीचे से गुजारा और यह दुआ माँगी कि महाशय के मृत शरीर की छाया से गुजरकर उनके बच्चे भी महाशय जैसे ही बनें। चालीस किलोमीटर दूर स्थित गंगा तट पर अंतिम क्रिया में बीस गाँवों के छह सौ लोग शामिल हुए। कई दशकों तक लोग अपने बच्चों को महाशय जैसा बनने की प्रेरणा देते रहे। अपने क्षेत्र में महाशय का नाम आज भी लोग सम्मान के साथ लेते हैं।

ई-१-५०१, हरिगंगा सोसाइटी
आर.टी.ओ. के पीछे, विश्रांत बाडी
पुणे-६ (महाराष्ट्र)

कविता

नया सवेरा

● कृष्णा आचार्य

देखो दूर क्षितिज की लौ से
झाँक रहा है नया सवेरा
जागो ऐ नव जवानो
चेतो ऐ सब इनसानो
धरती के तुम वरद पुत्र हो
जग के तुम कर्म विधाता हो
बागों की हरियाली तुम हो
बगिया के माली भी तुम हो
कण-कण सुवासित तुमसे
नींव के पत्थर बने तुम्हीं थे
तख्त-ताज में सजे तुम्हीं थे
हीरे-मोती-लाल तुम्हीं हो
देश की आन-बान तुम्हीं हो

समय आ गया जानो-पहचानो
आगे बढ़ो, तुम उठो जवानो
जागो ऐ नव जवानो
चेतो ऐ सब इनसानो
धरती माँ क्यों रो रही है
संकट गठरी ढो रही है
आतंकी साया पनप रहा है
आम आदमी भटक रहा है
घर में जयचंद डेरा डाले
लूट रहा सुख घेरा डाले
माँ-बहिन की इज्जत लूटे
दुःख की ज्वाला उस पर टूटे
अत्याचारी खुलकर घूमें

भ्रष्टाचारी जमकर झूमें
भाई-भाई में जंग छिड़ी है
कैसी यह इम्तिहान की घड़ी है
फैल रहा अँधियारा सुनो,
बन जाओ उजाले की किरणें
जागो ऐ नव जवानो
चेतो ऐ सब इनसानो
देखो दूर क्षितिज की लौ से
झाँक रहा है नया सवेरा।

उस्ताबारी, बीकानेर,
राजस्थान
दूरभाष : ९४६१०३६२०१

अतीत की खुशबू

मूल : **ईलीर कालेमाज**

अनुवाद : **बालकृष्ण काबरा 'एतेश'**

डॉ. इलीर कालेमाज न्यूयॉर्क तिराना यूनिवर्सिटी में पोलिटिकल साइंस और इंटरनेशनल रिलेशंस के व्याख्याता तथा अपने शैक्षणिक और पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान के अतिरिक्त एक कवि के रूप में चर्चित हैं। यूनाइटेड स्टेट्स में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'मेमोरीज रिविसिटेड' में उनकी कविता को शामिल किया गया और 'एडिटर्स प्राइज' भी प्रदान किया गया। वर्ष २००५ में कविता-संग्रह 'आटम्स लव' भी प्रकाशित हुआ। श्री बालकृष्ण काबरा 'एतेश' द्वारा अनूदित उनकी कुछ कविताएँ यहाँ दे रहे हैं।

मन के सूने वन में

अंतर्मन में बारिश की बूँदें
एक मधुर पीड़ा धीरे से बहती,
अँधेरों से चली आती रौशनी
अचानक चमकती।

सोते हुए खुली हैं आँखें
करती यथार्थ का पीछा स्वप्न देखते,
जो न जिया उसका बतातीं दर्शन
यथार्थ की सीमाओं का पलायन करते।

जवाब खोजना सूने वन में
धुंध में उम्मीद ढूँढ़ना,
खोजना सौंदर्य आलस्य का
कम-से-कम मुझे यह नहीं करना।

अनंत काल

जीवन प्रकट होता है
अकसर एक अस्पष्ट भ्रम की तरह
एक अंतहीन समुद्र की तरह
विशाल और अनंत,
वास्तविकता अकसर होती है भयानक
इसीलिए तो भागते हम
काल्पनिक जीवन के
चमेली और ट्यूलिप के उद्यानों की ओर
हम करते पलायन।

जीवन हमें अकसर डराता
अपनी अंतहीन गहराइयों से
शाश्वत क्षण ठहर जाते सदा
रहते अनुप्राणित नित्य जीवन में,
लाल गुलाबों से महकते
देते अकेलेपन का आनंद
बिना ऊब के।

भटकाव

अतीत की खुशबू
करती मेरे अचेतन को गहरे विचलित
कि यह पुख्ता करती मेरी स्मृति को
मिटाते हुए
वर्तमान और भविष्य को पूरी तरह।

पर जब मैं व्यर्थ भटकता
समस्त असामान्यताओं की खोज में
तब रहता अभाव उस खुशबू का
जो गुजरी हजारों बार
मेरी आँखों के सामने।

मैं चाहूँगा...

मैं चाहूँगा नृत्य करना
अफ्रीकी पार्टी में
नकाब पहने, अर्ध-नग्न
लय और ताल के साथ
अपने हृदय में गर्मजोशी लिये।

फिर मैं चाहूँगा उड़ना
अनंत एशियाई आकाश में
इंडोनेशियाई राइस वाइन पिए
मुक्त करते अपनी
आत्मा, मन और मस्तिष्क।

फिर मैं श्वेत उत्तरध्रुवीय हिमप्रदेश में
रहूँगा एकांतवास में
स्वयं को देते हुए उलाहना
एक अलग रूप में
कदाचित् कुछ ज्यादा ही
दार्शनिक अंदाज में

लौटते हुए मैं जाऊँगा कैरेबियन
जीवन के लिए करते प्रार्थना
समुद्र का आलिंगन करते, सूर्य को चूमते
और करते गान, मानवता के लिए गान
दूर, सुदूर अनंत में।

नकाब पहने चेहरे

चुभते ताने
चीखते कटाक्ष
चले आते हैं
रक्त-रंजित लकड़बग्घों
क्लांत पिशाचों
लार टपकाते मुँहों से।

निरुत्साहित नकाब पहने चेहरों से
स्वयं नफरत की कला सीखना
है यह जानी-मानी शेक्सपिरियन दुविधा
जो आती,
फिर से पुरातन को सामने लाती।

मदिराओं के बीच उन्माद में घुटते
पाखंड के बिस्तर में लोटते,
है यह उत्तर-आधुनिक पराक्रम
बस यही मानवता का जीवन।

११, सूर्या अपार्टमेंट,
रिंग रोड, राणाप्रताप नगर,
नागपुर-४४००२२ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९४२२८११६७१

कविता के अलक्षित पाठक की तलाश

● नित्यानंद श्रीवास्तव

समकालीन कविता की आलोचना के केंद्र में यद्यपि मुक्तछंद, छंदमुक्त, गद्य बनती हुई या कविता में गद्य का 'स्पेस' तलाशती हुई कविताएँ ही अधिक हैं, फिर भी इस आलोचनात्मक रूढ़ि से संवाद करते हुए 'पाठकीय चिंता' का विचार जिन विरले आलोचकों को है, उनमें आचार्य परमानंद श्रीवास्तव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संबंध में उनकी किताब 'कविता का अर्थात्' समकालीन काव्यालोचना और समीक्षा में एक जरूरी विमर्श की किताब है।

परमानंदजी जिन दिनों इस किताब को लिख रहे थे, यानी आज से लगभग दो-ढाई दशक पहले, उन दिनों इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया के अधिकांश आयाम एक खास किस्म के बाजारू साम्राज्यवाद की गिरफ्त में आ चुके थे। आम जनता में तब उन दिनों इंटरनेट की सर्वसुलभता नहीं थी; पर आज यह त्रिआयामी विश्व आस्वाद के कारकों और कारणों को अपने विस्तार में समेट चुका है। आर्थिक महाशक्तियों की 'नीयत' ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृति, साहित्य और लोकरंग के रूपाकार में जिस तरह परोसी जा रही है, उससे एक स्वाभाविक चिंता उपजती है, ''संप्रेषण के जैसे सर्वसुलभ मूल्यों तक को बेच लेनेवाले प्रचंड आक्रमणकारी माध्यम हैं, यह जवाब हम आसानी से नहीं दे पाएँगे कि कविता पढ़ता कौन है!'' (पृ. १६) 'कविता पढ़ता कौन है?' यह एक सवाल है और इसी सवाल का दूसरा पहलू, जो इसके साथ लगा-लगा चलता है कि 'कविता लिखता कौन है?' कहना न होगा कि ये काव्यालोचन के शाश्वत द्वंद्व के सवाल हैं, जिनसे काव्यालोचक को अपने समय से संवाद और प्रतिसंवाद करते हुए टकराना ही पड़ता है। पाठक और कवि के बीच एक बेहतर व स्वस्थ रिश्ते की तलाश इस प्रकार समकालीन काव्यालोचन का एक शास्त्र गढ़ने लगती है।

मध्यकालीन कविता में कलियुग के कारण उत्पन्न हुए 'त्रास' या 'भय' का अनुभव केंद्रीय अनुभव है। रामचरितमानस के कलियुग वर्णन प्रसंग में जो 'समय' है, वह तुलसी का समकाल है। इस 'भय' की बेहतर उपस्थिति वल्लभाचार्य के 'कृष्णाश्रय स्तोत्र' में है। 'भय' का यह महावृत्तांत 'भक्ति की वैचारिकी' के लिए एक बड़ा स्पेस

सुपरिचित लेखक। 'जातीयता की चेतना : साहित्य भाषिक विमर्श' पुस्तक एवं पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। रामकथा साहित्य पर शोध कार्य जारी। भक्ति, भय और भूख की अंतर्यात्रा शीघ्र प्रकाश्य। संप्रति एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी, दिग्विजयनाथ पीजी कॉलेज, गोरखपुर।

प्रदान करता है—एक विशेष प्रकार की गहरी स्मृतिधर्मिता का परिपार्श्व है, जो कविता के पाठक को प्रतिरोधात्मक जिजीविषा से जोड़ता है। परमानंदजी इस कठिन समय में दो तरह की कविताओं का जिक्र करते हैं; 'डर, हादसे, तनाव, मृत्यु, संदेह, अनिश्चय की कविताएँ और प्रेम, उम्मीद, स्मृति, करुणा, राग और कई बार एक सर्वसम्मत यकीन की कविताएँ। वे समय और समाज की गतिविधियों को परखते हैं और एक बड़े 'भय से टकराते हैं,' एक झूठ सर्वमान्य सच हो चुका होगा और असहमति या इनकार की कविता के लिए जानेवाले समय में जगह न होगी।'' और यह भी कि ''आज कविता में खंड-खंड स्मृतियाँ हैं, जिन्हें महज नास्त्रेल्जिया के खाते में डालना संभव नहीं। स्मृतियाँ भी प्रतिरोध हैं, एक अधिक नैतिक साहसपूर्ण प्रतिरोध।''

स्मृतियाँ भी प्रतिरोध हैं, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता, पर कविता का रूप उसे प्रभावित भी करता है क्या? परमानंदजी ने यद्यपि मुक्त छंद और लगभग गद्य बनती हुई कविताओं को भी मुख्यत: अपने उद्धरणों में रखा है पर कहीं-न-कहीं रूप की इस रूढ़ि से चिंतित वे भी रहे होंगे; उन्होंने ज्ञानेंद्रपति को इस संदर्भ में उद्घृत किया है, ''...आज की हमारी अधिकतर गद्य-कविता चाहे उसका आशय जनवादी ही क्यों न हो, से जन का निस्संबंध इस हद तक है कि यह कविता कवि-समाज में ही पारस्परिक प्रशंसा या निंदा अर्जित कर संतुष्ट हो लेने में ही संतुष्ट है।'' वे एक वाजिब सवाल उठाते हैं, ''क्या आज लिखी जा रही कविता का अधिकांश एक नई काव्यरीति में ढलकर महज काव्याभास नहीं है! उनकी कवि से अपेक्षा है कि कविता की 'संरचना और अभिव्यक्ति' में चाहे जितनी नई हिकमतों की तलाश की

जाए, जीवन की अर्थबहुल संभावनाओं का अन्वेषण भी उसके साथ बेहद जरूरी है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कविता की गद्यात्मक रूढ़ि के परिप्रेक्ष्य में वे निराला के एक प्रसिद्ध गीत 'गहन है यह अंधकारा, स्वार्थ के अवगुंठनों से हुआ है लुंठन हमारा' को याद करते हैं और कहीं-न-कहीं यह रेखांकित करते हैं कि 'यह गीत जैसी कविता' समाज के एक बड़े भयावह सच को 'कविता का सम्यक् अर्थात् देने में सक्षम है।' परमानंदजी आज की कविता के स्वाभाविक विचलनों को रेखांकित करते हुए आज के कवि को चेतावनी सी देते हैं—स्मृतिहीन तात्कालिकता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कविता संभव नहीं होती, भले ही शिल्प कितने ही कौशल से क्यों न स्वायत्त कर लिया गया हो।

कविताओं का यह अस्त-व्यस्त फैलाव गद्य की काव्यभाषा और काव्य की गद्यभाषा की हिकमतों को न समझ पाने के कारण है। एक खतरा वैचारिक शिविरों की तर्कवादी आवाजाही का भी है, जिसकी जद में कवि और पाठक दोनों हैं। आलोकधन्वा के पाठक की एक विशेषता बताते हुए परमानंदजी कहते हैं, ''आलोकधन्वा का पाठक कई बार दर्शक होता है। वे पूरे शरीर से कविताएँ पढ़ रहे होते हैं। इसलिए तर्कवाद को कई बार आवेग ही विचलित करता है। तर्कवाद को शायद कुछ देर के लिए स्थगित रखना चाहिए, अन्यथा कविता का अंतराल, छूटी हुई जगहें पकड़ में नहीं आएँगी। यहाँ कविता के पाठक की अपनी तैयारी का सवाल भी है। पाठक की हैसियत, ताकत–यों कहें कि उसके समानधर्मी होने की चाह तो हर युग का कवि करता रहा है।

स्मृतिहीन तात्कालिकता का दबाव और नएपन की तलाश में रूप-शिल्प के बिखराव कविता के लिए एक बड़े अवरोध का काम करते हैं—''अपवादों को छोड़कर हमारे समय में कविताएँ इस हद तक इकहरी हैं कि पहली ही बार पाठ और आस्वाद में ठहरी या अवरुद्ध जान पड़ती हैं। एक-सा पन या खराब अनुवाद-सा ढंग। जो भी प्रभाव है, वह एकबारगी जाना जाता है; और बस। कितने संग्रह हैं, जो दूसरी-तीसरी बार पढ़े जाएँ या पढ़े जाने की उत्तेजना जगाएँ?'' जाहिर है, गद्य बनती हुई कविताओं में यह बात नहीं है, अधिकांशत: उनमें वह क्षमता ही नहीं है, जिसकी अपेक्षा परमानंदजी करते हैं। अब यह विशेष प्रकार की सर्जनात्मक भेड़चाल ही है, जिसकी गिरफ्त में कवि हैं और आलोचक भी। अपनी तमाम क्षमताओं के बावजूद परमानंदजी ही नहीं बल्कि समकालीन गद्य-कविता के तमाम बड़े आलोचक, जो संभवत: इन 'इकहरी कविताओं' के पाठक भी नहीं होते, अपने आलोचकीय लेखन में हिंदी गीत और गजल कविताओं के उन एकल व संपादित संकलनों को उद्धृत नहीं कर पाते, जिनके कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। बहरहाल परमानंदजी की आलोचकीय ईमानदारी संदेह से परे है, क्योंकि अपने प्रिय गद्याभ्यासी कवि अरुणकमल के संदर्भ में वे छांदसिकता, लयात्मकता और संगीतात्मकता को एक नए ढंग से याद करते हैं, जो अपने बृहत्तर अर्थ में कविता के मौलिक तत्त्व हैं। उनकी स्पष्टोक्ति है—''गद्य सरीखे विन्यास में प्राण भरने के लिए अरुणकमल ने छंद का नया संस्कार भी अर्जित किया है, जहाँ तुक का बंधन नहीं है, पाबंदी नहीं है, बल्कि एक नई लयात्मकता का-सा रचाव है, जो सपाट गद्य से कविता को अलग करता है···। और यह भी कि कविता का अपना एक अंत:संगीत भी होता है, जो कविता में जीवन का एक पूर्णत: रूपात्मक बिंब बनाता है।''

उन दिनों जब गद्य को कविता के निकट या कविता को गद्य के निकट ले जाने की कोशिशें हो रही थीं, और जाहिर है, ये कोशिशें मुक्त छंद से कुछ भिन्न रास्ते पर थीं—जगदीश गुप्त ने 'गद्य की लय' की बात की थी। जगदीश गुप्त जिस तरह की कविता के लिए 'गद्य की लय' तलाश रहे थे, परमानंदजी ने उस कविता को 'एक तरह की बौद्धिक दीक्षागम्य कविता' कहकर सवालों के घेरे में रखा और कहा कि वहाँ तो 'लय' थी ही नहीं। अब यह कविता की बौद्धिक दीक्षागम्यता का सवाल इस अर्थ में बड़ा पेचीदा हो जाता है कि तब बौद्धिक शिविरों की प्रतिबद्धताएँ दूसरी तरफ की भी तलाशी जाएँगी। दुर्भाग्य से यह दुर्घटना घटी है और पिछले सात-आठ दशकों की गद्य में लय तलाशती हुई रचनाधर्मिता एवं आलोचना के कुपाठों ने कविता के पाठक की गत बिगाड़ डाली है। बहरहाल, बौद्धिक दीक्षा का सवाल तो एक तरफ है, परमानंदजी सचेत इस बात पर हैं कि 'जहाँ गद्य-कविता के लिए महज एक तरह की सहूलियत है, जिसके चलते आज लिखी जा रही तमाम कविताएँ अपने अस्त-व्यस्त फैलाव में निरा काव्याभास या स्वचालित लेखन का प्रभावहीन उदाहरण जान पड़ती है, जहाँ उसका होना, न होना व्यर्थ ही है।'

कविताओं का यह अस्त-व्यस्त फैलाव गद्य की काव्यभाषा और काव्य की गद्यभाषा की हिकमतों को न समझ पाने के कारण है। एक खतरा वैचारिक शिविरों की तर्कवादी आवाजाही का भी है, जिसकी जद में कवि और पाठक दोनों हैं। आलोक धन्वा के पाठक की एक विशेषता बताते हुए परमानंदजी कहते हैं, ''आलोकधन्वा का पाठक कई बार दर्शक होता है। वे पूरे शरीर से कविताएँ पढ़ रहे होते हैं। इसलिए तर्कवाद को कई बार आवेग ही विचलित करता है। तर्कवाद को शायद कुछ देर के लिए स्थगित रखना चाहिए, अन्यथा कविता का अंतराल, छूटी हुई जगहें पकड़ में नहीं आएँगी। यहाँ कविता के पाठक की अपनी तैयारी का सवाल भी है। पाठक की हैसियत, ताकत—यों कहें कि उसके समानधर्मी होने की चाह तो हर युग का कवि करता रहा है। 'ते वक्ता श्रोता समशीला' की बात गोस्वामी तुलसीदास ने अकारण नहीं की थी। समकालीन गद्य-कविता के कवियों के पास एक अतिरिक्त सहूलियत यह है कि उनकी तमाम सीमाओं के बावजूद उन्हें परमानंदजी जैसे अनेक समर्थ समालोचक पूरी सहृदयता से प्राप्त होते रहे हैं—तर्कवादी विचलनों के साथ भी।

यह ठीक है कि गद्य का अपना छंद और कविता का अपना छंद

होता है तथा यह भी कि इन दोनों का अपना स्वतंत्र स्वभाव भी है, पर समर्थ चिंतक दोनों की सहयोगी शक्ति को पहचानते भी रहे हैं। पहचान की यह कवायद भारतीय अद्वैतवादी दर्शन से कितना प्रभावित रही है, कहा नहीं जा सकता; पर एक जरूरी सवाल उभरता रहता है। यह सवाल तो बना ही रहेगा कि गद्य के निकट जाकर भी कविता कविता क्यों है? और तब तक रहस्य का उद्घाटन होता है कि कविता के आँगन में जाकर भी गद्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रख सकता है। गद्य-कविताओं के लिए यह एक नए प्रकार का उपयोगितावादी दर्शन है—'गद्य-कविता के लिए उपयोगी और मूल्यवान तभी होगा, जब वह वाचिक भाषा की अपनी धार बचाए रख सकेगा।' वाचिक भाषा, यानी बोलचाल की भाषा। अब यह बोलचाल की भाषा कविता के छंद में नहीं है, यह तो कतई कहा नहीं जा सकता, पर जहाँ गद्य की पक्षधरता एक सांप्रदायिक रूढ़ि की तरह काम कर रही हो, वहाँ तो कुछ कहना, न कहना बराबर ही है। लेकिन परमानंदजी संवादप्रिय हैं, 'आज की हिंदी कविता का एक बड़ा हिस्सा सपाट गद्यात्मकता से इस हद तक ग्रस्त है कि नामवर सिंह जैसे आलोचकों को एक बार प्रगीत ही कविता के पुनर्जीवन के लिए जरूरी लगा। गद्य-कविताओं में पर्याप्त आवाजाही करके नामवर सिंह इस सत्य तक पहुँचे, पर परमानंदजी की चिंता यह है कि 'आज सब कविछंद में लय के सरल-स्थूल निर्वाह को आदर्श मानकर लिखने लगें तो आज के यथार्थ की जटिल विडंबनायुक्त चुनौतियों का क्या होगा, जिसके लिए कविता से अधिक चौड़ी जमीन की माँग की जाती है।'

यथार्थ की जटिल विडंबनायुक्त चुनौतियों को जरा दोबारा-तिबारा पढ़िए तो ऐसा लगेगा कि यह अवस्था मानव सभ्यता के अब तक के दौर में आज के पहले कभी नहीं आई। अतीत पहले कुछ ज्यादा ठीक था, इसलिए कम चौड़ी जीमन में भी कविता अपना छांदसिक तेवर बचाए रख सकती थी। अपेक्षाकृत कम चौड़ी जमीन की ये कविताएँ और आज की छांदस कविताएँ ही जनता की जबान पर चढ़ी हुई हैं। इस बात को गद्य-कविता के रचनाकार और समालोचक किसी विभ्रम को यथार्थ की तरह स्वीकार करने के कारण ही नजरअंदाज करते रहे हैं। पहला भ्रम तो यह कि आज के यथार्थ की जटिल चुनौतियों का पद विन्यास ही है। इस पद-विन्यास के आगे अब तक के संपूर्ण भारतीय दर्शन और साहित्य में व्याप्त 'रहस्यवादी विमर्श' की तमाम अवधारणाएँ हतप्रभ हो जाएँगी। लेकिन इसके अर्थ का पता न चलेगा। शायद चल भी जाता, यदि कुछ कम चौड़ी जमीन पर कवि-कर्म की कुशलता परखी जाती। दूसरा भ्रम, अधिक चौड़ी जमीन की तलाश में कविता का गद्य के साँचे में ढलते जाना है। परमानंदजी ने देवेंद्र कुमार के गीतों पर एक आलोचनात्मक निबंध लिखा—गीत के ढाँचे का अतिक्रमण करते हुए। गीत तो छंद, तुक, लय और जीवनानुभव संपन्न संगीतात्मकता से समन्वित विधा है। इसी के समांतर हिंदी गजल भी विकसित हुई। इन दोनों की सहज लोकप्रियता और संप्रेषणीयता गद्य-कविता के पाठकों की तुलना में कई गुना अधिक है। बावजूद इसके ये छांदस विधाएँ गद्य-कविता के समालोचक-पाठकों के लिए अगम्य क्षेत्र रही हैं। इसका कोई ठोस तथ्यात्मक कारण परमानंदजी नहीं बताते, पर गद्य-कविता की पक्षधरता से उत्पन्न उत्साह के अतिरेक में वे और उनके जैसे तमाम आलोचक कविता के प्रकृत स्वभाव के ही विरुद्ध युद्ध-मुद्रा में सन्नद्ध हो जाते हैं। खोखले शब्दाडंबर, खराब गद्यलय और 'काव्यात्मकता की अत्यल्प पूँजी' के बावजूद गद्य-कविता की आलोचना रचना का एक अतिरिक्त भयावह और आक्रामक कुपाठ पिछले पाँच-छह दर्शकों की हिंदी कविता-यात्रा की विस्मरणीय उपलब्धियाँ रही हैं। ऐसे में कविता के अलक्षित पाठकों की तलाश तो होगी ही, पर वे मिलेंगे नहीं। गद्य-कविता की दुकान सजाए कवि-आलोचक-संपादक की त्रिगुण रहस्यात्मकता से ऊब कर कविता का पाठक तो कविता के ही साथ है। अब यह उचित समय है कि गद्य-कविता के आलोचक अपना विज्ञापनी तेवर स्वयं आलोचित करें।

लेकिन परमानंदजी की आलोचना पद्धति में यह विज्ञापनी तेवर कम-से-कम है तथा उनकी रचनाकारों से इतनी माँग जरूर है कि बोलचाल की भाषा, लयात्मकता और वैचारिक संगीतमयता कविता की जरूरी शर्तें हैं। परमानंदजी का वैचारिक रुझान वामपंथ की ओर जरूर है, पर फिराक के हवाले से वे प्रकृत भारतीयता की खोज भी करते हैं। यह खोज आचार्य शुक्ल की याद दिला सकती है, जब वे कविता के नाद-सौंदर्य के साथ उसके प्रकृत भारतीय संस्कारों, परिवेश और युक्तियों की बात कर रहे थे। फिराक के संबंध में परमानंदजी कहते हैं, ''फिराक जब उर्दू की पारंपरिक औसत कविता में अपने लिए एक तरह की अजनबीयत पाते हैं तो उनको अपनी काव्य-भूमि की प्रकृत भारतीयता समझ में आती है। इसलिए कविता फिराक के लिए एक 'संगीतमय विचार' है, जिसे वे कबीर, सूर, मीरा से सीखते हैं। कविता की प्रभावान्विति वे पाठक की भाव-दशा में तलाशते हैं।'' परमानंदजी ने फिराक को उद्धृत किया है—'साहित्य बनता तो शब्दों से है, लेकिन वे शब्द जब एक नीरवता में लय व लीन हो जाएँ, जब शेर विस्मृत हो जाए और उससे उत्पन्न होनेवाली एक अकथनीय स्थिति पैदा हो जाए, यही स्थिति साहित्य एवं कविता के लिए सबसे बड़ी देन है।'

कविता का पाठक, जिसे आज के रचना-संदर्भों में परमानंदजी ने 'अलक्षित' कहा है, इसी मनोदशा की तलाश का यात्री है। यह वास्तव में उस 'कहन' की तलाश है, जिसके लिए हिंदी गजलकार विनय मिश्र बड़ी बेबाकी से कहते हैं—

तुक मिलाने से कहीं ज्यादा जरूरी थी कहन,
बेतुकी सी बात थी लेकिन ढिठाई से लिखा।

इस बेतुके 'समयग्रस्त समय' में अपनी-अपनी समयग्रस्तता के दायरे से निकलकर कवि और पाठक समय-संवादी बन सकें। परमानंद श्रीवास्तव अपने लेखन में इसके साक्षी भी हैं और आकांक्षी भी।

भवन सं. ७८५, जटेपुर उत्तरी
(बशारतपुर), गोरखपुर-२७३००४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४५२८४७३२८

खल्वतों के जंगल में

● विनोद प्रकाश गुप्ता 'शलभ'

: एक :

तुम्हारी जुस्तजू है, और मैं हूँ,
यही इक आरजू है, और मैं हूँ।

तुम्हारे इश्क की है ये इनायत,
के तू मेरा खुदा है, और मैं हूँ।

शम्स तो एक जैसी धूप देता,
यही उसकी सफा है, और मैं हूँ।

हमारे हाथ में होता भी क्या है,
हमारा हौसला है, और मैं हूँ।

तेरे अक्सों में, वो तनवीर देखूँ,
मुकद्दस आईना है, और मैं हूँ।

तुम्हारे हिज्र में, जलते ही रहना,
यही अपनी सजा है, और मैं हूँ।

बहुत काँटों भरी, मंजिल की राहें,
यही इक रास्ता है, और मैं हूँ।

नहीं फलती, फकीरों की सदाएँ,
वक्त अब मुख्तलिफ है, और मैं हूँ।

'शलभ' की वेदना को, समझो यारो,
सभी कुछ अनकहा है, और मैं हूँ।

: दो :

वक्त का फेर है, ये वक्त भी टल जाएगा,
है जमा मैल दिलों में, तो निकल जाएगा।

शम्स निकलेगा कभी, हक की शुआएँ लेकर,
देखते-देखते ही, वक्त बदल जाएगा।

इश्क में जख्म की, कोई नहीं वकअत होती,
जख्म नासूर बनेगा, तो सँभल जाएगा।

हुक्मरानों की, अदालत में झुकाए रखिए,
सिर जो उठेगा वो, चुटकी में मसल जाएगा।

अपनी खिड़की से मुझे, ऐसे इशारा न करें,
इश्क का किस्सा है, बेबात उछल जाएगा।

हाथ की रेखा पे, करिए न बहुत दंभ 'शलभ',
रेत का ढेर ये, मुट्ठी से फिसल जाएगा।

: तीन :

मेरे ख्वाबों में, तेरा बेनकाब हो जाना,
मेरी हस्ती का यूँ, खिलकर गुलाब हो जाना।

उसके आरिजों पे, आबेरवाँ की बूँदों का,
सहरा के छलावे में, माहताब हो जाना।

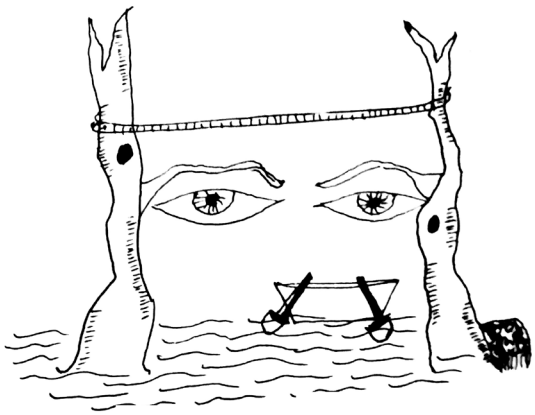

खल्वतों के जंगल में, हुक्मराँ नए आए,
नित नए अजाबों का, बेहिसाब हो जाना।

तोड़कर सभी बंधन, तर्क सब किए रिश्ते,
दिल के सब खजानों का, यूँ तुराब हो जाना।

वस्ल में सितमगर का, हुस्न यूँ दमक उठा,
आग में ज्यूँ सोने का, लाजबाब हो जाना।

कर दिए बयाँ उसने, दर्दो गम सभी अपने,
अब 'शलभ' की गजलों की, तुम किताब हो जाना।

सुपरिचित गजलकार। 'चारों दिशाएँ', 'माई आफ्टरनून पोयमज', 'उत्तरार्ध' गजल-संग्रह एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कई संस्थाओं के अध्यक्ष रहे एवं विभिन्न देशों की यात्राएँ कीं।

: चार :

मुहब्बत में पड़ा आशिक, जमाना भूल जाता है,
बशर हो या परिंदा हो, ठिकाना भूल जाता है।

नए सब दोस्तों की, महफिलों में रमते ही देखो,
तसव्वुर माँजी का रिश्ता, पुराना भूल जाता है।

मेरे दिल की पतंगों का, कहीं तो आस्माँ होगा,
तुम्हारे आसमानों से, निभाना भूल जाता है।

कभी बहरूपिया सा मन, तकब्बुर देखकर तेरा,
तेरे सजदों में सिर अपना, झुकाना भूल जाता है।

घटाएँ, बारिशें, बिजली, मुनव्वर इश्क के किस्से,
तेरे उन्माद में गाफिल, दिवाना भूल जाता है।

पुरानी तीरगी या तिश्नगी, हरगिज नहीं जाती,
धरोहर अपने रंजों की, भुलाइना भूल जाता है।

'शलभ' ने फाका मस्ती में, लुटा दी उम्र ही सारी,
वो हाकिम हो या हो मौला, रिझाना भूल जाता है।

'विनोद किरण' बी-८९/१, फेज-२
सेक्टर-३, न्यू शिमला-१७१००९
(हिमाचल प्रदेश)
दूरभाष : ०९८१११६९०६९

व्हाट्सएप के बुद्धिजीवी

● **अतुल कनक**

बुद्धिजीवियों को जानते हैं आप ? सामान्य तौर पर बुद्धिजीवी उसे कहते हैं, जो स्वाभिमान की बड़ी-बड़ी बातें करता है। लेकिन इस लालच में संपादकों की अनवरत चरणवंदना करता है कि उसकी रचना को प्रकाशन मिल जाएगा। सामान्य बुद्धिजीवियों की एक बड़ी पहचान यह भी है कि उन्हें पुरस्कारों से चिढ़ होती है, फिर भी राज्यस्तर पर पुरस्कृत होने के लिए वे अधिकारियों, विधायकों और अकादमी अध्यक्षों से अपने नाम की सिफारिशें करवाते हैं। बुद्धिजीवी किस्म के लोग अपने बयानों में सामाजिक सद्भाव की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और फिर अपने ड्राइंगरूम में बैठकर कुछ लोगों के साथ इस बात पर गुप्त चर्चा करते हैं कि कैसे किसी संस्था पर से उस आदमी का कब्जा हटाया जाए, जिस आदमी ने साहित्य की दुनिया में आगे बढ़ने में उनकी बहुत मदद की थी।

बुद्धिजीवी जो होते हैं, वे नहीं चाहते और जो दिखना चाहते हैं, वैसा होना नहीं चाहते। मसलन, बुद्धिजीवी चाहते हैं कि दुनिया में भाईचारा बढ़े, लेकिन अपनी पहचान के पुलिस अधिकारी के सहयोग से वे अपने सगे भाई की संपत्ति को हथिया लेते हैं। वे पत्नी को पीटने और प्रेम की कविता लिखने जैसे दो विपरीतधर्मी कार्य एक साथ कुशलता से साध लेते हैं। वे जरूरत पड़ने पर अपनी पी-एच.डी. की डिग्री का रोब उसी मित्र को दिखाने में नहीं चूकते, जिस मित्र की लिखी हुई सिनोप्सिस पर उन्हें पी-एच.डी. का रजिस्ट्रेशन मिला था। वे गालियाँ देते हुए भी मुसकरा लेते हैं और किसी पुरस्कार की खबर मिलने पर ईर्ष्या की आग में जलते-भुनते हुए भी 'मजा आ गया' कहकर खीसें निपोर लेते हैं। उन्हें तकनीक जीवन में हस्तक्षेप करती हुई सी लगती है, लेकिन यह बताना सैंसर बोर्ड की मर्यादाओं का उल्लंघन होगा कि वे स्मार्टफोन हाथ में आने के बाद क्या-क्या कर गुजरते हैं।

तो पिछले दिनों बुद्धिजीवियों ने एक व्हाट्सएप ग्रुप बनाया। व्हाट्सएप समूह में देशभर के सदस्य जोड़े गए। लेकिन सामान्य किस्म के सदस्यों से बुद्धिजीवियों को मजा नहीं आ रहा था। इसलिए माँग उठी कि कुछ बड़े बुद्धिजीवियों को भी समूह से जोड़ा जाए। जी हाँ, बुद्धिजीवियों की भी दो प्रजातियाँ होती हैं। कुछ बुद्धिजीवी सामान्य

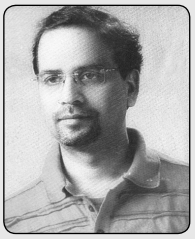

सुपरिचित कवि एवं व्यंग्यकार। अब तक 'पूर्वा' (हिंदी नवगीत-संग्रह), 'आओ बाताँ कराँ' (राजस्थानी कविता-संग्रह), 'चलो चूना लगाएँ' (व्यंग्य-संग्रह), 'जूण-जातरा' (राजस्थानी उपन्यास) एवं पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ तथा दूरदर्शन के लिए वृत्तचित्रों का लेखन। छोटी-बड़ी अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

या छोटे बुद्धिजीवी होते हैं। लेकिन जो बुद्धिजीवी संपादक हो जाते हैं, प्रशासनिक अधिकारी होते हैं, अकादमियों के सदस्य हो जाते हैं, बड़े आयोजक होते हैं, नामी प्रकाशकों के सलाहकार होते हैं या जिन्हें बड़े पुरस्कार मिल जाते हैं—वे सामान्य बुद्धिजीवी नहीं रहते। बड़े बुद्धिजीवी तो जाते हैं। बड़े बुद्धिजीवी सामान्य बुद्धिजीवियों के बीच अकसर अध्यक्षता करने, मुख्य अतिथि रोने या फिर विशिष्ट बयान देने ही जाते हैं। ऐसे बुद्धिजीवियों की उपस्थिति मात्र कुछ सामान्य बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा का काम करती है और कई सामान्य बुद्धिजीवी तो इसे अपने बयानों में भी मान लते हैं।

बुद्धिजीवियों के व्हाट्सएप समूह में भी यही हुआ। जैसे ही कुछ बड़े बुद्धिजीवी जुड़े, समूह में प्रेरित हो रहे लोगों की टिप्पणियों की बाढ़ आ गई। एक उत्साही ने एक संपादक की वंदना में यहाँ तक टिप्पणी कर कि दस साल पहले आप मेरे कार्यक्रम में जब मेरे शहर में आए थे तो शहर बहुत प्रेरित हुआ था। मैंने ध्यान दिया कि पिछले दस सालों में उस शहर की सड़कों पर गड्ढों के कारण होनेवाले हादसों में बहुत इजाफा हुआ है। मैं समझ नहीं सका कि इसमें बढ़े बुद्धिजीवी की क्या प्रेरणा हो सकती है। लेकिन जब एक बुद्धिजीवी कह रहा था और दूसरा बुद्धिजीवी मुसकरा रहा था तो सहमत होना मेरी विवशता थी। तभी एक महिला बुद्धिजीवी ने एक घिसापिटा चुटकुला पोस्ट कर दिया। इसे पढ़कर मुझे रोना आया, लेकिन एक बुद्धिजीवी ने लिखा कि उनके तो हँसते-हँसते पेट में दर्द हो गया। मेरे लिए यह नया अनुभव था। अभी तक इनके पेट में दर्द तभी होता था, जब किसी दूसरे बुद्धिजीवी को पुरस्कार मिल जाता था। किसी चुटकुले के कारण पेट में दर्द की प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व में विकास का प्रमाण थी। यह इस बात का भी प्रमाण

थी कि बड़े बुद्धिजीवियों और महिलाओं की समूह में उपस्थिति सामान्य बुद्धिजीवियों को लगातार अभिप्रेरित कर रही थी।

बुद्धिजीवी दूसरे समूह से चुराए गए चुटकुलों को इस समूह में पोस्ट कर रहे थे। चुटकुलों का द्विअर्थी आध्यात्मिक विश्लेषण बता रहा था कि समूह के सदस्य कितने पहुँचे हुए लोग हैं। कुछ बुद्धिजीवी अपने बुद्धिजीवी होने के प्रमाण में यह बता रहे थे कि वे उसी गली में रहते हैं, जिस गली में स्वर्गीय हो चुके एक महान् बुद्धिजीवी के घर दूध देने जानेवाला रहा करता था। कुछ लोग अपनी प्रकाशित रचनाओं के लिंक भेज रहे थे। इसमें रचना को दूसरों के साथ साझा करने की भावना कम और दूसरे लोगों को चिढ़ाने की भावना अधिक थी। बड़े बुद्धिजीवी छोटे बुद्धिजीवियों की गतिविधियों को देख-देखकर मुसकरा रहे थे। वे टिप्पणी नहीं कर रहे थे। वे जानते थे कि वे बड़े बुद्धिजीवी हैं। बड़े बुद्धिजीवी आमतौर पर तभी बोलते हैं, जब छोटे बुद्धिजीवी बोल चुके होते हैं और अभी छोटे बुद्धिजीवियों को बोलने का जोश कम नहीं हुआ था। सही बात तो यह भी है कि बड़े बुद्धिजीवी आमतौर पर कार्यक्रम के अंत में ही बोलते हैं और फिलहाल बुद्धिजीवियों के व्हाट्सएप समूह का अंत भी निकट नहीं था। आखिर जहाँ सभी बुद्धिजीवियों को एक साथ बोलने का मौका मिल जाए, उस मंच का अंत कौन करना चाहेगा!

३ ए ३०, महावीर नगर विस्तार
कोटा-३२४००९ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४१४३०८२९१

चातक बन देखे धरासुत

कविता

● संगीता गुप्ता

चंदन की तरह

मैं दमकती रहूँ नेह में तुम्हारे कुंदन की तरह।
नेह जलखर में डूबे घुलते रहो चंदन की तरह॥

नवपल्लव पहनकर प्रकृति खड़ी
नववल्लरियों से रौनक बढ़ी
नवल रंगों से रंगीन घड़ी
मन जलतरंग लहरकर बजी

मैं लरजती रहूँ नेह में तुम्हारे डालन की तरह।
नेह धरनि पर तुम झरझराकर गिरो पुष्पन की तरह॥

अमियाँ बौर से लदती रहें
गदराई पवन बहती रहे
खुशियाँ मन में थिरकती रहें
फिर मादक मन मटककर कहे

मैं बिखरती रहूँ नेह में तुम्हारे गुलशन की तरह।
नेह कुसुमन पर खूब बरसते रहो शबनम की तरह॥

हवा के झोंके चले हैं जो
सुगंधि के रस झरे हैं जो
मनों में डोले सजे हैं जो
तभी हम दोनों मिले हैं यों

मैं खनकती रहूँ नेह में तुम्हारे कंगन की तरह।
नेह रमण में रँगे रंगीन रहो रंगन की तरह॥

प्यासी धरती

प्यासी धरती बोल उठी है क्यों बादल भूल जाते हो?

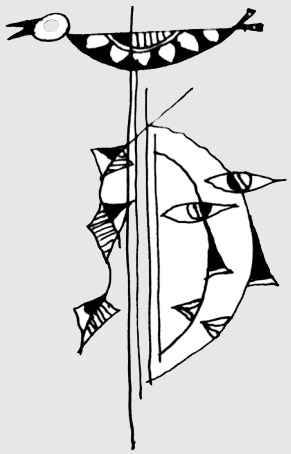

सीता ज्यों राम विरह में पानी क्यों नहीं बरसाते हो॥

खाली की अँतड़ियाँ जैसे
ऐसा नीर उसका निकाला
जैसे शूल बदन में डाले
छाती को छलनी कर डाला

काया रुग्ण रो रही है पीर में पाथर हो जाते हो।
खाली थाली घंटों तड़पी पाल क्यों नहीं सजाते हो॥

सरिताओं को मैल खिलाया
कोसों में सब जहर भर दिया
जैसे रोक दी रक्त की धारा
ऐसा उन पर बंध कस दिया

लेटी नदी अरथी पर बहरे-अंधे से हो जाते हो।
खाली कसेड़ी खूब उधड़ी दो बूँद को तरसाते हो॥

मानुष तो हो गया दुसासन
धानी चुनरी खींच रहा है
योगीजी जो पवन मौन थी
उसका सुख भी लूट रहा है

चातक बन देखे धरासुत सीपी सा जो तड़पाते हो।
राधा-मीरा-गोपियाँ रोएँ मथुरा में रम जाते हो॥

राजू कैटर्स के ऊपर
फालके बाजार, लश्कर
ग्वालियर-४७४००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०८३५८०८०९४७

कहानी

जुमे की नमाज

• किशोरी लाल व्यास

१६ नवंबर, २०१२, आज जुमे का दिन है। दिन के बारह बजे से ही मक्का मसजिद के पास गहमा-गहमी शुरू हो गई। एक बजे नमाजी बहुत बड़ी संख्या में जुटने लगे। सामने बने हुए पानी के हौज में वजू किया मुसलमानों ने। मसजिद में जमा होने लगे नमाजी। आज इनकी संख्या बहुत ज्यादा है। मसजिद के बाहर भी कुछ लोग नमाज पढ़ने लगे। लगभग आधा घंटा यह सिलसिला चला।

नमाज खत्म हुई। बूढ़े नमाजी खुदा का शुक्रिया अदा कर एक-एक कर बाहर निकलने लगे। आज नौजवान बड़ी संख्या में थे। वे लोग एक बड़े सैलाब की तरह, किनारे तोड़कर बाढ़ की बहती हुई नदी की तरह, एक-दूसरे को रेलते-पेलते आगे बढ़ रहे थे। बलवे की आशंका से दुकानदार चौकन्ने हुए। चार मीनार के आजू-बाजू के दुकानदारों ने अपने-अपने शटर गिरा दिए। दरवाजे बंद कर दिए। फुटपाथ पर रखा सामान जल्दी-जल्दी दुकानों में रखा जाने लगा।

दो-चार पुलिसवाले इधर-उधर तैनात खड़े थे। उनको हंगामे का कोई अंदेशा नहीं था। अचानक एक रेला-सा मसजिद से निकला और चार मीनार की तरफ आगे बढ़ने लगा। पुलिसवालों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन नमाजियों के इतने बड़े हुजूम ने पुलिसवालों को इधर-उधर धकेल दिए। वे तेजी से आगे बढ़ने लगे। वे लोग चार मीनार के पूर्व में बने लक्ष्मीजी के छोटे से मंदिर की ओर बढ़े। उन्होंने वहाँ तोड़-फोड़ शुरू कर दी। पत्थर बरसाए, मंदिर के पास बना पंडाल गिरा दिया तथा पंडाल के बंबू खींचकर तोड़ दिए। तोरण के पत्ते इधर-उधर बिखेर दिए। शामियाने के कपड़े फाड़ दिए। 'या अली' और 'अल्लाह-हू-अकबर' के नारे बुलंद होने लगे।

एकदम तेजी से उठती आवाज सुनकर पास ही के पुलिस स्टेशन में पुलिस चौकन्नी हुई। लाठियाँ लिये हुए दस-बारह पुलिसवाले बाहर आए।

भीड़ आगे बढ़ी। उन्होंने रास्ते के दोनों ओर पार्क की गई कारों-स्कूटरों के टैंक फोड़ डाले और वाहनों पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी। पाँच मिनट में तो सारा परिसर युद्धक्षेत्र में बदल गया। एक तरफ का युद्ध, स्वतंत्र भारत में मजहबी आजादी का युद्ध। न उन नमाजी मुसलमानों के रेले को रोकनेवाला कोई था, न उनका प्रतिकार करनेवाला।

वे लोग बेरोक-टोक सामने से आने-जानेवालों पर हमला कर रहे थे तथा वाहन जला रहे थे। चारों ओर वाहनों के जलने से धुआँ फैल गया। आग की लपटें उठने लगीं, लोग उधर-उधर दौड़ने लगे।

सामने से चली आ रही सलमा को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। उसके साथ उसकी दो भानजियाँ भी थीं। तीनों की उम्र सोलह और बीस वर्ष के बीच थी। ये लोग मद्रास से आए थे। ये इतमीनान से चूड़ियाँ खरीद रही थीं। ये लोग बंजारा हिल्स में अपने मामा के घर ठहरे थे। कल गोलकोंडा किला देखने गए थे और आज चार मीनार देखने का प्रोग्राम बना था। किसी ने कहा था कि चार मीनार लाड़ बाजार में चूड़ियाँ बड़ी खूबसूरत मिलती हैं।

ये तीनों चार मीनार देखकर लाड़ बाजार ही आई थीं। बड़ी बेतकल्लुफी से घूम रही थीं। ये तीनों लड़कियाँ हैदराबादी औरतों की तरह न बुर्कों से ढकी थीं, न इन्होंने काले लबादे पहने थे। शर्ट-सलवार में सलमा और उसकी भानजियाँ हिंदू हैं या मुसलमान, भेद करना कठिन था।

इतने में इन लोगों ने देखा कि लोग-बाग दौड़ रहे हैं। दुकानों के शटर फटाफट बंद हो रहे हैं। कपड़ों के गट्ठर अंदर लिये जा रहे हैं। खिलौने और बरतनों की दुकानें बंद होने लगी हैं। लोग अपने होश-हवाश खोकर इधर-उधर दौड़ रहे हैं। साइकिलें और रिक्शे तेजी से भागने लगे। स्कूटर तेजी से चलने लगे। कुछ औरतें तेजी से चलने और दौड़ने लगीं। रोड के बीच में एक बुढ़िया चली जा रही थी। शायद वह कोई हिंदू थी। उससे चला नहीं जा रहा था। अचानक एक पत्थर उसकी पीठ पर लगा और वह चीखकर वहीं बैठ गई। आजू-बाजू से गोल-गोल टोपी पहने हुए हजारों मुसलमान नमाजी दौड़ते जा रहे थे। सबके हाथ में पत्थर, लकड़ी, शीशे और न जाने क्या-क्या था। वे चिल्ला रहे थे—'अल्लाह-हू-अकबर···या अली···'

वह बुढ़िया बुदबुदा रही थी—''फिर वही मंजर! आज से पचास साल पहले रावलपिंडी में यही मंजर देखा था। तलवारें खनक रही थीं। सिर कट-कटकर गिर रहे थे। खून के रेले बह रहे थे। हे भगवान्! फिर वही सब···! ये लोग हिंदुस्तान में भी नहीं सुधरे। ऐसे ही मार-काट मचाएँगे। इनके खून में है मरना और मारना। ये हिंदुस्तान को भी पाकिस्तान बनाकर रहेंगे।''

दाईं ओर चार कारें जल रही थीं। गाढ़ा काला धुआँ उठ रहा था। दूसरी ओर, दो स्कूटरों को आग लगा दी गई थी। सलमा और उसकी भानजियाँ भागने लगीं, उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि वे किस ओर भागें। एक लड़की अकेली पड़ गई। इतने में नमाजियों के हुजूम ने उसे घेर लिया। चारों ओर लोगों का रेला था। वह परेशान होकर रोने लगी। नमाजियों में से एक तगड़ा सा आदमी सामने आया और उसने लड़की को उठा लिया। लड़की काँपने लगी। हाथ-पैर मारने लगी। लड़की

दुबली-पतली थी और नौजवान हट्टा-कट्टा था। वह उसे कंधे पर उठाकर पास की गली में भागा। उसके पीछे तीन नौजवान भी दौड़े।

वे लोग लड़की को गुड़िया की तरह उठाए दौड़ते जा रहे थे। दौड़ते-दौड़ते एक पतली गली में वे लोग गायब हो गए।

दो दुकानों के पट तोड़ दिए गए थे। कुछ मुसलमान नौजवान आग लगा रहे थे। दुकानें जलने लगी थीं। चारों ओर पत्थर-ही-पत्थर बिखरे पड़े थे।

एक पुलिसवाले ने कहा, ''यह तो लड़ाई के मैदान जैसा लगता है।''

दूसरा बोला, ''हाँ, आजाद हिंदुस्तान का लड़ाई का मैदान, जिसमें पुलिस को कोई इख्तियार नहीं, सिर्फ देखते रहो!''

चारों ओर से धुआँ उठने लगा। नारे लगने लगे। सीटियाँ और सायरन बजने लगे। जीपें दौड़ने लगीं। जीपों से वरदीधारी पुलिसकर्मी हाथ में डंडे लिये उतरकर भागने लगे। तब तक नजामी मुसलमान गलियों में भाग गए। उनको जो काम करना था, कर दिया।

पुलिस चार मीनार के चारों ओर फैल गई। १४४ सेक्शन लग गया। स्कूल से बच्चे लौटेंगे, काम से कर्मचारी और बाजार से औरतें लौटेंगी। कैसे?

चारों ओर दहशत भरा सन्नाटा पसर गया। जुमे की नमाज अदा हो गई। नमाजी अपने घरों में खुश थे और खुदा जन्नत में खुश था।

फ्लैट नं. ६, ब्लॉक नं. ३
केंद्रीय विहार, मियापुर
हैदराबाद-५०००४९
दूरभाष : ०४०-२३०४४६६०

गुड़गाँव का आदमी

कविता

• सुशील बुड़ाकोटी 'शैलांचली'

: एक :

गुड़गाँव का आदमी
पुश्तैनी जमीन बेचकर
रिहायशी कॉलोनियों के खातिर
बना कुछ सालों का अमीर
कार, कोठी, शानदार पार्टी और
विदेशी महँगी शराब पर
सारी धन-दौलत लुटाकर
फिर से होने लगा है गरीब
समय और किस्मत ने छला
डगमगा रहा है उसका जमीर
अपने को ठगा-सा महसूस कर रहा है
गुड़गाँव का अहीर।

: दो :

गुड़गाँव का आदमी
बहुराष्ट्रीय कंपनी के
बहुउद्यमी व्यवसाय में
बहुमंजिले वातानुकूलित कार्यालय में
बहुधा करता है बहुकाम
महँगी कार में सवार
घूमने जाता है सुदूर पहाड़ों पर
या सागर तट के शहर
साल में कई-कई बार
प्रेम-विवाह से पहले प्रेम-प्यार
बसाता है फिर एकल परिवार
सजाता है बहुमंजिले लिफ्टयुक्त घर
पर बमुश्किल बहुत कम समय के लिए
उतरने-चलने-घूमने
निकल पाता है जमीन पर।

: तीन:

गुड़गाँव का आदमी
पाता है ऊँची तनख्वाह
लेता है बड़े-बड़े कर्जे
मोटी-मोटी किश्तों पर
खर्च करता है दिल खोलकर
ब्रांडेड के नाम पर
शॉपिंग करता है मॉल में जाकर
पचास रुपएवाले समान के लिए
ऑनलाइन चुका देता है पाँच सौ तक
ठेठ रईसाना अंदाज में
और कभी अचानक नौकरी छूटने पर
बेच देता है रातोरात अपना घर
कार, टी.वी., फ्रिज, कंप्यूटर, फर्नीचर
महज कबाड़ के भाव पर
चला जाता है परदेश या छोटे शहर
सोचकर, कभी न लौटने को फिर
स्मार्ट सिटी, साइबर सिटी, गुड़गाँव शहर।

: चार :

गुड़गाँव का आदमी
रखता है कामवाली बाई सुदूर पूर्वी प्रांतवाली
बिहार-बंगाल या बांग्लादेशी
नहीं पड़ता उसकी जाति-पंथ या धर्म में
देता है उसे पैसा, कपड़ा, गृहोपयोगी चीजें
'बेचारी' कहकर
कामवाली का परिवार भी बस जाता है
निकट की झुग्गी-झोंपड़ियों में
खुशहाली के भ्रमजाल में
कि हो गया है वह भी अब गुड़गाँव का आदमी
यों गुड़गाँव का आदमी
मॉल, मेट्रो, पार्क व अस्पताल में
जाकर, आखिर वहीं कमाकर, यहीं गँवाकर
शराब और दुर्व्यसनों का शिकार
सहता है विषम-विषैले वातावरण की मार।
और अंत में
लौटने लगता है अपने मूल गाँव या शहर
धिक्कारते हुए गुड़गाँव शहर
अपनी नाक-भौं सिकोड़कर
गुड़गाव का आदमी।

१२८ गेरा स्ट्रीट, वाटर वर्क्स रोड,
मानसा-१५१५०५, पंजाब
दूरभाष : ०९७२९९०७०३७

वह अद्‌भत, शानदार प्राणी

• राकेश कुमार

मैं सोच रहा हूँ—क्या वह अभी भी जिंदा होगा और पहले से बड़ा हो गया होगा या फिर अब तक मर चुका होगा। उसके साथ थोड़ी छेड़खानी तो की थी, कहीं उसे चोट तो नहीं पहुँची थी? वह पानी से बाहर भी तो बहुत देर तक रह लिया था। इससे पहले कोई इतना सुंदर, विशाल, भव्य रंगोंवाला, संपूर्ण ज्यामितीय आकार का चमकता समुद्री शिलन भी तो नहीं देखा था। अब तक मैंने केवल पॉलिश किए हुए शंख-सीप देखे थे, जिनका इसके साथ कोई मेल नहीं बैठता है। भारत में मरीना-तट पर सुंदर आकार और विशाल समुद्री शैल देखे थे। सिंगापुर तथा ऑस्ट्रेलिया में भी अनेक प्रकार के समुद्री-शैल बिकते हुए देखे थे। अपने ड्राइंग-रूम की शोभा बढ़ाने के लिए सिंगापुर से एक सुंदर सीप खरीदकर भी लाया था, परंतु उसकी चमक इसके सामने कुछ भी नहीं थी।

पूरा शंख-शैल मेरी हथेली के बाहर तक निकल रहा था, निकट से देखने पर उसके अंदर का कीट बिना हलचल किए वहाँ था। वह स्वयं के बनाए हुए मजबूत किले में असहाय सा लग रहा था। मेरी पत्नी रीता ने समुद्र तट पर घूमते हुए, सफेद चमकीली रेत से इसे बहुत सावधानी से उठाया था और अपनी खुशी को साझा करने के लिए दौड़कर आई थी। प्रकृति की इस सुंदर रचना के लिए हम दोनों आश्चर्यचकित थे और असीमित प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था। हम दोनों को ही इसे अपने साथ, लक्षद्वीप के सुदूर तटों से एक स्मरण के रूप में अपने घर दिल्ली ले जाने का विचार आया।

लक्षद्वीप द्वीप समूह अरब सागर के बीच स्थित है। इसमें ३६ मुख्य द्वीपों, कई छोटे द्वीपों, कोरल, एटोल और प्रवाल-भित्ति होते हैं। इन प्रवाल-भित्तियों में से प्रत्येक द्वीप और उनके चारों ओर समुद्र, एक अनूठा रंग और सौंदर्य प्रदान करते हैं। ३६ द्वीपों में से केवल १० द्वीपों—अगाटी, अमिनी, एंड्रोट, बित्रा, चेतलाट, कदमत, कल्पनी, कवारती, किलातन और मिनिकॉय में ही आदिवासी बसे हुए हैं। प्राचीन ज्वालामुखीय संरचनाओं पर आधारित लक्षद्वीप १२ एटोल, ३ रीक्स और ५ जलमग्न तटों के साथ भारत का सबसे छोटा राज्य क्षेत्र है। प्रकृति प्रेमियों के लिए यह एक दर्शनीय गंतव्य स्थान है, इसके हरे-भरे परिदृश्य अविश्वसनीय समुद्री जीवन, नरम चाँदी के समुद्र तट और पानी के खेल सैलानियों को आमंत्रित करते हैं।

उस दिन हम लक्ष-दीप समूह के बंगारम द्वीप में थे। हम दोनों के लिए भारत के दक्षिण-पश्चिमी द्वीप समूह की यह पहली यात्रा थी। यह द्वीप प्रकृति का सबसे सुंदर और बेझिझक उपहार, जिसने अपने प्राकृतिक रूप को बनाए रखा है। भारत सरकार की तरफ से इस स्थान

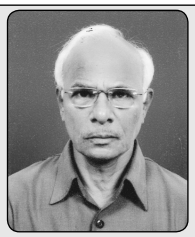

पढ़ने-लिखने का शौक। भारत सरकार के दूर-संचार विभाग में सलाहकार के पद पर आसीन रहे। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं।

की पहचान को बनाए रखने के लिए भरपूर प्रयास हो रहे हैं। वहाँ पर पर्यटकों को जाने के लिए पूर्व में स्वीकृति लेनी पड़ती है। जनवरी का महीना सबसे अच्छा होता है। पर्यटकों के रहने के लिए आई.टी.डी.सी. का एक होटल है।

इस छोटे से प्रदूषण रहित द्वीप में खजूर और ताड़ी के पेड़, जल जीव और मुश्किल से १०० आदिवासियों की आबादी है। यह अभी भी आधुनिक सभ्यता से अछूता है। ताड़ी और खजूर, मछलियाँ तथा बारिश का पानी ही इन आदिवासियों के जीवन का सहारा रहा है, लेकिन अब कोचीन (मुख्य भूमि) से आलू, चावल और कुछ अन्य खाद्य पदार्थों की आपूर्ति हो जाती है, जिससे उनकी जीविका अच्छी चलती है। पर्यटकों के आने से कुछ और सुविधाएँ भी मिलने लगी हैं, लेकिन रहन-सहन में कोई बदलाव नहीं आया है।

दिल्ली से कोचीन की तीन घंटे की हवाई यात्रा एयर इंडिया से पूरी की, यात्रा बहुत सुगम थी। वहाँ से कावारत्ती एक छोटे जहाज जिसमें कुल १४ व्यक्ति ही बैठ सकते थे, से की। इस तरह के हवाई जहाज में बैठने का यह पहला अवसर था। सभी को खिड़कीवाली सीट मिली थी। इतनी ऊपर से भी समुद्र तट पर स्वच्छ, सफेद, चमकती रेत, पारदर्शी जल में कछुए की दुर्लभ प्रजातियाँ और बहु रंगीन मछली और अनेक समुद्री जीव व वनस्पतियाँ दिखाई दे रही थीं, वह भी बिना किसी दूरबीन की सहायता से। यह अनूठा अनुभव किसी को भी मंत्रमुग्ध कर सकने में सक्षम था। यात्रा तो डेढ़ घंटे की थी, पर समय का पता ही नहीं चला, कुछ ही देर में हवाई जहाज नीचे आने लगा। मन में यह विचार आया कि अभी वह समुद्र के ऊपर चक्कर लगाता रहे। ऐसे निराले, सुंदर जीव तो किसी एक्वेरियम में भी नहीं देखे थे। प्रकृति की छटा निराली थी। अब प्लेन नीचे उतर चुका था।

इस यात्रा पर जाने का सौभाग्य मुझे एक संसदीय समिति के साथ जाने के कारण मिला था। समय-समय पर हमारे संसदीय सदस्य (कानून निर्माता) किसी बहाने भारत भ्रमण को जाते हैं, जिसमें सरकार द्वारा दी जानेवाली सेवाओं का प्रथम दृष्टि अवलोकन, जिसमें दूरसंचार सेवाएँ और वहाँ की जनता की समस्याएँ, हिंदी भाषा का प्रचलन

और कार्यान्वयन तथा विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के साथ अन्य मुद्दों पर चर्चा होती है। इसकी मेजबानी करने की जिम्मेदारी पब्लिक सेक्टर उपक्रम के ऊपर ही होती है। हमारे लोक-प्रतिनिधियों, माननीय सांसदों का भारत सरकार के खजाने की लागत पर दौरे का उद्देश्य स्थानीय लोगों के साथ बातचीत करना है, ताकि उन्हें सामना करनेवाली कठिनाइयों को समझना और सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं में सुधार करना हो सके। प्रत्येक वर्ष ही संसदीय समितियों के लिए इन यात्राओं का आयोजन किया जाता है, जिसमें लगभग १० दिनों में ३ से ४ दर्शनीय स्थानों पर यह कार्यक्रम चलता है। हमारे कानून निर्माता अपने पति/पत्नी के साथ आते हैं। रहने, स्थानीय परिवहन और अन्य सुविधाओं के लिए इन यात्राओं का बोझ सरकारी पी.एस.ई. ही वहन करती है, जो अपनी अगली यात्रा तक कम-से-कम अपनी स्मृति को जीवित रखने के लिए उदारता से उपहार दे देते हैं। इससे उनके निष्पादन के बारे में कोई नकारात्मक रिपोर्टिंग सुनिश्चित नहीं होती है। पत्रकारों और मीडिया कर्मियों को बातचीत करने की अनुमति नहीं है और इस तरह की बैठकों की रिपोर्ट गोपनीय रखी जाती है। हालाँकि, हाल ही में इन पी.एस.ई. पर प्रतिबंध लगाया गया है कि कोई महँगे उपहार नहीं दिए जाएँगे और पूरे व्यय को संसदीय मामलों के मंत्रालय द्वारा वहन किया जाएगा। इसने केवल पी.एस.ई. (सार्वजनिक उपक्रम) के शीर्ष अधिकारियों का जीवन ही मुश्किल बना दिया है।

दिसंबर २००३ के दौरान प्रशासनिक मंत्रालय से एक प्रतिनिधि के रूप में एक ऐसी संसदीय समिति के साथ जाना चाहता था, जो विभाग पी.एस.ई. के स्थानीय अधिकारियों के साथ संबंध स्थापित करने के लिए था। इससे मुझे एक मौका मिला, जिसमे मुझे सांसदों को दिए गए आराम और उपचार का आनंद मिला। वहाँ पर परंपरागत तरीके से भव्य स्वागत हुआ। ढोल-नगाड़े बजाते हुए आदिवासी तरह-तरह से सुसज्जित थे। मेरी पत्नी डॉ. रीता को भी अच्छे तरीके से सामाजिक तौर पर बातचीत करने और कार्टून निर्माताओं की पत्नी के साथ मिलने का अच्छा अवसर मिला, जो शीघ्र ही आत्मीयता में बदलता दिखा। रीता ने उन्हें बहुत ही मिलनसार और व्यावहारिक पाया, भले ही एक ब्यूरोक्रेट और राजनीतिज्ञ के बीच बहुत अंतर होता है, परंतु पत्नियों के बीच यह अंतर नहीं दिखाई दिया। वहाँ पर परंपरागत तरीके से भव्य स्वागत हुआ।

उस दिन लक्ष्यद्वीप समूह के बंगारम द्वीप में हमारा आखिरी दिन था। हम अगले दिन सुबह वापस लौट रहे थे। हम प्रकृति के साथ जितना अधिक संभव हो, उतना समय व्यतीत करना चाहते थे, सफेद रेत से भरा विशाल समुद्र तट और पानी के प्राणियों के बीच अलौकिक अनुभूति। जब मैं स्नॉर्कलिंग का आनंद ले रहा था, रीता ने रिसॉर्ट से कुछ दूर तट से एक लंबा सफर तय किया। रेत पर पानी से १० मीटर की दूरी बनाए वह बहुत दूर निकल गई थी, पर झूठ बोलते हुए कहा कि वह पास ही तो गई थी। उसकी चाल और चेहरे से कुछ पढ़ने की कोशिश करनी चाही। वह अवश्य इस अद्भुत प्राणी को लेकर दूर से आ रही थी। इसको पाकर कोई भी आकर्षित हो गया होता, प्रकृति का सृजन कितना सुंदर और रहस्यमय होता है! एक परिपूर्ण सर्पिल का आकार, अनेक रंग से सुशोभित, लगभग तीन इंच लंबा दो इंच के अधिकतम व्यासवाला कितने समय में बना होगा, कैसे यह आकार और छटा गढ़ी गई होगी। यह एक विभिन्न रंगों से निर्मित, जिसमें हरे से आसमानी रंग के बिखरते धब्बे, हलके चेरी रंग के आधार लिये, पूर्ण ज्यामातीय डिजाइन के साथ युवा शंख लग रहा था। मुझे याद नहीं है कि यह कितने और रंगों का था। यह सिर्फ आकर्षक और मनमोहक था।

फिर रीता ने मेरे हाथ से लेकर इसे पानी में डुबो दिया, लेकिन कोई हलचल नहीं हुई। उसने इसे फिर से उठाया, इसे अच्छी तरह से देखा और फिर से उसे मेरी हथेली में रख दिया। थोड़ी देर हथेली में रखने के बाद सोचने पर विवश हो गया और अनिर्णीत रहा कि आगे क्या करना है?

अपने साथ इस प्राणी को ले जाने के लिए विभिन्न विचार आ रहे थे, क्या यह जीवित है? क्या यह कृत्रिम वातावरण में और नल के पानी में जीवित रहेगा और कितने समय तक? यदि यह पहले से ही मर चुका है, तो क्या कुछ समय बाद यह सड़ जाएगा? क्या हम शैल से कीट को हटा दें, यदि ऐसा है तो क्यों और क्यों? क्या शैल से जीव को निकालने के लिए हम स्थानीय लोगों को विश्वास में ले सकते हैं? क्या प्राकृतिक उत्पादों को द्वीप से बाहर ले जाने की अनुमति है। ये संदेह, सवाल और आशंकाएँ थीं। इन विचारों का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं था और समय समाप्त हो रहा था, जगह नई थी।

मैं रिसॉर्ट के सेवाकर्मी से पूछने के लिए गया, वह मेरी बात समझने का प्रयास कर रहा था। उसने पास खड़े सेवा-प्रबंधक की तरफ देखा और धीरे से मुसकराते हुए अंदर के कीट को हटाने के लिए कुछ टिप की अपेक्षा दिखाई। समुद्र के जीवों का भक्षण करनेवालों के लिए यह आम बात लगी। उसने बताया कि वह इस शंख को गरम पानी में डालेगा, जिससे कीड़ा बाहर आ जाएगा और फिर शंख को अंदर से साफ कर देगा। थोड़ा सा विचार करने के बाद हमने किसी के प्राण न लेने के विचार से अपने को रोक लिया और सेवा प्रबंधक से शैल वापस ले लिया।

हम समुद्र तट पर वापस लौट आए। संध्या का समय हो चुका था, हल्की ठंडक और समुद्र में उछाल आ रहा था। कुछ पर्यटक अपने परिवारों के साथ अभी भी समुद्र तट पर थे। प्रकृति की इस दुर्लभ देन को हथेली पर रखते हुए अंतिम बार सराहा और पूरी शक्ति से जितना दूर हो सकता था, समुद्र में फेंक दिया और वापस रिसोर्ट की तरफ चल पड़ा। अब मन में संतोष था। इतने अंतराल के बाद भी विचार आ ही जाता है कि शंख-शैल में जंतु जीवित है और अपने पूर्ण आकार में बढ़ रहा है? हालाँकि मुझे इसका कभी पता नहीं चलेगा। पर उस समुद्री जीव की याद पीछा नहीं छोड़ती।

साअ

डी-२ सेक्टर-४८
नोएडा-२०१३०१
दूरभाष : ०१२०-२५७१११२

लोकगीत की कोख से उपजा 'चटनी संगीत'

● चंद्रकांता किनरा

कौन फुलवा ऽऽऽ
कौन फुलवा ऽ फुलेला गे बनवा
गमक रहल बा कोनाऽ कोना ऽऽऽ

इस लोकगीत के बोल उत्तर प्रदेश, बिहार की याद दिलाते हैं, परंतु यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि यही नहीं, इन प्रांतों में प्रचलित बिरहा, कजरी, चैती, झूला, बारहमासा, सोहर, विवाह गीत भारत से बाहर डायस्पोरा देशों में अब नए अवतार 'चटनी संगीत' के रूप में लोकप्रिय है। सूरीनाम, ट्रिनिडाड, मॉरीशस जमेका, गुयाना और फीजी में भोजपुरी और क्रियोल के मिश्रण से जनमे चटनी संगीत की लोकप्रियता का आलम यह है कि वहाँ कोई भी उत्सव, विवाह, मेला या डांसफ्लोर इसके बिना अधूरा रहता है।

पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, इंद्रप्रस्थ कॉलेज। संप्रति अतिथि प्रवक्ता, हिंदी विभाग (दिल्ली विश्वविद्यालय)।

लगभग डेढ़ सौ बरस पहले अंग्रेज शासकों द्वारा गन्ने और कॉफी की खेती की देखभाल करने के लिए सात समंदर पार लाए गए गिरमिटिया श्रमिकों का जीवन कठिनाइयों का पर्याय था। लंबी कठिन यात्रा, रोगों के प्रकोप और दिनभर खेतों में हाड़तोड़ मेहनत से थके-हारे 'जहाजी भाइयों' के मनोबल को बनाए रखने में उनकी अपनी मिट्टी से जनमे रोपाई, बुवाई, जन्म, विवाह, वियोग के गीतों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। लोकगीतों की मधुरता में अपनी संस्कृति से बँधे हुए वे गुलामी और आर्थिक संघर्ष से परास्त नहीं हुए।

अनुबंध (अग्रीमेंट) समाप्त होने के पश्चात् जो गिरमिटिया श्रमिक अपने देश नहीं लौटे और यहीं बस गए, वे धीरे-धीरे यहाँ की भाषा 'क्रियोल' सीखने लगे। उनकी आनेवाली पीढ़ियाँ शिक्षित होने लगीं, लेकिन उनके घर-परिवार में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग होता रहा। क्रियोल में भोजपुरी के शब्दों और मुहावरों के छौंक तथा लय-ताल के लिए परंपरागत हारमोनियम, ढोलक, धनताल, तासा के साथ इलेक्ट्रिक गिटार, सिंथेसाइजर और स्टील के ड्रमों के प्रयोग से चटपटे 'चटनी संगीत' का जन्म हुआ।

सन् १९४० के आसपास गन्ने के खेतों, मंदिरों, विवाह-शादियों में 'चटनी संगीत' के बोल सुनाई देते थे, उनका कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं था। १९६८ में साउथ अमेरिका के एक छोटे से देश सूरिनाम के 'रामदेव चैतो' का पहला गीत रिकॉर्ड हुआ। मूलत: धार्मिक होते हुए भी लय-ताल में बँधे रामदेव चैतो के गीत नृत्योपयोगी थे, जैसे—

भूलऽ बिसर मत जाना
अजी, भूल बिसर मत जाना
कन्हैया मोरी गलियों में आना
जब तुम मेरा नाम न जाऽना
मेरा नाम दीवाना
कन्हैया मोरी गलियों··

आरंभिक चटनी गीतों की प्रकृति धार्मिक होने का कारण यह था कि ज्यादातर चटनी गायक अपनी गायकी का आरंभ मंदिरों से करते थे जहाँ भजन-कीर्तन भोजपुरी में होता था।

भारतीय कैरेबियाई संस्कृतियों के मिश्रण से उद्भूत इस अनूठे संगीत में लगभग एक दशक के बाद महिला गायिका द्रौपती के आने से एक नया मोड़ आया। परंपरागत विवाह-गीतों पर आधारित उनके एलबम 'लैट अस सिंग एंड डांस' में गायन के साथ नृत्य की जुगलबंदी से लोकप्रियता का नया कीर्तिमान स्थापित हुआ, इसके नृत्योपयोगी गीतों की बानगी इस प्रकार है—

मोरी गारी सुनो महाराज
दुलहे राम ललाऽऽऽ
दुलहे के बप्पा देखो अजवा सजे हैं
अलाऽऽ जइसे राजा महाराऽऽज
दुलहे राम ललाऽऽऽ

ट्रिनिडाड और टौबेगो में चटनी संगीत को जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय सातवें दशक के संस्कृतिप्रेमी मोइन मुहम्मद और उनके भाई को है, इन्होंने रामदेव चैतो और द्रौपती जैसे चटनी के महारथियों के 'शो' आयोजित किए। इनके भाई कमालुद्दीन, जो स्वयं रेडियो कलाकार थे, ने भारतीयों के लिए प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम में चटनी संगीत को शामिल करवाया।

ट्रिनिडाड के बारकपुर से आए 'सुंदर पोपो' के आने से चटनी में

एक निर्णायक मोड़ आया। अपने चर्चित गीत 'नाना और नानी' में सुंदर पोपो ने दूर गाँव में बसे वृद्ध दंपती की दिनचर्या को हिंदी-अंग्रेजी मिश्रित भाषा में मजाकिया लहजे में प्रस्तुत किया—

नाना नानी घर से निकले धीरे-धीरे चलते गए,
मदरा के दुकान में दूनो जाके बैठ गए।
आगे-आगे नाना चले,
नानी गोइंग बिहाइंड,
नाना ड्रिंकिंग व्हाइट वाइन
नानी ड्रिकिंग वाइन।

उनके 'हम न जइबे', 'सुराजी', 'मदर्स लव' और 'फिल्लौरी बिना चटनी' आदि गीतों ने उन्हें प्रतिष्ठित सिंगर बना दिया। इस समय के कुछ अन्य चटनी कलाकारों लिलीजॉन, सैम बूदराम, 'लाखन करिया', 'आनंद यानकरण', 'सोनी मान' के गीतों को रिकॉर्ड कर उन्हें पूरी दुनिया में पहुँचाने का श्रेय रोहित जगेसर को है, व्यवहार और व्यापार कुशल रोहित जगेसर ने १९८० के दशक में दुनिया भर के बड़े-बड़े स्टेडियम और क्रिकेट क्षेत्रों में चटनी संगीत के 'लाइव कान्सर्ट' आयोजित किए।

चटनी की लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण गिटार, ऑर्केस्ट्रा आदि पश्चिमी वाद्यों का प्रयोग था। कंचन बाबला के 'कुछ गड़बड़ है' की सफलता देखकर अन्य चटनी कलाकारों ने भी केलिप्सो और अमेरिकन लय-ताल का मिश्रण करके अपनी संगीत-शैली को चटपटा बनाया और उसे नाम दिया 'इंडियन सोका'। कार्निवाल सेंशन में ट्रिनिडाड और टोबेगो में 'चटनी सोका' प्रतियोगिताएँ होने लगीं। ट्रिनिडाड को 'द्रौपती रामगोनाई' को 'चटनी क्वीन' की उपाधि से नवाजा गया, यद्यपि उनकी उत्तेजक और कामुक नृत्य मुद्राओं से युक्त शैली की आलोचना हुई।

पिछले कुछ वर्षों में विशेष रूप से त्रिनिडाड में संगीत के माध्यम से साईंबाबा की स्तुति करनेवाले आयोजनों ने चटनी संगीत को बढ़ावा दिया है। भारतीय रागों पर आधारित, ऊँची पिच पर गाए जानेवाले इन भक्ति गीतों में तेज गति से कुछ पंक्तियों की बार-बार आवृत्ति इस कीर्तन को चटनी के समकक्ष खड़ा कर देती है।

मॉरीशस में चटनी संगीत का क्रमिक विकास 'सेगा भोजपुरी' से 'सेगा चटनी और फिर 'सेगा बॉलीवुड' के रूप में हुआ है। सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी में अफ्रीकी देशों से आए गुलाम श्रमिकों ने यूरोपीय प्रभाव को आत्मसात् कर जिस गायन और नृत्यशैली को जन्म दिया, वह 'सेगा' कहलाया। सेगा भोजपुरी में रावान्ने मारवान्ने और ट्राइएंगल आदि वाद्यों के साथ-साथ भारतीय संगीत वाद्य ढोलक, तबला, हारमोनियम भी शामिल हो गए। १९५० तक औपनिवेशिक सत्ता और कैथोलिक चर्च ने इस संगीत-शैली का तिरस्कार किया, लेकिन धीरे-धीरे पार्टियों में इसने अपनी जगह बना ली।

भोजपुरी को सेगा के रंग में रँगने की अनिवार्यता की चर्चा करते हुए मॉरीशस की महिला गायिका विस्वानी दीपोय का कहना है कि 'हम अपने गीतों की रचना सेगा की लय पर नहीं करेंगे तो कोई भी इन्हें नहीं सुनेगा।'

सेगा चटनी में ऑर्केस्ट्रा के साथ चूले (सीटी) का प्रयोग दर्शकों को झूमने के लिए विवश कर देता है, 'मॉरीशियन चटनी' एलबम का एक गीत है—

डिस्को में
गामात में
पिकनिक में, पार्टी में, हम नाचिला
ला टैंट में, हम नाचिला।

विवाहोत्सव आदि में किए जानेवाले मनोरंजनात्मक नृत्य गमात को आधुनिक रंगत देकर चटपटा बनाने की प्रक्रिया में नब्बे के दशक में 'भोजपुरी बॉयज', 'भोजपुरी लवर्स', 'भोजपुरी बाजा बाजे ब्वॉयज' 'मसाला चटनी', 'मिक्स चटनी' आदि संगीत समूहों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इन दलों में शामिल नृत्यांगनाओं और फ्यूजन संगीत ने जनता को मोह लिया। 'भोजपुरी बॉयज' एलबम की एक मोहक रचना है—

ऐ लांगडू, ऽऽ ऐ लांगडू, ऽऽऽऽ
जिया जरेलात, बोलियन
ऐ लांगडू
ओकरा सजा के सिनेमा ले जाले,
हमारा दिखा के पिकनिक ले जाले
हाय करेजा फाटेला
ऐ लांगडू ऽऽ
ऐ लांगडू ऽऽऽऽ

लोकसंगीत के क्रियोलाइजन में संगीत के प्रबंधकों की महती भूमिका है। हैनरिऑट फिगारो जोज मैथ्यु अथवा क्लौरो बिगन्याक्स और भारतीय मॉरीशियन लोगों में रवीन सोवंबर और नंद रामदीन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रवासी संसार में संस्कृति के उत्थान के लिए प्रयासशील मॉरीशस की जानी-मानी हस्तियाँ सुश्री सरिता बूधू और सुश्री सुचिता रामदीन ने इस नृत्यशैली के पुनरुद्धार के लिए अथक प्रयास किए हैं। महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट और मॉरीशस भोजपुरी इंसटीट्यूट में इस संबंध में औपचारिक और अनौपचारिक कार्यक्रमों का आयोजन करके वेषभूषा और नृत्य-शैली के स्तर पर इन्होंने चटनी संगीत को भव्य बनाने का प्रयास किया है।

भारतीय समाज में विभिन्न संस्कारों, प्रथाओं, ऋतुओं से संबंधित गीत गाने का कार्य स्त्रियाँ ही करती रही हैं। केवल महिलाओं के बीच

गाए जानेवाले गीतों में पंजाब में विवाह से एक दिन पहले 'लेडीज संगीत' का आयोजन किया जाता रहा है। इसी तर्ज पर त्रिनिडाड में 'माटीकोरा नाइट' प्रचलन में आया, जिसमें बाहर से मिट्टी खोदकर लाने, उसे पूजास्थल पर रखने के साथ-साथ नीचे झुके-झुके नृत्य किया जाता है। पुरुषों की नजरों से दूर विवाहित महिलाओं द्वारा गाए जानेवाले इन गीतों में होनेवाली दुलहन को द्विअर्थी शब्दों में विवाहोपरांत दिनचर्या की जानकारी दी जाती है। माटीकूर गीत का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पंखा डोलाय दियो ना
सजन जी पंखा डोलाय दियो ना।
हो हमका, हो हमका, हो हमका
गरमी बहुत है लागि।
बलम जी, पंखा डोलाय दियो ना।

मॉरीशस में दुलहन के साथ दूल्हे के घर पर 'गीत गावनी' के रूप में गीत और नृत्य का आयोजन होता है। जिसमें स्त्री-पुरुष सब गाते और नाचते हैं। कभी-कभी पुरुष स्त्रियों का वेश धारण करके नृत्य करते हैं, जो संभवत: बिहार में होनेवाले 'लौंडा नाच' का प्रभाव है।

'कुली वुमन' की प्रतिष्ठित लेखिका गायत्रा बहादुर ने अपनी दादी की भारत से गुयाना की यात्रा का वर्णन करते हुए चटनी संगीत के प्रति अपने लगाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'वे एक संभ्रांत परिवार से हैं और चटनी संगीत के प्रति उनके झुकाव को उनकी माँ टेढ़ी निगाहों से देखती थीं, लेकिन न्यूयॉर्क, फलोरिडा, टोरंटो, लंदन में होनेवाले विवाह-शादियों में सभी अंकल-आंटियों को चटनी संगीत पर एक साथ थिरकते हुए देखकर उन्हें लगता था कि यह संगीत उनकी जड़ों से जुड़ा है।'

चटनी संगीत की विकास-यात्रा से गुजरते हुए यह साफ हो जाता है कि आरंभ में पीड़ित कुली की व्यथा, गोरे लोगों के प्रति घृणा, विरहिणी के दु:ख, दांपत्य जीवन के रोजमर्रा अनुभव चटनी संगीत के विषय हुआ करते थे; जैसे—

गड़बड़ भई आजि घर में
हाथ उठि गएल हमार
घर में औरति बात न माने
रोज खोजत है झगड़ा,
हाथ उठि गए हमार।

लेकिन अब घरेलू हिंसा, पति की नशे की लत से त्रस्त पत्नी अपनी स्थिति के विषय में सवाल करती हुई दिखाई देती है, जो महिला सशक्तीकरण की आधुनिक विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। अनिल सिंह रामेसुर का 'धाल पकायेली' और बिस्वानी दीपोय का 'शादी करके' जैसी रचनाएँ इसकी गवाही देती हैं।

लोकसंस्कृति के ताने-बाने से शुरुआत करनेवाला चटनी संगीत अब वैश्वीकरण और सूचना विस्फोट से अछूता नहीं। नई पीढ़ी अफ्रीकी, पश्चिमी, यूरपीय या मिडिल ईस्ट की सीमाओं में बँधना नहीं चाहती। ढोलक, हारमोनियम, तासा की सुगम लय में ढले गीतों से आगे इलेक्ट्रिक गिटार, ड्रम, की बोर्ड की धुनों पर बड़े-बड़े मंचों पर थिरकना चाहती है, फलत: चटनी के नए-नए रूप सामने आ रहे हैं। जैसे 'रेगा चटनी', 'चटनी भाँगड़ा', 'चटनी सोका', 'सेगा चटनी', 'बॉलीवुड चटनी'। मिट्टी से उपजा संगीत अब हाइब्रिड हो गया है। सा.अ.

सी-२९, सी.सी. कॉलोनी
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ९८१०१७६४००

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 1110734393 IFSC-CBIN 0280297 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

बाल-कविताएँ

'गुड मॉर्निंग' सूरज दादा

● माला श्रीवास्तव

चींटी रानी

चींटी रानी-चीटीं रानी
छोटी है पर बड़ी सयानी,
मिल-जुलकर सब काम है करती,
लाइन बनाकर हरदम चलती,
राह में दु:ख-सुख कहती-सुनती,
नहीं कहीं है धक्का-मुक्की,
ना ही करती मारामारी,
चींटी रानी बड़ी सयानी।

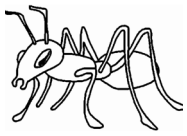

कालू दबंग

कालू कौआ बड़ा दबंग,
करता सबकी नाक में दम।
छीना-झपटी उसके शौक,
पंछी खाते उससे खौफ।

देखकर कालू की शैतानी
बिल्ली मौसी को आया गुस्सा,
उछल उसे जा धर-दबोचा
कालू काँव-काँव चिल्लाया
अपना गैंग झट बुलवाया।

देखकर कालू की पलटन भारी
भागी डरकर बिल्ली बेचारी,
पर कुत्ते की भौं-भौं के आगे
दबंगों की टोली भागी।

सूरज दादा

सूरज दादा घर से निकले
'लाल शर्ट' में सज-धजकर,
'गुड मॉर्निंग' सूरज दादा
चिड़ियों ने गाया हिल-मिलकर

सूरज दादा इतराने लगे
चाल अपनी तेज दिखाने लगे,
हर ठाँव-छाँव की आस लिये
धूप से सब कतराने लगे।
सूरज दादा का पसीजा मन
समेटा अपना धूप बिछावन,
चल दिए वे अपने घर
हाथ हिला बाय-बाय कर।

रानी बिटिया आँखें खोलो

सुबह-सुबह है सूरज आया
लाल-सुनहरा सूरज आया,
धरती ने लेकर अँगड़ाई
अपनी नींद तुरंत भगाई।

मम्मी ने की रसोई में खटपट
पापा ऑफिस भागे सरपट,
रानी बिटिया आँखें खोलो
बैग सँभालो झटपट-झटपट।

तुमको भी तो स्कूल है जाना
पढ़ना-लिखना मेहनत करना,
जग में देश का नाम है करना,
रानी बिटिया आँखें खोलो
अपनी नींद तुरंत भगाओ।

शादी का लड्डू

बंदर आया-बंदर आया
ढोल बजाता बंदर आया
शादी कर बँदरिया लाया,
बँदरिया अब उसे नचाती
लिपस्टिक-पाउडर रोज मँगाती
बंदर जी-भरकर पछताया
शादी का लड्डू क्योंकर खाया?

सँवराए बादल

जल का भार सीने में दबाए
घनीभूत से, पीड़ा से
सँवराए बादल,
धरती पर पाँव टिकाए
मंथर गति से सरकते
गगन में छा गए हैं,
यह गम ही तो उन्हें उदार बनाता है

सुपरिचित कवयित्री। एम.ए. हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय। कुछ रचनाएँ 'कादंबिनी' में एवं 'पाँचवाँ स्तंभ' में भी एक कविता प्रकाशित।

धारा की विदाई की पीर का
एहसास कराता है,
उसके घावों पर मरहम लगाने को
वे पिघलकर अश्रुओं की धार बन
छम-छम बरस जाते हैं
वे श्यामल बादल।

तपन सृजन की

तीखी चिलचिलाती धूप को
लू के पंखों पर विचरते देख
राह रोकी गुलमोहर के,
चटख लाल-पीले फूलों ने
जरा ठहरो, रुको
कुछ हँसो, गुनगुनाओ हमारे संग भी,
धूप तपते-तपते ही मुसकाई, बोली—
'तुम्हें यह शोख रंग
मेरी तपन ने ही तो दिए हैं
राह न रोको मेरी', वह बढ़ चली।
तभी लहराते-सरसराते नीम ने
गलबहियाँ डाल उसे थामना चाहा,
पर सुखद आलिंगन के इस मोहपाश से
स्वयं को मुक्त कर
वह बढ़ चली,
वह जानती थी
तपन ही उसकी शक्ति है सृजन की
वह बढ़ चली।

सा अ

डी-३६, सीनियर सिटीजन होम कॉम्प्लेक्स
पी-४, ग्रेटर नोएडा-२०१३१०
दूरभाष : ९९५३६४९०९१

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का मई अंक मिला। आनंद शर्मा का आलेख 'हरिहर रूप का रहस्य' ज्ञानवर्धक तथा गोपाल चतुर्वेदी का व्यंग्य 'भिखमंगों का देश' व राजगोपाल सिंह वर्मा की कहानी 'छुटकी' सराहनीय हैं। मृणालिका ओझा का लेख 'वर्तमान समस्याएँ एवं लोक की भूमिका' में पृष्ठ ७० पर तथ्य गलत दिए गए हैं। सही तथ्य हैं—२९ नियम 'विश्नोई संप्रदाय' के प्रवर्तक संत जांभोजी (ई. १४५१-१५३६) ने दिए थे। श्री संत जांभोजी पीपासर (जिला-नागौर, राजस्थान) के रहनेवाले थे। इस संप्रदाय के सुचारू संचालन एवं विधि-विधान के रूप में २९ (२०+९) नियम बनाए थे और इस कारण यह संप्रदाय 'बिश्नोई' कहलाया। २९ नियमों में वन एवं पर्यावरण संरक्षण तथा जीव-हिंसा न होने देने का प्रावधान है, जिसे आज भी यह संप्रदाय समर्पित भाव से संरक्षण व रक्षा प्रदान करता है। राव जोधाजी ने जोधपुर (राजस्थान) शहर की स्थापना की थी, अत: इस शहर का नाम राव जोधाजी के नाम पर जोधपुर रखा गया। वे यहाँ के शासक भी थे। ***—पी.आर. गर्ग, जालोर (राज.)***

इस अंक की कहानियाँ तथा उर्वशी अग्रवाल की गजलें, रामदरश मिश्रजी की 'माँ के प्रति श्रद्धांजली', 'भारतीय और भारतेतर आचार्यों की दृष्टि', राजीव रंजन का 'मैं तीसरे गाँव का आदमी हूँ', मीना अरोड़ा की 'हुक्मरान की भैंस' रचनाएँ अच्छी लगीं। ***—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा***

साहित्य-संस्कृति का संवाहक 'साहित्य अमृत' का मई अंक यथासमय हस्तगत हुआ। आपने तो कमाल कर दिया, 'गागर में सागर' लहरा दिया, आपका 'श्रम-साहस' सिंदबाद की साहसिक यात्रा सा लगता है। विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित आपका संपादकीय न केवल पठनीय बल्कि मननीय भी है। अंक में आए आलेख, कहानी, कविता भी एक से बढ़कर एक हैं, वहीं आत्मकथा, उपन्यास अंश, व्यंग्य, लोक-साहित्य, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत में परोसी गई सामग्री भी मनमोहक लगी। पाठकों की प्रतिकियाएँ, साहित्यिक गतिविधियाँ आदि देकर आप एक-दूजे से जोड़ने का पुनीत कार्य कर रहे हैं। ***—मदन देवड़ा, उज्जैन (म.प्र.)***

शांत लघु लहरियों से आपूरित अपना जलाशय और नौसिखिए तैराकों का डर, विस्मय व आनंद से भरी मुद्राओं को उकेरता गतिमान छायाचित्र लिये 'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर विशिष्ट पुस्तकों का विश्लेषण, विवेचन करते हुए मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। शौर्य परंपराओं का समय-समय पर अवलोकन भविष्य में भी व्यक्तित्व निर्माण के लिए प्रेरित करेगा। 'साहित्य का विश्व परिपार्श्व' में सर्बिया की कहानी 'मारक शत्रु' भयानक बीहड़ जंगलों से निकली और घृणा की गोद में पलकर भी अद्‌भुत कोमल गाथा है। ***—प्रमिला मजेजी, कोरबा (छ.ग.)***

'साहित्य अमृत' के चौबीस वर्ष पूर्ण होने पर अगस्त २०१९ का अंक 'शौर्य विशेषांक' के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, यह बहुत उत्तम विचार है। 'साहित्य अमृत' के पूर्व के सभी विशेषांक बहुत उपयोगी एवं संग्रहणीय रहे हैं तथा यह विशेषांक भी अपने आप में अद्वितीय होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है। ***—कृष्णचंद्र टवाणी, किशनगढ़ (राज.)***

'साहित्य अमृत' का जून अंक समय पर मिला। सभी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। 'बोनस में आशीर्वाद' कहानी में संदेश तो है ही, परोपकार का अथाह समुद्र भी है। दो बहनों की प्रकृति और सोच को उकेरने में मालती जोशीजी का गद्य-शिल्प वास्तव में सराहनीय है। डॉ. शेरजंग गर्ग के निधन पर हरीश नवल ने न केवल श्रद्धांजलि अर्पित की है अपितु उनके साहित्येतर गुणों से भी पाठकों को अवगत कराया है। मातृ-दिवस के उपलक्ष्य में रामदरश मिश्र की कविता ने मर्म छू लिया। उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' की गजलें गहरी मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत हैं। ***—बी.डी. बजाज, दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का मई अंक मिला। संपादकीय हमेशा की तरह सटीक व पठनीय है। जलियाँवाला कांड के सौ वर्ष पर लिखकर बहुत अच्छा कार्य किया है। यह पढ़कर अफसोस भी हुआ कि इस अवसर पर सिर्फ दिल्ली की गुरुद्वारा प्रबंधक समिति ने एक आयोजन कर शहीदों को याद किया। सरकार व संस्थानों द्वारा आयोजन न करना पीड़ादायक है। नई पीढ़ी को आजादी बाबत, अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों, शहीदों की कुर्बानियों बाबत बहुत सारी बातें मालूम ही नहीं हैं। 'साहित्य अमृत' पत्रिका की लगातार यह कोशिश रही है कि वह पाठकों तक ऐसी सामग्री पहुँचाती रहे। ***—राजेंद्र पटोरिया, नागपुर (महाराष्ट्र)***

'साहित्य अमृत' का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक आपका संपादकीय होता है। इतना विस्तार और स्पष्ट संपादकीय किसी दूसरी पत्रिका में देखने को नहीं मिलता; आपका संपादकीय पढ़कर राजेंद्र अवस्थी के कालचिंतन की याद आ जाती है। मई के अंक का संपादकीय बहुत ज्ञानवर्धक है, विशेष रूप से पुनर्जन्म के विषय में आपके द्वारा लिखी गई बातें। ***—आर.सी. शुक्ला, मुरादाबाद (उ.प्र.)***

हर बार की तरह इस बार भी 'साहित्य अमृत' का जून अंक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मालती जोशी की कहानी 'बोनस में आशीर्वाद', चितरंजन गोप की लघुकथा 'कंधे पर लाश', विजय कुमार सिंह की कहानी 'दो कोड़ी का न्याय', मीना अरोड़ा का व्यंग्य 'हुक्मरान की भैंस', श्यामसुंदर गर्ग की लघुकथा 'दिखावा', बच्चों के लिए 'बताओ तो जानें' तथा गोपाल चतुर्वेदी का 'अपने-अपने अवसाद', इसके अलावा अन्य कहानियाँ भी पढ़ने लायक हैं। वास्तव में 'साहित्य अमृत' इन कहानियों-लेखों के बल पर ही हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। ***—ब्रजमोहन जैन, दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का जून अंक प्राप्त हुआ। मनमोहन गुप्ता की कहानी 'अनुपयोगी' ने तो हिलाकर रख दिया। वर्तमान में हमारे घरों में वृद्ध सचमुच अनुपयोगी हो गए हैं। उनकी आवश्यक वांछनीय सामग्री परिवार के सदस्यों को बोझ लगने लगी है। कहानी बहुत ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी रही। 'यह जग मेरा, यह जग तेरा' गीत से घमंडीलाल अग्रवाल ने बहुत ही दर्दभरी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। ***—स्नेहलता, भरतपुर (राजस्थान)***

'साहित्य अमृत' के मई अंक का आवरण देखकर किशोरावस्था के वे दिन याद आ गए, जब गाँव की पुनपुन नदी में दोपहर के बाद जाते थे। संपादकीय में पूर्णत: गंभीर सामयिक सार्थक विचारों ने एक सूझ दी। राजेंद्र तिवारी की शोधपरक पुस्तक 'मृत्यु कैसे होती है? फिर क्या होता है?' पढ़ने की जिज्ञासा जगी। गिरिराजशरण अग्रवाल का 'नेताजी उवाच', अनिल चाँदपुरी का 'दिखी राम की पीर', शिव ओम अंबर की गजलें अच्छी लगीं। प्रकाश मनु की 'माँ की वे ममतालु आँखें' दिल में गहरे प्रवेश कर गई। ये स्त्रियाँ ही हैं जो जीवन को थामे रहती हैं। माँएँ सचमुच दूध-गाछ होती हैं। ईश्वर ने माँएँ बनाईं, क्योंकि वह सब जगह उपस्थित नहीं रह सकता। सुधा त्रिवेदी की 'अवगुण चित न धरो', एम.डी. मिश्रा 'आनंद' की 'किस्मत अपनी-अपनी' अच्छी लगी। गोपाल चतुर्वेदी का 'भिखमंगों का देश' ने भी खूब गुदगुदाया। ***—नंद किशोर तिवारी, वाराणसी***

वर्ग पहेली (१६६)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जुलाई, २०१९ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते सितंबर २०१९ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१६४) का शुद्ध हल

१ पा	२ सा	■	३ अ	भा	४ व	■	५ वि	छ
■	६ ह	ड़	प	■	७ री	झ	ना	■
■	सि	■	८ ह	द	य	■	य	■
९ प्र	क	१० टि	त	■	११ ता	१२ र	क	१३ श
लो	■	प्प	■	■	■	वै	■	क
१४ भ	१५ क्ष	णी	१६ य	■	१७ भ	या	१८ कु	ल
■	ण	■	१९ दा	रि	द्र	■	ह	■
■	२० मा	द	क	■	२१ ज	खी	रा	■
२२ मि	त्र	■	२३ दा	म	न	■	२४ म	त

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री सतीश जोशी**
नगरा, जिला-रतलाम-४५७००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५३२९८०८

२. **श्रीमती सरला लोढा**
जे-७, रामपुर गार्डन
३५ सिविल लाइंस, बरेली (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१०२१४४००

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १६३ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची', खुशी 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), जगदीश राय गर्ग (मानसा), विनीता सहल (मुंबई), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), सरला लोढ़ा (उदयपुर), दिनकर सहल, निर्मला गुजराती, रत्ना वार्ष्णेय (दिल्ली), मधुरानी (बेंगलुरु), गिरधारी लाल अग्रवाल (पुसद), अशोक श्रीवास्तव (ग्रेटर नोएडा), भूपसिंह (हरिद्वार), रामप्रकाश राय (गोरखपुर)।

बाएँ से दाएँ—

१. वीरता (४)
४. बिना पूर्वसूचना के; सहसा (४)
७. ओहदा; प्रतिष्ठा (३)
९. राजा, नरेश (३)
१०. शर्मिंदगी (३,२)
१२. कर्कश ध्वनि (२)
१३. मिलन; स्थान जहाँ दो नदिया मिलती हैं (३)
१४. साधारण; निष्कपट; सीधा-सादा(३)
१६. बादल (२)
१९. प्रमोदन; जो प्रसन्नता दे (५)
२१. ननद का पति (३)
२२. सेना के लिए एकत्र किया हुआ या भेजा हुआ खाद्यपदार्थ (३)
२४. अनुभव (४)
२५. पशु (४)

ऊपर से नीचे—

१. खोई हुई, चोरी गई या न मिलती हुई वस्तु आदि, जो कहीं से ढूँढ़कर बाहर निकाली जाए (४)
२. बुरा इस्तेमाल (५)
३. ढंग, रस्म, शैली (२)
५. किसी को अनुरागपूर्वक चाहने की अवस्था या भाव; आसक्ति (३)
६. एक वृक्ष, जिसकी कलियाँ सब्जी बनाने तथा फूल और तने की छाल औषधि के काम आती है (४)
८. लड़का, बच्चा (३)
११. वह स्थान, जहाँ सशुल्क ठहरने, खाने-पीने और मनोरंजन की आधुनिक व्यवस्था हो; सराय (३)
१३. आगे बढ़ने के लिए होनेवाला प्रयास (३)
१५. भगवान् श्रीरामचंद्र (५)
१६. परिश्रम; श्रम (४)
१७. दास; भृत्य (३)
१८. अनेक दफे, बारंबार (२,२)
२०. डरपोक (३)
२३. दंड (२)

वर्ग पहेली (१६५) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१६६)

१		२	३	■	४	५		६
	■	७		८	■		■	
९			■	१०			११	
	■		■		■	■	१२	
■	१३			■	१४	१५		■
१६		■	■	१७	■		■	१८
१९		२०			■	२१		
	■		■	२२	२३		■	
२४				■	२५			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

कवि-गोष्ठी संपन्न

२९ मई को हैदराबाद में संस्था 'गीत चाँदनी' के तत्त्वावधान में संपन्न होनेवाली मूल्यांकन कवि गोष्ठी का आयोजन श्री गोविंद अक्षय के संचालन तथा श्री राकेश मालवी 'प्रखर' की अध्यक्षता में हुआ। सर्वश्री दर्शन सिंह, रवि वैद्य, कुंज बिहारी गुप्ता, राकेश मालवी 'प्रखर', सुरेश जैन, गोविंद अक्षय, चंद्रप्रकाश दायमा, रत्नकला मिश्र, विजयलक्ष्मी बसवा आदि ने काव्य-पाठ किया। □

राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित

३० मई को प्रयागराज में साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'ज्योत्स्ना' द्वारा श्री पृथ्वीनाथ पांडेय के मुख्य आतिथ्य में हिंदी-पत्रकारिता दिवस पर 'हिंदी समाचार चैनलों का वर्तमान' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री सोमलता, रमानाथ कश्यप, मिलिंद गोस्वामी, मीनाक्षी देवी, सोमा चटर्जी, भावना मुखर्जी, प्रियांशु आदिक ने अपने विचार व्यक्त किए। संयोजन सुश्री अंजना सिंह, संचालन सुश्री नमिता अग्रवाल तथा आभार श्री कृष्ण कुमार तिवारी ने दिया। □

संगोष्ठी आयोजित

४ जून को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा केंद्रीय पुस्तकालय सभागार में 'भारत का सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिदृश्य' विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गई। पूर्व राज्यसभा सांसद श्री सुनील शास्त्री की अध्यक्षता में मुख्य वक्ता सर्वश्री अच्युतन व अरुण कुमार भगत थे। दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड के अध्यक्ष श्री रामशरण गौड़, सर्वश्री अरुण भगत, अच्युतन ने अपने विचार व्यक्त किए। दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के महानिदेशक श्री लोकेश शर्मा ने धन्यवाद ज्ञापित किया। □

'डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान' घोषित

कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा प्रवर्तित ३०वाँ 'डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान' उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित को प. बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी एवं उ.प्र. के राज्यपाल श्री राम नाईक की उपस्थिति में २२ जून को आयोजित समारोह में प्रदान किया जाएगा। सम्मानस्वरूप उन्हें एक लाख रुपए की राशि व मानपत्र भेंट किया जाएगा। □

शताब्दी सम्मान समारोह संपन्न

९ जून को पटना में बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'हिंदी साहित्य सम्मेलन शताब्दी सम्मान' समारोह आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि त्रिपुरा के पूर्व राज्यपाल श्री सिद्धेश्वर प्रसाद थे। सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक प्रो. नंदकिशोर पांडेय विशिष्ट अतिथि थे। हरियाणा के राज्यपाल श्री सत्यदेव नारायण आर्य एवं बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री अनिल सलभ के कर-कमलों से सर्वश्री सिद्धेश्वर प्रसाद, सूर्य प्रसाद दीक्षित, वेदप्रताप वैदिक, गिरीश्वर मिश्र, केशरी लाल वर्मा, हरमहिंदर सिंह बेदी, नंदकिशोर पांडेय, शशिशेखर तिवारी, एस.एम. इकबाल, भूपेंद्रनाथ रायचौधरी, सौरभ बोथरा, सुरेश चंद्र दूबे, हरीश कुमार, लक्ष्मीधर दाश, अरुण कुमार उपाध्याय, योगेश चंद्र दुबे, सुरेश नीरव, सुरेश अवस्थी, अशोक अंजुम, लारी आजाद, सभापति मिश्र, राजेश अरोड़ा 'शलभ', अवधेश प्रधान, सिकंदर लाल, कौशलेंद्र पांडेय, प्रकाश मिश्र, गंगेश गुंजन, सत्यानंद बडोनी, नीरज कुमार नैथानी, कालिका, प्रसाद सोमवाल, विष्णु राजाराम देवगिरि, संजय मादार, एम.एस. मुरलीधरन, पी.ए. राधाकृष्णन, केशुभाई देसाई, शंकर भाई एम. पटेल, हरीश द्विवेदी, शरद अरविंद जोशी, पुंडलीक नारायण नाईक, विनय शील गौतम, देवेंद्र गोयल माँझी, महेंद्र जैन, विनोद शुक्ल, अग्नि शेखर, निर्मल विनोद, पी.आर. वासुदेवन 'शेष', सुंदरम् पार्थसारथी, के. मुरली, ईश्वर करुण, देवा प्रसाद मयला, एन.आर. श्याम, शुभ्रांसु दाम, विनोद तिवारी, नीधीश त्यागी, आमोद कुमार अग्रवाल, विनोद तनेजा, जे. सुरेंद्रन, जे.एस. कृष्णमूर्ति, सुब्रज लाहिड़ी, आऊलाल कोठारी, रावेल पुष्प, तपेश भौमिक, थिंगजम श्याम किशोर, श्यामसुंदर दुबे, शंभु सिंह 'मनहर', उमाशंकर मनमौजी, लक्ष्मण शर्मा 'वाहिद', पुरुषोत्तम नारायण, संजय कुमार, विशाल के.सी., हितेंद्र कुमार मिश्र, रामगोपाल चतुर्वेदी, भगवान मकरंद, श्याम प्रकाश देवपुरा, प्रदीप त्रिपाठी, सूर्य प्रकाश अग्रवाल, अशोक प्रियदर्शी, कामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव 'निरंकुश', हरिवल्लभ सिंह 'आरसी', जय नंदन, अरुण सज्जन, नरेश अग्रवाल, जंगबहादुर पांडेय, हिमकर श्याम, व्यास मणि त्रिपाठी, सत्य नारायण, खगेंद्र ठाकुर, पृथ्वी चंद्र झा 'महींदु', सत्येंद्र अरुण, राम उपदेश सिंह 'विदेह', सच्चिदानंद प्रेमी तथा शिवदास पांडेय सहित लगभग सौ विद्वानों को शताब्दी सम्मान से सम्मानित किया गया। □

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय हिंदी विकास सम्मेलन संपन्न

३१ मई को पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, शिलाँग द्वारा अखिल भारतीय स्तर का २३वाँ त्रिदिवसीय राष्ट्रीय हिंदी विकास सम्मेलन आरंभ हुआ। मुख्य अतिथि उप-महानिरीक्षक श्री अवतार सिंह, अकादमी के अध्यक्ष श्री बिमल बजाज और कार्यक्रम निदेशक श्रीमती उर्मि कृष्ण की उपस्थिति में विशिष्ट अतिथि श्री शंकरलाल गोयनका और समाजसेवी श्री पुरुषोत्तम दास चोखानी आदि मंचासीन थे। अकादमी के सचिव डॉ. अकेलाभाई और डॉ. अरुणा उपाध्याय के कुशल संचालन में उद्घाटन सत्र हुआ। देशभर से आए साहित्यकारों, हिंदीसेवियों, लेखकों, कवियों से औपचारिक परिचय, बाद में आमंत्रित अतिथियों का स्वागत एवं सम्मान हुआ। शाम को कवि सम्मेलन शुरू हुआ, जो देर रात तक चला। देशभर से आए कवि व कवयित्री ने विभिन्न विषयों पर सुंदर कविताओं से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। दूसरे दिन हिंदी विकास पर मंथन, विभिन्न विषयों पर संगोष्ठी, सांस्कृतिक एवं सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। हिंदी सेवियों, साहित्यकारों, लेखकों, कवियों आदि को सम्मानित किया गया। गिनिया देवी केशवदेव बजाज स्मृति सम्मान हिंदी भाषा, साहित्य एवं नागरी लीपि के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदान किया जाता है। जीवनराम मुंगी देवी गोयनका स्मृति सम्मान भारतीय संस्कृति और साहित्यिक विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों के लिए प्रदान

किया जाता है। महाबीर प्रसाद टिबरीवाला स्मृति सम्मान जन कल्याण एवं सामाजिक विकास के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए प्रदान किया जाता है। देशभर से १११ हिंदी सेवी, साहित्यकार, लेखक, कवि महानुभावों को इन सम्मानों से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर यशपाल सिंह चौहान, मनोज मोदी, रघुनाथ पांडेय, मदन शंखधर आदि महानुभावों ने अपने विचार व्यक्त किए। □

अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार घोषित

इक्कीस वर्षों से प्रदान किए जानेवाले राष्ट्रीय ख्याति के अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कारों की घोषणा की गई है। इक्कीस सौ रुपए राशि का दिव्य पुरस्कार उपन्यास विधा के लिए सर्वश्री प्रबोध कुमार गोविल के उपन्यास 'अकाब' को तथा सुश्री रेणुका अस्थाना को उनके कहानी-संग्रह 'कालिंजर', प्रदीप उपाध्याय को व्यंग्य-संग्रह 'सठियाने की दहलीज पर', कृष्ण शंकर शर्मा 'अचूक' को काव्य-संग्रह 'नदी उफान भरे', चक्रधर शुक्ल को 'दादी की प्यासी गौरैया' (बाल-साहित्य), पद्मासिंह को 'आत्मज्ञान में जगत दर्शन' (निबंध संग्रह) के लिए दिया जाएगा। गुणवत्ता के क्रम में द्वितीय, तृतीय स्थान पर 'श्रेष्ठ बाल कथाएँ' श्री शराफत अली खान; 'समय का सच' (कहानी-संग्रह) श्रीमती मधु; 'एक लोहार की' (कथा-संग्रह); श्री घनश्याम शर्मा मैथिल 'अमृत'; 'धारा ३७० मुक्त कश्मीर' (निबंध संग्रह) डॉ. सुभ्रदा मिश्र; 'मन कितना वीत राग' (निबंध संग्रह) श्री पंकज त्रिवेदी; 'देश समाज और संस्कृति' श्री चंदर सोनाने; 'मोरे अवगुण चित न धरौ' (व्यंग्य-संग्रह) श्री आशीष दशोत्तर; 'बीज सफर में' (काव्य-संग्रह) कुमारी आफरीन; 'जिस्म रोटी का नंगा होता है' (गजल-संग्रह) डॉ. स्वदेश भटनागर; 'सवालों की दुनिया' (गजल-संग्रह) डॉ. कृष्ण बची; 'ये बात और है' (नवगीत-संग्रह) श्री नरेंद्र श्रीवास्तव; 'अजनबी शहर में' श्रीमती गिरजा कुलश्रेष्ठ; 'चारों ओर कुहासा' (काव्य) श्री रघुवीर शर्मा; 'कौन दिलों की जाने' (उपन्यास) श्री लाजपतराय गर्ग; 'पड़ाव' (उपन्यास) श्रीमती लक्ष्मी तिवारी को प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाएँगे। □

श्रीमती पद्मा सचदेव को महत्तर सदस्यता

१२ जून को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी ने प्रख्यात साहित्यकार एवं विद्वान् श्रीमती पद्मा सचदेव को अपना सर्वोच्च सम्मान 'महत्तर सदस्यता' से विभूषित किया। सम्मानस्वरूप उन्हें एक शॉल और ताम्रफलक साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष श्री चंद्रशेखर कंबार ने दिया। अतिथियों एवं श्रोताओं का स्वागत करते हुए साहित्य अकादेमी के सचिव श्री के. श्रीनिवासराव ने अपने विचार रखे। पुरस्कार-अर्पण समारोह के बाद 'संवाद कार्यक्रम' के अंतर्गत प्रख्यात डोगरी लेखक श्री दर्शन-दर्शी की अध्यक्षता में सर्वश्री इंद्रनाथ चौधुरी, चित्रा मुद्गल और मोहन सिंह ने श्रीमती पद्मा सचदेव से जुड़े अपने सृजनात्मक और व्यक्तिगत संबंधों को साझा किया। □

साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार एवं २०१९ घोषित

१४ जून को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी ने २३ भाषाओं में अपने वार्षिक युवा पुरस्कार २०१९ की घोषणा की। असमिया 'ई पिने की आसे?' (कहानी), संजीब पॉल डेका को; बांग्ला 'कुंतल फिरे आसे' (उपन्यास), मोमिता को; बोडो 'सांसरी अर्व मवंडांगथिनी मुखंड', रुजब मुशाहारी को; डोगरी 'सीस' (कहानी), सुनील कुमार को; अंग्रेजी 'दीवाली इन मुजफ्फरनगर' (कहानी), तनुज सोलंकी को; गुजराती 'रेतिनो मनस' (कहानी), अजय सोनी को; हिंदी 'बाध और सुगना मुंडा की बेटी' (कविता), अनुज लुगुन को; कन्नड 'बेरू' (उपन्यास), फकीर (श्रीधर बनवासी जी.सी.) को; कश्मीरी 'थेर अंगनेच' (कविता), सागर नाजिर को; कोंकणी 'कथाकार' (कहानी), हेमंत अइया को; मलयालम 'अम्मा उरंगुन्निल्ला' (कविता), सुशील कुमार शिंदे को; नेपाली 'चरकियेको भुई (कविता), करन बिराहा को; ओड़िया 'विमुग्ध उच्चारण (साहित्यिक आलोचना), शिशिरा बेहेरा को; पंजाबी 'वक्त बितेया नहीं' (उपन्यास), यदविंदर सिंह संधू को; राजस्थानी 'सगळां रौ सीर' (कहानी), कीर्ति परिहार को; संस्कृत के लिए 'वाग्विलासिनी' (कविता), युवराज भट्टराई को; संताली 'जारपोदिशमरिन मानमो' (कविता), गुहिराम किस्कू को; सिंधी 'अनमोल रिश्ते' (कविता) किरनप परयाणी 'अनमोल' को, तमिल में 'वाल' (तैल) (कविता) सबरीनाथन को; तेलुगु 'कांगवलु कथि' (उपन्यास), गड्डम मोहन राव को; उर्दू में 'लफ्जों के लहू' (उपन्यास), सलाम अब्दुस समद को एक उत्कीर्ण ताम्र फलक तथा ५०,००० रुपए की राशि का चेक भविष्य में एक भव्य कार्यक्रम में प्रदान किए जाएँगे।

साहित्य अकादेमी ने २२ लेखकों को साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार-२०१९ के लिए है अनुमोदित किया, जिनमें—असमिया 'मिली, अमिया अरु एखोन नदी' (कहानी), स्विमिम नसरीन को; बांग्ला 'समग्र योगदान', नबनीता देबसेन को; बोडो 'सोलोबाथा खावनासोंग दे' (लोककथा), लख्मीनाथ ब्रह्म को; डोगरी 'लरजां' (कविता) विजय शर्मा को; अंग्रेजी 'इंडिया थ्रू आर्केलोजी : एक्सवेटिंग हिस्टरी' (इतिहास), देविका कारिअपा को; गुजराती 'समग्र योगदान' कुमारपाल देसाई को; हिंदी 'काचू की टोपी' (कहानी) गोविंद शर्मा को; कन्नड़ 'काडु कानासिना बीडिगे' (उपन्यास), चंद्रकांथ करादल्लि को; कश्मीरी 'शुरिन हुंद नाजी' (कविता), नाजी मुनव्वर को; कोंकणी 'चिटकुल्या चिंकीचें विशाल विश्व' (कहानी), राजश्री बंदोदकर कारपुरकर को; मलयालम 'समग्र योगदान', मलयथ अप्पुनी को; मणिपुरी 'थवायशींगी थवाय' (नाटक) आर.के. सणहणबी चणु को; मराठी 'जंगल खजिन्याचा शोध' (उपन्यास), सलीम सरदार मुल्ला को; नेपाली 'चराको चिरबिर भूराको किरकिर (कविता), भबिलाल लामिछाने को; ओड़िया 'समग्र योगदान', बीरेंद्र कुमार सामंतराय को; पंजाबी 'एलियंस दी धरती ते' (उपन्यास) पवन हरचांदपुरी को; संस्कृत के लिए 'चित्वा तृणं तृणम्' (कविता), संजय चौबे को; संताली 'झारूम झा:' (कविता), लक्ष्मण चंद्र सारेन को; सिंधी 'समग्र योगदान', वीना श्रृंगी को; तमिल 'समग्र योगदान' देवी नचिअप्पन (देइवनइ) को; तेलुगु 'थाथा माता वर्राल मोटा' (कहानी), मोहम्मद खलील को उत्कीर्ण ताम्रफलक और ५०,००० रुपए

की राशि का चेक १४ नवंबर, २०१९ को एक विशेष समारोह में प्रदान किए जाएँगे। ☐

'अचूक' जी को 'काव्य वीणा' सम्मान

विगत दिनों कोलकाता की साहित्यिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक संस्था 'परिवार मिलन' के तत्त्वावधान में वरिष्ठ गीतकार डॉ. कृपाशंकर शर्मा 'अचूक' को 'काव्य वीणा सम्मान-२०१९' के लिए इक्यावन हजार नकद राशि से सम्मानित किया गया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

२६ मई को लखनऊ के यू.पी. प्रेस सभागार में कवि एवं साहित्यकार श्री विज्ञान व्रत को उनके साहित्यिक अवदान के लिए दसवें 'शिक्षक साहित्यकार सम्मान २०१९' से सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि श्री नरेश सक्सेना व विशिष्ट अतिथि श्री उदय प्रताप सिंह थे; अध्यक्षता डॉ. दिनेश चंद्र अवस्थी ने की। इस अवसर पर सर्वश्री मधुकर अस्थाना व सुनील बाजपेई आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। संयोजन सर्वश्री आवारा नवीन, रश्मिशील ने तथा संचालन श्री मंजुल मंजर लखनवी ने किया। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

३० मई का हिंदी पत्रकारिता दिवस की पूर्व वेला में पत्रकारिता से जुड़े दो महत्त्वपूर्ण विषयों पर माधवराव सप्रे स्मृति समाचार-पत्र संग्रहालय में व्याख्यान आयोजित हुए। पहला व्याख्यान 'समकालीन पत्रकारिता की चुनौतियाँ' विषय पर राज्यसभा के उपसभापति तथा लब्धप्रतिष्ठ संपादक श्री हरिवंश का रहा। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री ओ.पी. रावत ने 'चुनाव और मीडिया : साख का सवाल' विषय पर दूसरा व्याख्यान दिया। इस अवसर पर डॉ. मंगला अनुजा की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'आधी दुनिया की पूरी पत्रकारिता' का विमोचन भी हुआ। संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक श्री विजयदत्त श्रीधर ने आयोजन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। पुस्तक 'आधी दुनिया की पूरी पत्रकारिता' पर टिप्पणी करते हुए डॉ. अल्पना त्रिवेदी ने अपने विचार रखे। संचालन 'मल्हार मीडिया' की संपादक श्रीमती ममता यादव ने किया। ☐

एक साँझ कविता की कार्यक्रम संपन्न

९ जून को साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था नीलांबर ने कोलकाता के कलाकुंज सभागार में 'एक साँझ कविता की' कार्यक्रम का आयोजन किया। इस अवसर पर सर्वश्री अरुण कमल, कृष्ण कल्पित, मृत्युंजय कुमार सिंह, सुधाशु फिरदौस और उज्मा सरवत ने कविताएँ पढ़ीं। अतिथि के रूप में उपस्थित थे 'वागर्थ' पत्रिका के संपादक डॉ. शंभुनाथ, डॉ. चंद्रकला पांडेय एवं सर्वश्री डॉ. आशुतोष, अलका सरावगी, उमा झुनझुनवाला, शैलेंद्र शांत और प्रियंकर पालीवाल। ☐

काव्य-कृति 'द्रौपदी उठो' विमोचित

१५ जून को सिविल लाइंस, कानपुर में कवयित्री श्रीमती वीना उदय के सद्य:प्रकाशित काव्य-संग्रह 'द्रौपदी उठो' का विमोचन संपन्न हुआ। मुख्य अतिथी ब्रिगेडियर श्री नवीन सिंह थे। विशिष्ट अतिथी के रूप में सर्वश्री बद्रीनारायण तिवारी (मानस संगम के संस्थापक), दुर्गाचरण मिश्र (वरिष्ठ संपादक), सुरेश अवस्थी (संपादक-साहित्यकार), वाई.डी. पांडे (पूर्व वी.सी., त्रिपुरा विश्वविद्यालय), अरुण पाठक (एम.एल.सी.) एवं सुरेंद्र प्रताप सिंह (पूर्व बार काउंसिल अध्यक्ष) उपस्थित रहे। ☐

व्यंग्य-संग्रह कृति लोकार्पित

२२ मई को भोपाल में हिंदी भवन के महादेवी वर्मा सभागार में श्री अश्विनी कुमार दुबे के सद्य:प्रकाशित व्यंग्य-संग्रह 'बिन पूँजी का धंधा' का लोकापर्ण संपन्न हुआ। अध्यक्षीय भाषण श्री संतोष चौबे ने दिया। मुख्य अतिथि श्री ज्ञान चतुर्वेदी रहे। आभार श्री संजय दुबे ने तथा संचालन श्री चंद्रभान 'राही' ने किया। ☐

दो कृतियाँ लोकार्पित

११ जून को आगरा में डॉ. उर्मिला 'अनुमा' रचित 'ए नदी सुनो' (काव्य-संग्रह) एवं 'खुशबुएँ सूखे फूलों की' (स्मृति-संग्रह) पुस्तकों के लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता डॉ. राजेंद्र मिलन ने की। मुख्य अतिथि श्री राजीव कुमार पाल थे। सर्वश्री रामेश्वर शर्मा 'रामू भैया', सुशील सरित, अशोक अश्रु, सर्वज्ञ शेखर गुप्ता, रति 'सुरीली' ने कृतियों पर विशद चर्चा की। डॉ. यशोयश ने संचालन किया। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री गिरीश कर्नाड का निधन

१० जून को कन्नड़ भाषा के यशस्वी नाटककार, अभिनेता और फिल्म निर्माता श्री गिरीश कर्नाड का निधन हो गया। वह ८० वर्ष के थे। उन्हें १९९८ का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था, अपने महत्त्वपूर्ण कन्नड़ नाटक 'ययाति' से वे सिर्फ २३ साल की आयु में ही भारत के महान् नाटककारों की पंक्ति में नामित हो गए थे। इसके बाद वे जीवन भर साहित्य और रंगमंच के क्षेत्र में सक्रिय रहे। वे एक मँझे हुए अभिनेता और कुशल फिल्म निर्माता थे। उन्होंने दक्षिण भारतीय सिनेमा के साथ-साथ हिंदी सिनेमा को भी समृद्ध करने में अपनी महती भूमिका निभाई।

श्री राजनाथ सिंह 'सूर्य' नहीं रहे

१३ जून को लखनऊ में वरिष्ठ पत्रकार, 'स्वतंत्र भारत' के पूर्व संपादक तथा राज्यसभा (१९९६-२००२) के सदस्य रहे श्री राजनाथ सिंह 'सूर्य' का निधन हो गया। राजनीतिक सोच और वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण उन्होंने दोनों ही क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। समय उन्होंने हिंदी भाषा के संरक्षण-संवर्धन के लिए बहुत काम किया। उनकी लेखनी को देश के कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।